ग़बन

प्रेमचन्द

●

हंस प्रकाशन,
इलाहाबाद

(१)

बरसात के दिन हैं, सावन का महीना। आकाश में सुनहरी घटाएँ छायी हुई हैं। रह-रहकर रिम-झिम वर्षा होने लगती है। अभी तीसरा पहर है : पर ऐसा मालूम हो रहा है, शाम हो गयी। आमों के बाग में झूला पड़ा हुआ है। लड़कियाँ भी झूल रही हैं और उनकी माताएँ भी। दो-चार झूल रही हैं, दो चार झुला रही है। कोई कजली गाने लगती है, कोई बारहमासा। इस ऋतु मे महिलाओं की बाल-स्मृतियाँ भी जाग उठती हैं। ये फुहारे मानों चिन्ताओं को हृदय से धो डालती हैं : मानों मुरझाये हुए मन को भी हरा कर देती है। सब के दिल उमंगों से भरे हुए है। धानी साड़ियों ने प्रकृति की हरियाली से नाता जोड़ा है।

इसी समय एक बिसाती आकर झूले के पास खड़ा हो गया। उसे देखते ही झूला बन्द हो गया। छोटी-बड़ी सबों ने आकर उसे घेर लिया। बिसाती ने अपना सन्दूक खोला और चमकती-चमकती चीजें निकाल कर दिखाने लगा। कच्चे मोतियों के गहने थे, कच्चे लैस और गोटे, रंगीन मोजे, खूबसूरत गुड़ियाँ और गुड़ियों के गहने, बच्चों के लट्टू और झुन-झुने। किसी ने कोई चीज ली, किसी ने कोई चीज। एक बड़ी-बड़ी आँखों वाली बालिका ने वह चीज पसन्द की, जो उन चमकती हुई चीजों मे सबसे सुन्दर थी। वह फिरोजी रग का एक चन्द्रहार था। माँ से बोली—अम्मा, मैं हार लूंगी।

माँ ने बिसाती से पूछा—बाबा, यह हार कितने का है ?

बिसाती ने हार को रूमाल से पोंछते हुए कहा—खरीद तो बीस आने की है, मालकिन जो चाहे दे दे।

माता ने कहा—यह तो बड़ा महगा है। चार दिन मे इसकी चमक-दमक जाती रहेगी।

बिसाती ने मार्मिक भाव से सिर हिलाकर कहा—बहूजी, चार दिन मे तो बिटिया को असली चन्द्रहार मिल जायगा !

माता के हृदय पर इन सहृदयता से भरे हुए शब्दों ने चोट की। हार ले लिया गया।

बालिका के आनन्द की सीमा न थी। शायद हीरों के हार से भी उसे इतना आनद न होता। उसे पहन कर वह सारे गाँव में नाचती फिरी। उनके पास जो बाल-संपत्ति थी, उसमें सबसे मूल्यवान्, सबसे प्रिय यही बिल्लौर का हार था।

लड़की का नाम जालपा था, माता का मानकी।

(२)

महाशय दीनदयाल प्रयाग के एक छोटे से गाँव मे रहते थे। वह किसान न थे पर खेती करते थे। वह जमींदार न थे पर जमींदारी करते थे। थानेदार न थे पर थानेदारी करते थे। वह थे जमींदार के मुख्तार। गाँवपर उन्हीं की धाक थी। उनके पास चार चपरासी थे, एक घोड़ा, कई गाये-भैसें। वेतन कुल पाँच रुपया पाते थे जो उनके तम्बाकू के खर्च को भी काफी न होता था। उनकी आय के और कौन से मार्ग थे, यह कौन जानता है! जालपा उन्हीं की लडकी थी। पहले उसके 'तीन भाई और थे; पर इस समय वह अकेली थी उससे कोई पूछता—तेरे भाई क्या हुए, तो वह बड़ी सरलता से कहती—बडी दूर खेलने गए हैं! कहते हैं, मुख्तार साहब ने एक गरीब आदमी को इतना पिटवाया था कि वह मर गया था। उसके तीन वर्ष के अन्दर तीनों लड़के जाते रहे। तब से बेचारे बहुत सँभलकर चलते थे। फूंक-फूंककर पाँव रखते, दूध के जले थे, छाछ भी फूंक-फूंक कर पीते थे। माता-पिता के जीवन मे और क्या अवलम्ब!

दीनदयाल जब कभी प्रयाग जाते, तो जालपा के लिये कोई न कोई आभूषण जरूर लाते। उनकी व्यावहारिक बुद्धि मे यह विचार ही न आता था कि जालपा किसी और चीज से अधिक प्रसन्न हो सकती है। गुड़िया और खिलौने वह व्यर्थ समझते थे, इसलिए जालपा आभूषणों से ही खेलती थी यही उसके खिलौने थे। वह बिल्लौर का हार जो उसने बिसाती से लिया था, अब उसका सबसे प्यारा खिलौना था। असली हार की अभिलाषा अभी उसके मन में उदय ही नहीं हुई थी। गाँव मे कोई

उत्सव होता या कोई त्योहार पड़ता, तो वह उसी हार को पहनती। कोई दूसरा गहना उसकी आँखों मे जँचता ही न था।

एक दिन दीनदयाल लौटे तो मानकी के लिए एक चन्द्रहार लाये। मानकी को यह साध बहुत दिनों से थी। यह हार पाकर वह मुग्ध हो गई।

जालपा को अब अपना हार अच्छा न लगता। पिता से बोली—बाबूजी मुझे भी ऐसा ही हार ला दीजिए।

दीनदयाल ने मुसकराकर कहा—ला दूगा, बेटी!

'कब ला दीजिएगा?'

'बहुत जल्द।'

बाप के शब्दों से जालपा का मन न भरा। उसने माता से जाकर कहा—अम्माजी, मुझे भी अपना-सा हार बनवा दो।

माँ—वह तो बहुत रुपयों मे बनेगा बेटी!

जालपा—तुमने अपने लिए बनवाया है, मेरे लिए क्यों नहीं बनवातीं?

माँ ने मुसकराकर कहा—तेरे लिए तेरी ससुराल से आएगा।

यह हार छः सौ में बना था। इतने रुपये जमा कर लेना दीनदयाल के लिए आसान न था। ऐसे कौन बडे ओहदेदार थे। बरसों मे कहीं यह हार बनने की नौबत आयी थी। जीवन मे फिर इतने रुपये आयेंगे, इसमे उन्हें संदेह था।

जालपा लजा कर भाग गयी; पर यह शब्द उसके हृदय मे अंकित हो गए। ससुराल उसके लिए अब उतनी भयकर न थी। ससुराल से चन्द्रहार आयेगा, वहाँ के लोग उसे माता-पिता से अधिक प्यार करेंगे। तभी तो जो चीज ये लोग नहीं बनवा सकते, वह वहाँ से आएगी।

लेकिन ससुराल से न आए तो? उसके सामने तीन लड़कियों के विवाह हो चुके थे, किसी की ससुराल से चन्द्रहार न आया था। कहीं उसकी ससुराल से भी न आया तो? उसने सोचा—तो क्या माताजी अपना हार मुझे न दे देंगी? अवश्य दे देंगी।

इस तरह हँसते-हँसते सात वर्ष कट गए। और वह दिन भी आ गया, जब उसकी चिर-संचित अभिलाषा पूरी होगी।

टीके में एक हजार देंगे तो क्या द्वार पर एक हजार भी न देंगे ? वही रुपये सराफ को दे देना। दो-चार सौ बाकी रहे, वह धीरे-धीरे चुक जायंगे। बच्चा के लिए कोई न कोई द्वार खुलेगा ही।

दयानाथ ने उपेक्षा-भाव से कहा—खुल चुका। जिसे शतरंज और सैर-सपाटे से फुरसत न मिले, उसे सभी द्वार बन्द मिलेंगे।

जागेश्वरी को अपने विवाह की याद आयी। दयानाथ भी तो गुलछर्रे उड़ाते थे; लेकिन उसके आते ही उन्हें चार पैसे कमाने की फिक्र कैसी सिर पर सवार हो गयी थी। साल भर न बीतने पाया था कि नौकर हो गये। बोली—बहू आ जायगी, तो उसकी आँखें भी खुलेंगी, देख लेना। अपनी बात याद करो। जब तक गले में जूआ नहीं पड़ा है, तभी तक यह कुलेले हैं। जूआ पड़ा और सारा नशा हिरन हुआ। निकम्मों को राह पर लाने का इससे बढ़कर और कोई उपाय ही नहीं।

जब दयानाथ परास्त हो जाते थे, तो अखबार पढ़ने लगते थे। अपनी हार को छिपाने का उनके पास यही साधन था।

(४)

मुंशी दीनदयाल उन आदमियों में से थे, जो सीधों के साथ सीधे होते हैं, पर टेढ़ों के साथ टेढ़े ही नहीं, शैतान हो जाते हैं। दयानाथ बड़ा-सा मुंह खोलते, हजारों की बातचीत करते, तो दीनदयाल उन्हें ऐसा चकमा देते कि वह उम्र भर याद करते। दयानाथ की सज्जनता ने उन्हें वशीभूत कर लिया। उनका विचार एक हजार देने का था; पर एक हजार टीके में दे आये। मानकी ने कहा—जब टीके में एक हजार दिया, तो इतना घर पर भी देना पडेगा। आएगा कहाँ से !

दीनदयाल चिढ़कर बोले—भगवान मालिक हैं। जब उन लोगों ने उदारता दिखायी और लड़का मुझे सौंप दिया, मैं भी दिखा देना चाहता हूँ कि हम भी शरीफ हैं और शील का मूल्य पहचानते हैं। अगर उन्होंने हेकड़ी जताई होती, तो अलबत्ता उनकी खबर लेता।

दीनदयाल एक हजार तो दे आये, पर दयानाथ का बोझ हल्का करने के बदले और भारी कर दिया। वह कर्ज से कोसों भागते थे। इस शादी में उन्होंने 'मियाँ की जूती मियाँ के सर' वाली नीति निभाने

की ठानी थी; पर दीनदयाल की सहृदयता ने उनका संयम तोड़ दिया। वे सारे टीमटाम, नाच-तमाशे, जिनकी कल्पना का गला उन्होंने घोंट दिया था, बृहद् रूप धारण करके सामने आ गये। बँधा हुआ घोड़ा थान से खुल गया, उसे कौन रोक सकता है। धूमधाम से विवाह करने की ठन गई। पहले जोडे गहने को उन्होंने गौण समझ रक्खा था, अब वही सबसे मुख्य हो गया। ऐसा चढाव हो कि मड़वेवाले देखकर फड़क उठे। सबकी आँखें खुल जायँ कोई तीन हजार का सामान बनवा डाला। सराफ को एक हजार के लिए एक सप्ताह का वादा हुआ तो उसने कोई आपत्ति न की। सोचा दो हजार सीधे हुए जाते हैं, पॉच-सात सौ रुपये रह जायेंगे, वह कहाँ जाते हैं। व्यापारी की लागत निकल आती है, तो नफे को तत्काल पाने के लिए आग्रह नहीं करता। फिर भी चन्द्रहार की कसर रह गयी। जड़ाऊ चन्द्रहार एक हजार से नीचे अच्छा नहीं मिल सकता था। दयानाथ का जी तो लहराया कि लगे हाथ उसे भी ले लो, किसी को नाक सिकोड़ने की जगह तो न रहेगी, पर जागेश्वरी इस पर राजी न हुई।

बाजी पलट चुकी थी।

दयानाथ ने गर्म होकर कहा—तुम्हें क्या, तुम तो घर में बैठी रहोगी। मौत मेरी होगी, जब उधर के लोग नाक-भौं सिकोड़ने लगेंगे।

जागेश्वरी—दोगे कहाँ से, कुछ सोचा है?

दयानाथ—कम से कम एक हजार तो वहाॅ मिल ही जायेंगे।

जागेश्वरी—खून मुह लग गया क्या?

दयानाथ ने शरमाकर कहा—नहीं-नहीं मगर आखिर वहाँ भी तो कुछ मिलेगा?

जागेश्वरी—वहाँ मिलेगा तो वहाॅ खर्च भी होगा। नाम जोडे-गहने से नहीं होता, दान-दक्षिणा से होता है।

इस तरह चन्द्रहार का प्रस्ताव रद्द हो गया।

मगर दयानाथ दिखावे और नुमाइश को चाहे अनावश्यक समझें, रमानाथ उसे परमावश्यक समझता था। बारात ऐसे धूमधाम से जानी चाहिये, गाँव भर मे शोर मच जाय। पहले दूल्हे के लिए पालकी का विचार था। रमानाथ ने मोटर पर जोर दिया। उसके मित्रों ने इसका अनुमोदन

किया, प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। दयानाथ एकान्तप्रिय जीव थे, न किसी से मित्रता थी, न किसी से मेलजोल। रमानाथ मिलनसार युवक था। उसके मित्र ही इस समय हर एक काम मे अग्रसर हो रहे थे। जो काम करते, दिल खोलकर। आतिशबाजियाँ बनवाई, तो अव्वल दर्जे की। नाच ठीक किया तो अव्वल दर्जे का, गाजे-बाजे भी अव्वल दर्जे के। दोयम या सोयम का वहाँ जिक्र ही न था। दयानाथ उसकी उच्छृंखलता देखकर चिंतित हो जाते थे, पर कुछ कह न सकते थे। क्या कहते ?

(५)

नाटक उस वक्त 'पास' होता है, जब रसिक समाज उसे पसन्द कर लेता है। बारात का नाटक उस वक्त पास होता है, जब राह चलते आदमी उसे पसन्द कर लेते हैं। नाटक की परीक्षा चार-पाँच घंटे तक होती रहती है, बारात की परीक्षा के लिए केवल इतने ही मिनटों का समय होता है। सारी सजावट, सारी दौड़-धूप और तैयारी का निपटारा पाँच मिनटों मे हो जाता है। अगर सबके मुंह से वाह-वाह निकल गया, तो तमाशा पास, नहीं फेल ! रुपया, मेहनत, फ़िक्र, सब अकारथ। दयानाथ का तमाशा पास हो गया। शहर मे वह तीसरे दर्जे मे आता, गाँव मे अव्वल दर्जे मे आया। कोई बाजों की धों-धों, पों-पों सुनकर मस्त हो रहा था, कोई मोटर को आँखे फाड-फाड़कर देख रहा था, कुछ लोग फुलवारियो के तख्त देखकर लोट-लोट जाते थे। आतिशबाजी सबके मनोरंजन का केन्द्र थी। हवाइयाँ जब सन्न से ऊपर जातीं, और आकाश मे लाल, हरे, नीले, पीले कुमकुमे से बिखर जाते और जब चर्खियाँ छूटतीं और उनमे नाचते हुए मोर निकल आते, तो लोग मंत्र-मुग्ध से हो जाते। वाह, क्या कारीगरी है !

जालपा के लिए इन चीजों मे लेशमात्र भी आकर्षण न था। हाँ, वह वर को एक आँख देखना चाहती थी, वह भी सबसे छिपाकर; पर उस भीड़-भाड मे ऐसा अवसर कहाँ। द्वारचार के समय उसकी सखियाँ उसे छत पर खींच ले गयीं और उसने रमानाथ को देखा। उसका सारा विराग, सारी उदासीनता, मानों छूमन्तर हो गयी थी। मुंह पर हर्ष की लालिमा छा गयी। अनुराग स्फूर्ति का भंडार है।

द्वारचार के बाद बारात जनवासे चली गयी। भोजन की तैयारियाँ

होने लगीं। किसी ने पूरियाँ खायीं, किसी ने उपलों पर खिचड़ी पकायी। देहात के तमाशा देखनेवाले के मनोरजन के लिए नाच-गाना होने लगा।

दस बजे सहसा फिर बाजे बजने लगे। मालूम हुआ कि चढाव आ रहा है। बारात में हर एक रस्म डंके की चोट अदा होती है। दूल्हा कलेवा करने आ रहा है, बाजे बजने लगे। समधी मिलने आ रहा है, बाजे बजने लगे। चढाव ज्योंही पहुँचा, घर में हलचल मच गयी। स्त्री, पुरुष, बूढे, जवान, सब चढ़ाव देखने के लिए उत्सुक थे। ज्योंही किश्तियाँ मण्डप में पहुँची, लोग सब काम छोडकर देखने दौड़े। आपस में धक्कम-धक्का होने लगा। मानकी प्यास से बेहाल हो रही थी, कंठ सूखा जाता था, चढ़ाव आते ही प्यास भाग गयी। दीनदयाल मारे भूख-प्यास के निर्जीव से पडे थे। यह समाचार सुनते ही सचेत होकर दौडे। मानकी एक-एक चीज को निकाल-निकाल कर देखने-दिखाने लगी। वहाँ सभी इस कला के विशेषज्ञ थे। मर्दों ने गहने बनवाये थे, औरतों ने पहने थे, सभी आलोचना करने लगे। चूहेदन्ती कितनी सुन्दर है, कोई दस तोले की होगी। वाह! साढ़े ग्यारह तोले से रत्ती भर कम निकल जाय, तो कुछ हार जाऊँ! यह शेरदहा तो देखो, क्या हाथ की सफाई है? जी चाहता है कारीगर का हाथ चूम लें। यह भी बारह तोले से कम न होगा। वाह! कभी देखा भी है, सोलह तोले से कम निकल जाये तो मुह न दिखाऊं। हाँ, माल उतना चोखा नहीं है। यह कंगन तो देखो, बिल्कुल पक्की जुडाई है, कितना बारीक काम है, कि आँख नहीं ठहरती। कैसा दमक रहा है। सच्चे नगीने हैं। झूठे नगीनों में यह आब कहाँ! चीज तो यह गुलूबंद है, कितने खूबसूरत फूल हैं! और उनके बीच के हीरे कैसे चमक रहे है! किसी बंगाली ने बनाया होगा! क्या बगालियों ने कारीगरी का ठेका ले लिया है? हमारे देश में एक-से-एक कारीगर पडे हुए हैं। बंगाली सुनार बेचारे उनकी क्या बराबरी करेंगे।

इसी तरह एक-एक चीज की आलोचना होती रही। सहसा किसी ने कहा—चन्द्रहार नही है क्या?

मानकी ने रोनी सूरत बना कर कहा—नहीं, चन्द्रहार नहीं आया।

एक महिला बोली—अरे, चन्द्रहार नहीं आया!

दीनदयाल ने गम्भीर भाव से कहा—और चीजें तो हैं; एक चन्द्र-हार ही तो नहीं है।

उसी महिला ने मुह बनाकर कहा—चन्द्रहार की बात और है।

मानकी ने चढाव को सामने से हटाकर कहा—बेचारी के भाग में चन्द्रहार लिखा ही नहीं है।

इस गोलाकार जमवट के पीछे अँधेरे में, आशा और आकांक्षा की मूर्ति-सी जालपा भी खड़ी थी। और सब गहनों के नाम कान में आते थे, चन्द्रहार का नाम न आता था। उसकी छाती धक्-धक् कर रही थी। चन्द्रहार नहीं है क्या? शायद सबके नीचे हो। इस तरह वह मन को समझाती रही। जब मालूम हो गया, चन्द्रहार नहीं है, तो उसके कलेजे पर चोट-सी लग गयी। मालूम हुआ देह मे रक्त की एक बूंद भी नहीं है। मानो उसे मूर्च्छा आ जायगी। वह लालसा जो सात वर्ष हुए उसके हृदय मे अंकुरित हुई थी, जो इस समय पुष्प और पल्लव से लदी खड़ी थी, उस पर वज्रपात हो गया। वह हरा-भरा लहलहाता हुआ पौदा जल गया—केवल उसकी राख रह गयी। आज ही के दिन पर तो उसकी समस्त आशाएँ अवलम्बित थीं। दुर्दैव ने आज वह अवलम्ब भी छीन लिया। उस निराशा के आवेश मे उसका ऐसा जी चाहने लगा कि अपना मुंह नोच डाले। उसका वश चलता तो वह चढ़ाव को उठाकर आग मे फेक देती। कमरे मे एक आले पर शिव की मूर्ति रखी हुई थी। उसने उसे उठा कर ऐसा पटका कि उसकी आशाओं की भाँति वह चूर-चूर हो गयी। उसने निश्चय किया कि मैं कोई आभूषण न पहनूंगी। आभूषण पहनने से होता ही क्या है? जो रूप विहीन हों, वे अपने को गहने से सजाएँ, मुझे तो ईश्वर ने यों ही सुन्दरी बनाया है। मैं गहने न पहन कर बुरी न लगूंगी। सस्ती चीजें उठा लाए, जिसमे रुपए खर्च होते थे, उसका नाम ही न लिया। अगर गिनती ही गिनानी थी, तो इतने ही दामो से इसके दूने गहने आ जाते।

वह उसी क्रोध मे भरी बैठी थी, कि उसकी तीन सखियाँ आकर खड़ी हो गयीं। उन्होंने समझा था, जालपा को अभी चढ़ाव की कुछ खबर नहीं है, जालपा ने उन्हे देखते ही आँखे पोंछ डालीं और मुसकराने लगी।

राधा मुसकराकर बोली—जालपा, मालूम होता है, तूने बड़ी तपस्या

की थी, ऐसा चढ़ाव मैंने आज तक नहीं देखा था। अब तो तेरी सब साध पूरी हो गयी?

जालपा ने अपनी लम्बी-लम्बी पलकें उठाकर उसकी ओर ऐसे नेत्रों से देखा, मानो जीवन मे अब उसके लिए कोई आशा नहीं है—हाँ बहन, सब साध पूरी हो गयी!

इन शब्दों मे कितनी अपार मर्मान्तक वेदना भरी हुई थी, इसका अनुमान तीनो युवतियों मे कोई भी न कर सकी! तीनों कुतूहल से उसकी ओर ताकने लगीं, मानों उसका आशय उनकी समझ मे न आया हो।

वासन्ती ने कहा—जी चाहता है, कारीगर के हाथ चूम लू।

शहजादी बोली—चढ़ाव ऐसा ही होना चाहिए कि देखनेवाले फड़क उठे।

वासन्ती—तुम्हारी सास बड़ी चतुर जान पड़ती है, कोई चीज नहीं छोड़ी।

जालपा ने मुंह फेरकर कहा—ऐसा ही होगा।

राधा—और तो सब कुछ है, केवल चन्द्रहार नही है।

शहजादी—एक चन्द्रहार के न होने से क्या होता है बहन, उसकी जगह गुलूबन्द तो है।

जालपा ने वक्रोक्ति के भाव से कहा—हॉ, देह मे एक आँख के न होने से क्या होता है! और सब अग होते ही है, आँखे हुई तो क्या, न हुई तो क्या!

बालकों के मुह से गम्भीर बाते सुनकर जैसे हमे हँसी आ जाती है, उसी तरह जालपा के मुंह से यह लालसा-भरी हुई बाते सुनकर, राधा और वासन्ती अपनी हँसी न रोक सकीं। हॉ शहजादी को हँसी न आयी। यह आभूषण लालसा उसके लिए हँसने की बात नहीं, रोने की बात थी। कृत्रिम सहानुभूति दिखाती हुई बोली—सब न जाने कहॉ के जङ्गली हैं कि और सब चीजे तो लाये, चन्द्रहार न लाये, जो सब गहनों का राजा है। लाला अभी आते है तो पूछती हूँ कि तुमने यह कहाँ की रीति निकाली है—ऐसा अनर्थ भी कोई करता है।

राधा और वासन्ती दिल मे कॉप रही थी कि जालपा कहीं ताड़ न जाय। उनका बस चलता, तो शहजादी का मुंह बन्द कर देतीं, बार-

बार उसे चुप रहने का इशारा कर रही थीं; मगर जालपा को शहजादी का व्यंग, समवेदना से परिपूर्ण जान पड़ा। सजल नेत्र होकर बोली--क्या करोगी, पूछकर बहन, जो होना था सो हो गया।

शहजादी—तुम पूछने को कहती हो, मैं रुलाकर छोड़ूँगी। मेरे चढ़ाव पर कंगन नहीं आया था उस वक्त मन ऐसा खट्टा हुआ कि सारे गहनों पर लात मार दूँ। जब तक कगन न बन गए, मैं नींद भर सोई नहीं।

राधा—तो क्या तुम जानती हो, जालपा का चन्द्रहार न बनेगा?

शहजादी—बनेगा तब बनेगा, इस अवसर पर तो नहीं बना। दस-पाँच की चीज तो नहीं, कि जब चाहा बनवा लिया, सैकड़ों का खर्च है। फिर कारीगर तो हमेशा अच्छे नहीं मिलते।

जालपा का भग्न हृदय शहजादी की इन बातों से मानों जी उठा, वह रुँधे कण्ठ से बोली--यही तो मैं भी सोचती हूँ बहन, जब आज न मिला तो फिर क्या मिलेगा!

राधा और वासन्ती मन-ही-मन शहजादी को कोस रही थीं और अँगूठा दिखा-दिखाकर धमका रही थीं; पर शहजादी को इस वक्त तमाशे का मजा आ रहा था। बोली—नहीं, यह बात नहीं है जल्ली, आग्रह करने से सब कुछ हो सकता है। सास-ससुर को बार-बार याद दिलाती रहना। बहनोई जी से दो-चार दिन रूठे रहने से भी बहुत काम निकल सकता है। बस यही समझ लो कि घर वाले चैन न लेने पायें, यह बात हरदम उनके ध्यान में रहे। उन्हें मालूम हो जाय कि बिना चन्द्रहार बनाये कुशल नहीं। तुम जरा भी ढीली पड़ीं और काम बिगड़ा।

राधा ने हँसी को रोकते हुए कहा—इनसे न बने तो तुम्हें बुला लें, क्यों, अब उठोगी या सारी रात उपदेश ही करती रहोगी?

शहजादी—चलती हूँ, ऐसी क्या भगदड़ पड़ी है। हाँ, खूब याद आयी, क्यों जल्ली, तेरी अम्माजी के पास बड़ा अच्छा चन्द्रहार है, तुझे न देंगी?

जालपा ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—क्या कहूँ बहन, मुझे तो आशा नहीं है।

शहजादी—एक बार कहकर देखो तो, अब उनके कौन पहनने-ओढ़ने के दिन बैठे हैं।

जालपा—मुझसे तो न कहा जायगा।

शहजादी—मैं कह दूँगी।

जालपा—नहीं-नहीं, तुम्हारे हाथ जोडती हूँ। मैं जरा उनके मातृ-स्नेह की परीक्षा लेना चाहती हूँ।

वासती ने शहजादी का हाथ पकड़कर कहा—अब उठेगी भी कि यहाँ सारी रात उपदेश ही देती रहेगी।

शहजादी उठी, पर जालपा रास्ता रोककर खड़ी हो गई और बोली—नहीं अभी बैठो बहन, तुम्हारे पैरों पडती हूँ।

शहजादी—जब यह दोनों चुड़ैलें बैठने भी दें। मैं तो तुम्हे गुर सिखाती हूँ, और यह दोनो मुझपर झल्लाती है। सुन नहीं रही हो, मैं भी विष की गाँठ हूँ।

वासती—विष की गाँठ तो तू है ही।

शहजादी—तुम भी तो ससुराल से साल भर बाद आयी हो कौन-कौन सी चीजे बनवा लायीं?

वासंती—और तुमने तीन साल मे क्या बनवा लिया?

शहजादी—मेरी बात छोडो, मेरा खसम तो मेरी बात ही नहीं पूछता।

राधा—प्रेम के सामने गहनों का कोई मूल्य नहीं।

शहजादी—तो सूखा प्रेम तो तुम्हीं को फले!

इतने मे मानकी ने आकर कहा—तुम तीनों यहाँ बैठकर क्या कर रही हो? चलो, वहाँ लोग खाने आ रहे हैं।

तीनों युवतियाँ चली गयीं। जालपा माता के गले मे चन्द्रहार की शोभा देखकर मन-ही-मन सोचने लगी—गहनों से इनका जी अब तक नहीं भरा।

(६)

महाशय दयानाथ जितनी उमगो से ब्याह करने गये थे, उतना ही हतोत्साह होकर लौटे। दीनदयाल ने खूब दिया लेकिन वहाँ से जो कुछ मिला वह सब नाच-तमाशे, नेग-चार मे खर्च हो गया। बार-बार अपनी भूल पर पछताते, क्यों दिखावे और तमाशे मे इतने रुपये खर्च किये? इसकी जरूरत ही क्या थी? ज्यादा-से-ज्यादा लोग यही कहते—महाशय

बड़े कृपण हैं। इतना सुन लेने मे क्या हानि थी ? मैंने गाँव वालों को तमाशा दिखाने का ठीका तो नही लिया था। यह सब रमा का साहस है, उसी ने सारे खर्च बढ़ा-बढ़ाकर मेरा दिवाला निकाल दिया। और सब के तकाजे तो दस-पाँच दिन टल भी सकते थे, पर सराफ किसी तरह न मानता था। शादी के सातवे दिन उसे एक हजार रुपये देने का वादा किया था। सातवे दिन सराफ आया; मगर यहाँ रुपये कहाँ थे ? दयानाथ मे लल्लो-चप्पो की आदत न थी; मगर आज उन्होंने चकमा देने की खूब कोशिश की। किस्त बाँधकर सब रुपये छः महीने मे अदा कर देने का वादा किया। फिर तीन महीने पर आये; मगर सराफ भी एक ही घुटा हुआ आदमी था, उसी वक्त टला जब दयानाथ ने तीसरे दिन बाकी रकम की चीजे लौटा देने का वादा किया, और यह भी उसकी सज्जनता ही थी। वह तीसरा दिन भी आ गया, और अब दयानाथ को अपनी लाज रखने का कोई उपाय न सूझता था। कोई चलता हुआ आदमी शायद इतना व्यग्र न होता, हीले-हवाले करके महाजन को महीनों टालता रहता; लेकिन, दयानाथ इस मामले मे अनाड़ी थे।

जागेश्वरी ने आकर कहा—भोजन कब से बना ठंडा हो रहा है। खाकर तब बैठो।

दयानाथ ने इस तरह गर्दन उठायी, मानो सिर पर सैकड़ों मन का बोझ लदा हुआ है। बोले—तुम लोग जाकर खा लो, मुझे भूख नहीं है।

जागेश्वरी—भूख क्यों नहीं है, रात भी तो कुछ नहीं खाया था ? इस तरह दाना-पानी छोड़ देने से महाजन के रुपये थोड़े ही अदा हो जायँगे ?

दयानाथ—मैं सोचता हूँ, उसे आज क्या जवाब दूँगा ? मैं तो विवाह करके बुरा फँस गया ? बहू कुछ गहने लौटा तो देगी ?

जागेश्वरी—बहू का हाल तो सुन चुके, फिर भी उससे ऐसी आशा रखते हो। उसकी टेक है कि जब तक चन्द्रहार न बन जायगा, कोई गहना ही न पहनूंगी। सारे गहने सन्दूक मे बन्द कर रखे है। बस, वही एक बिल्लौरी हार गले मे डाले हुए है। बहुएँ बहुत देखीं पर ऐसी बहू न देखी थी। फिर कितना बुरा मालूम होता है कि कल की आई बहू, उससे गहने छीन लिए जायँ।

दयानाथ ने चिढ़कर कहा—तुम तो जले पर नमक छिड़कती हो, बुरा मालूम होता है, तो लाओ एक हजार निकाल कर दे दो, महाजन को दे आऊँ, देती हो ? बुरा मुझे खुद मालूम होता है; लेकिन उपाय क्या है ? गला कैसे छूटेगा ?

जागेश्वरी—बेटे का ब्याह किया है कि ठट्ठा है ? शादी-ब्याह मे सभी कर्ज लेते हैं, तुमने कोई नयी बात नहीं की। खाने-पहनने के लिए कौन कर्ज़ लेता है। धर्मात्मा बनने का कुछ फल मिलना चाहिए था नहीं ? तुम्हारे ही दर्जे पर सत्यदेव हैं, पक्का मकान खड़ा कर दिया, जमींदारी खरीद ली अपनी बेटी के ब्याह मे कुछ नही तो पाँच हजार खर्च किए ही होंगे!

दयानाथ—अभी दोनों लड़के भी तो चल दिये ?

जागेश्वरी—मरना-जीना तो संसार की गति है। लेते हैं वह भी मरते हैं, नहीं लेते वह भी मरते है। अगर तुम चाहो तो छः महीने में सब रुपये चुका सकते हो।

दयानाथ ने त्योरी चढ़ाकर कहा—जो बात जिन्दगी भर नहीं की, वह अब आखिरी वक्त नहीं कर सकता। बहू से साफ-साफ कह दो, उससे परदा रखने की जरूरत ही क्या है, और परदा रह ही कै दिन सकता है ? आज नहीं तो कल उसे सारा हाल मालूम हो ही जायगा। बस, तीन-चार-चीजे लौटा दे, तो काम बन जाय। तुम उससे एक बार कहो तो ?

जागेश्वरी झुँझलाकर बोली—उससे तुम्ही कहो, मुझसे तो न कहा जायगा।

सहसा रमानाथ टेनिस रैकेट लिए बाहर से आया। सफेद टेनिस शर्ट था, सफेद पतलून, कैनवस का जूता—गोरे रग और सुन्दर मुखाकृति पर इस पहनावे ने रईसों की शान पैदा कर दी। रूमाल में बेले के गजरे लिए हुए था। उससे सुगन्ध उड़ रही थी। माता-पिता की आँखे बचाकर वह जीने पर जाना चाहता था कि जागेश्वरी ने टोका—इन्हीं के तो सब काँटे बोये हुए हैं, इनसे क्यों नही सलाह लेते ? (रमा से) तुमने नाच-तमाशे मे बारह-तेरह सौ रुपये उड़ा दिये, बतलाओ सराफ को क्या जवाब दिया जाय ? बड़ी मुश्किलों मे कुछ गहने लौटाने पर राजी हुआ, मगर बहू से गहने माँगे कौन ? यह सब तुम्हारी ही करतूत है।

रमानाथ ने इस आक्षेप को अपने ऊपर से हटाते हुए कहा—मैंने क्या खर्च किया। जो कुछ किया बाबूजी ने किया। हाँ, जो कुछ मुझसे कहा गया वह मैंने किया।

रमानाथ के कथन में बहुत कुछ सत्य था। यदि दयानाथ की इच्छा न होती, तो रमा क्या कर सकता था? जो कुछ हुआ उनकी अनुमति से हुआ। रमानाथ पर इल्जाम रखने में तो कोई समस्या हल न हो सकती थी। बोले—मैं तुम्हें इल्जाम नहीं देता भाई। किया तो मैंने ही: मगर यह बला तो किसी तरह सिर से टलनी चाहिए? सराफ का तकाजा है. कल उसका आदमी आवेगा। उसे क्या जवाब दिया जायगा? मेरी समझ में तो यही एक उपाय है कि उतने रुपये के गहने उसे लौटा दिये जायँ। गहने लौटा लेने में भी वह झझट करेगा: लेकिन दस-बीस रुपये के लोभ में लौटाने पर राजी हो जायगा। तुम्हारी क्या सलाह है?

रमानाथ ने शरमाते हुए कहा—मैं इस विषय में क्या सलाह दे सकता हूँ। मगर मैं इतना कह सकता हूँ कि प्रस्ताव को वह खुशी से मजूर न करेगी। अम्मा तो जानती हैं कि चढ़ावे में चन्द्रहार न जाने से उसे कितना बुरा लगा था। प्रण कर लिया है जब तक चन्द्रहार न बन जाएगा, कोई गहना न पहनूँगी।

जागेश्वरी ने अपने पक्ष का समर्थन होते देख, खुश होकर कहा—यही तो इनसे कह रही हूँ।

रमानाथ—रोना-धोना मच जायगा और इसके साथ घर का पर्दा भी खुल जायगा।

दयानाथ ने माथा सिकोड़कर कहा—उससे परदा रखने की जरूरत ही क्या? अपनी यथार्थ स्थिति को वह जितनी जल्दी समझ ले. उतना ही अच्छा।

रमानाथ ने जवानों के स्वभाव के अनुसार जालपा से खूब जीट उड़ाई थी। खूब बढ़-बढ़कर बातें की थीं। जमींदारी है, उससे कई हजार का नफा है। बैंक में रुपये हैं, उनका सूद आता है। जालपा से अब अगर गहने की बात कही गयी, तो रमानाथ को वह पूरा लबाड़िया समझेगी। बोला—पर्दा तो एक दिन खुल ही जायगा, पर इतनी जल्दी खोल देने का नतीजा यही होगा कि वह हमें नीच समझने लगेगी। शायद अपने

बग्वालों को भी लिख भेजे। चारों तरफ बदनामी होगी।

दयानाथ—हमने तो दीनदयाल से यह कभी न कहा था कि हम लखपती है।

रमा०—तो आपने यही कब कहा था कि हम उधार गहने लाये है और दो-चार दिन मे लौटा देंगे? आखिर वह सारा स्वांग अपनी धाक बैठाने के लिये ही किया था या कुछ और।

दया०—तो फिर किसी बहाने से मांगना पडेगा। बिना मांगे काम नहीं चल सकता। कल या तो रुपये देने पड़ेगे, या गहने लौटाने पड़ेगे। और कोई राह नहीं।

रमानाथ ने कोई जवाब न दिया। जागेश्वरी बोली—और कौन-सा बहाना किया जायगा? अगर कहा जाय, किसी को मगनी देना है तो शायद वह देगी नही। देगी भी तो दो-चार दिन मे लौटायेंगे कैसे?

दयानाथ को एक उपाय सूझा। बोले—अगर उन गहनों के बदले मुलम्मे के गहने दिये जायँ? मगर तुरन्त ही उन्हे ज्ञात हो गया यह लचर बात है। खुद ही उसका विरोध करते हुए कहा—हाँ, बाद को जब मुलम्मा उड़ जायगा तो फिर लज्जित होना पडेगा। अक्ल कुछ काम नही करती। मुझे तो यही सूझता है, यह सारी स्थिति उसे समझा दी जाय। जरा देर के लिये उसे दु:ख तो जरूर होगा; लेकिन आगे के वास्ते रास्ता साफ हो जायगा।

सम्भव था, जैसा दयानाथ का विचार था, कि जालपा रो-धोकर शान्त हो जायगी· पर रमा की इसमें किरकिरी होती थी। फिर वह मुँह न दिखा सकेगा। जब वह उससे कहेगा, तुम्हारी जमींदारी क्या हो गयी, बैंक के रुपये क्या हुए, तो उसे क्या जवाब देगा? विरक्त भाव से बोला —इसमे बेइज्जती के सिवा और कुछ न होगा। आप क्या सराफ को दो-चार छः महीने नहीं टाल सकते? आप देना चाहे तो इतने दिनों मे हजार-बारह सौ रुपये बड़ी आसानी से दे सकते हैं।

दयानाथ ने पूछा—कैसे?

रमा०—उसी तरह जैसे आपके और भाई करते है।

दया०—रमा, वह मुझसे नहीं हो सकता।

तीनों कुछ देर तक मौन बैठे रहे। दयानाथ ने अपना फैसला सुना दिया।

जागेश्वरी और रमा को यह फैसला मंजूर न था। इसलिए अब इस गुत्थी को सुलझाने का भार उन्हीं दोनों पर था। जागेश्वरी ने भी एक तरह से निश्चय कर लिया था। दयानाथ को झख मार कर अपना नियम तोडना पडेगा। यह कहाँ की नीति है कि हमारे ऊपर सकट पड़ा हुआ हो और हम अपने नियमों का राग अलापे जायं? रमानाथ बुरी तरह फँसा था। वह खूब जानता था कि पिताजी ने जो काम कभी नहीं किया, वह आज न करेंगे। उन्हे जालपा से गहने मागने मे कोई संकोच न होगा और यही वह चाहता था। वह पछता रहा था कि क्यों जालपा से डींगे मारीं। अब अपने मुँह की लाली रखने का सारा भार उसी पर था। जालपा की अनुपम छवि ने पहले ही दिन उस पर मोहनी डाल दी थी। वह अपने सौभाग्य पर फूला न समाता था। क्या यह घर ऐसी अनन्य सुन्दरी के योग्य था? जालपा के पिता पाँच रुपये के नौकर थे, पर जालपा ने कभी अपने घर में झाड़ू न लगाई थी, कभी अपनी धोती न छाटी थी, अपना बिछावना न बिछाया था; यहाँ तक कि अपनी धोती की खोंच तक न सी थी। दयानाथ पचास रुपया पाते थे; पर यहाँ केवल चौका-बासन करने के लिए महरी थी। बाकी सारा काम अपने ही हाथों करना पड़ता था। जालपा शहर और देहात का फर्क क्या जाने? शहर में रहने का उसे कभी अवसर ही न पडा था। वह कई बार पति और सास से साश्चर्य पूछ चुकी थी, क्या यहाँ कोई नौकर नहीं है? जालपा के घर दूध-दही की कमी नही थी। यहाँ बच्चों को दूध मयस्सर न था। इन सारे भावों की पूर्ति के लिये रमानाथ के पास मीठी-मीठी बडी-बड़ी बातों के सिवा और क्या था। घर का किराया पाँच रुपया था। रमानाथ ने पन्द्रह बतलाये थे, लड़कों की शिक्षा का खर्च मुश्किल से दस रुपये था, रमानाथ ने चालीस बतलाये थे। उस समय उसे इसकी जरा भी शङ्का न थी कि एक दिन सारा भडा फूट जायगा। मिथ्या दूरदर्शी नहीं होती, लेकिन वह दिन इतनी जल्दी आएगा, यह कौन जानता था? अगर उसने ये डींगें न मारी होती, तो जागेश्वरी की तरह वह भी सारा भार दयानाथ पर छोडकर निश्चित हो जाता लेकिन इस वक्त वह अपने ही बनाये जाल मे फँस गया था। कैसे निकले?

उसने कितने ही उपाय सोचे, लेकिन कोई ऐसा न था, जो आगे चलकर

उसे उलझनों मे डाल देता, दलदल मे फंसा देता। एकाएक उसे एक चाल सूझी। उसका दिल उछल पड़ा; पर इस बात को वह मुँह तक न ला सका। ओह! कितनी नीचता है! कितना कपट, कितनी निर्दयता! अपनी प्रेयसी के साथ ऐसी धूर्तता! उसके मन ने धिक्कारा! अगर इस वक्त उसे कोई हजार रुपया दे देता, तो वह उसका उम्र-भर के लिये गुलाम हो जाता।

दयानाथ ने पूछा—कोई बात सूझी?

'मुझे तो कुछ नहीं सूझती।'

'कोई उपाय सोचना ही पडेगा?'

'आप ही सोचिए, मुझे तो कुछ नहीं सूझता।'

'क्यों नहीं उससे दो-तीन गहने माग लेते? तुम चाहो, तो ले सकते हो। हमारे लिये मुश्किल है।'

'मुझे शर्म आती है।'

'तुम विचित्र आदमी हो, न खुद मागोगे, न मुझे माँगने दोगे, तो आखिर यह नाव कैसे चलेगी? मैं एक बार नहीं हजार बार कह चुका कि मुझसे कोई आशा मत रक्खो! मैं अपने आखिरी दिन जेल मे नहीं काट सकता। इसमे शर्म की क्या बात है, मेरी समझ मे नहीं आता। किसके जीवन मे ऐसे कुअवसर नहीं आते? तुम्हीं अपनी माँ से पूछो।

जागेश्वरी ने अनुमोदन किया—मुझसे तो नहीं देखा जाता था कि अपना आदमी चिन्ता मे पडा रहे, मैं गहने पहने बैठी रहूँ। नहीं तो आज मेरे पास भी गहने न होते? एक-एक करके सब निकल गये। विवाह मे पाँच हजार से कम चढ़ावा नहीं गया था; मगर पाँच ही साल मे सब स्वाहा हो गया। तब से एक छल्ला बनवाना भी न नसीब हुआ।

दयानाथ जोर देकर बोले—शर्म करने का यह अवसर नहीं है। इन्हे माँगना पडेगा!

रमानाथ ने झेंपते हुए कहा—मैं मॉग तो नहीं सकता, कहिये उठा लाऊँ।

यह कहते-कहते लज्जा, क्षमा और अपनी नीचता के ज्ञान से उसकी आँखे सजल हो गयी।

दयानाथ ने भौचक्के होकर कहा—उठा लाओगे, उससे छिपाकर?

रमानाथ ने तीव्र कठ से कहा—और आप क्या समझ रहे है?

दयानाथ ने माथे पर हाथ रख लिया, और एक क्षण के बाद आहत कंठ से बोले—नहीं मैं ऐसा न करने दूँगा। मैंने जाल कभी नहीं किया, और न कभी करूँगा। वह भी अपनी बहू के साथ। छिः-छिः जो काम सीधे से चल सकता है, उसके लिये एक फरेब? कहीं उसकी निगाह पड़ गयी, तो समझते हो वह तुम्हे दिल मे क्या समझेगी? मॉग लेना इससे कहीं अच्छा है।

रमा०—आपको इससे क्या मतलब? मुझसे चीजे ले लीजियेगा। मगर जब आप जानते थे, यह नौबत आएगी, तो इतने जेवर ले जाने की जरूरत ही क्या थी? व्यर्थ की विपत्ति मोल ली। इससे कई लाख गुना अच्छा था, कि आसानी से जितना ले जा सकते, उतना ही ले जाते। उस भोजन से क्या लाभ कि पेट मे पीडा होने लगे? मैं तो समझ रहा था कि आपने कोई मार्ग निकाल लिया होगा। मुझे क्या मालूम था कि आप मेरे सिर यह मुसीबतो की टोकरी पटक देगे? वरना मैं उन चीजो को कभी न ले जाने देता।

दयानाथ कुछ लज्जित होकर बोले—इतने पर भी केवल चन्द्रहार न होने से वहाँ हाय-तोबा मच गयी।

रमा०—उस हाय-तोबा से हमारी क्या हानि हो सकती थी? जब इतना करने पर भी हाय-तोबा मच गयी, तो मतलब भी तो न पूरा हुआ। उधर बदनामी हुई। इधर यह आफत सिर पर आयी। मैं यह नहीं दिखाना चाहता कि हम इतने फटे-हाल है। चोरी हो जाने पर तो सब्र करना ही पड़ेगा।

दयानाथ चुप हो गये। उस आवेश मे रमा ने उन्हे खूब खरी-खरी सुनायी और वह चुपचाप सुनते रहे। आखिर जब न सुना गया, तो उठकर पुस्तकालय चले गये। यह उनका नित्य का नियम था। जब तक दो-चार पत्र-पत्रिकाएँ न पढ़ ले, उन्हे खाना न हजम होता था। उसी सुरक्षित गर्त मे पहुँचकर घर की चिन्ताओ और बाधाओ से उनकी जान बचती थी।

रमा भी वहाँ से उठा, पर जालपा के पास न जाकर अपने कमरे मे गया। उसका कोई कमरा अलग तो था नहीं, एक ही मर्दाना कमरा था। इसी मे दयानाथ अपने दोस्तों से गप-शप करते, दोनों लड़के पढ़ते और रमा मित्र के साथ शतरंज खेलता। रमा कमरे मे पहुँचा तो दोनों लड़के ताश खेल रहे थे। गोपी का तेरहवॉ साल था, विश्वम्भर का नवॉ। दोनों रमा से थर-थर काँपते। रमा खुद खूब ताश और शतरंज खेलता था, पर भाइयो को खेलते

देखकर उसके हाथ मे खुजली होने लगती थी। खुद चाहे दिन भर सैर-सपाटे किया करे. मगर क्या मजाल कि भाई कही घूमने निकल जायँ। दयानाथ खुद लडकों को कभी न मारते। अवसर मिलता, तो उनके साथ खेलते थे। उन्हे कनकौवे उडाते देखकर उनकी बाल-प्रकृति सजग हो जाती थी दो-चार पेंच लडा देते। बच्चों के साथ कभी गुल्ली-डडा भी खेलते। इसलिये लडके जितना रमा मे डरते उतना ही पिता से प्रेम करते थे।

रमा को देखते ही लडकों ने ताश को टाट के नीचे छिपा दिया और पढने लगे। सिर झुकाये चपत की प्रतीक्षा कर रहे थे पर रमानाथ ने चपत नहीं लगायी। मोढे पर बैठकर गोपीनाथ से बोला—तुमने भाग की दूकान देखी है न, नुक्कड़ पर ?

गोपीनाथ ने प्रसन्न होकर बोला—हाँ, देखी क्यों नही ?

'जाकर चार पैसे का माजूम ले लो, दौडे हुए आना। हाँ ! हलवाई की दूकान से आधा सेर मिठाई भी लेते आना ! यह रुपया लो !'

कोई पन्द्रह मिनट मे रमा ये दोनो चीजे ले. जालपा के कमरे की ओर चला।

(७)

रात के दस बज गये थे। जालपा खुली छत पर लेटी हुई थी। जेठ की सुनहरी चादनी मे सामने फैले हुए नगर के कलश, गुम्बज, और वृक्ष स्वप्न चित्रों से लगते थे। जालपा की आँखे चन्द्रमा की ओर लगी थी। उसे ऐसा मालूम हो रहा था, मै चन्द्रमा की ओर उड़ी जा रही हूँ। उसे अपनी नाक मे खुश्की, आँख मे जलन और सिर मे चक्कर मालूम हो रहा था। कोई बात ध्यान मे आते ही भूल जाती, और बहुत याद करने पर भी याद न आती थी। एक बार घर की याद आ गई, रोने लगी। एक क्षण मे सहेलियों की याद आ गई, हसने लगी। सहसा रमानाथ हाथ मे एक पोटली लिये, मुसकराता हुआ आया और चारपाई पर बैठ गया।

जालपा ने उठकर पूछा—पोटली मे क्या है ?

रमा०—बूझ जाओ तो जानू।

जालपा—हँसी का गोलगप्पा है! (कह कर हसने लगी।)

रमा०—गलत।

जालपा—नींद की गठरी होगी ?

रमा०—गलती।

जालपा—तो प्रेम की पिटारी होगी।

रमानाथ—ठीक। आज मैं तुम्हे फूलों की देवी बनाऊँगा।

जालपा खिल उठी। रमा ने बडे अनुराग से उसे फूलों के गहने पहनाने शुरू किये, फूलों के शीतल कोमल स्पर्श से जालपा के कोमल शरीर मे गुदगुदी होने लगी। उन्हीं फूलों की भाँति उसका एक-एक रोम प्रफुल्लित हो गया

जालपा ने कुछ उत्तर न दिया। इस वेश में पति की ओर ताकते हुए भी उसे सकोच हुआ। उसकी बड़ी इच्छा हुई की जरा आईने में अपनी छवि देखे। सामने कमरे में लैम्प जल रहा था, वह उठ कर कमरे मे गयी, और आईने के सामने खड़ी हो गई। नशे की तरंग मे उसे ऐसा मालूम हुआ कि मैं सचमुच फूलों की देवी हूँ। उसने पानदान उठा लिया और बाहर आकर पान बनाने लगी।

रमा को इस समय अपने कपट व्यवहार पर बड़ी ग्लानि हो रही थी। जालपा ने अपने कमरे से लौटकर प्रेमोल्लसित नेत्रों से उसकी ओर देखा, तो उसने मुंह फेर लिया। उस सरल विश्वास से भरी हुई आँखों के सामने वह ताक न सका। उसने सोचा—मैं कितना बडा कायर हूँ। क्या मैं बाबूजी को साफ-साफ जवाब न दे सकता था। मैंने हामी ही क्यों भरी ? क्या जालपा से घर की दशा साफ-साफ कह देना मेरा कर्त्तव्य न था ? उसकी आँखे भर आयीं जाकर मुंडेर के पास खड़ा हो गया। प्रणय के उस निर्मल प्रकाश मे उसका मनोविकार किसी भयंकर जन्तु की भाँति घूरत। हुआ जान पड़ता था। अपने ऊपर इतनी घृणा हुई कि एक बार जी मे आया, सारा कपट-व्यवहार खोल दूँ; लेकिन संभल गया। कितना भयकर परिणाम होगा। जालपा की नजरों से गिर जाने की कल्पना हो उसके लिये असह्य थी।

जालपा ने प्रेम-सरस नेत्रों से देखकर कहा—मेरे दादाजी तुम्हे देखकर गये, और अम्माजी से तुम्हारा बखान करने लगे, तो मैं सोचती थी, तुम कैसे होगे ? मेरे मन मे तरह तरह के चित्र आते थे।

रमानाथ ने एक लम्बी साँस खींची। कुछ जवाब न दिया।

जलपा ने फिर कहा—मेरी सखियाँ तुम्हे देखकर मुग्ध हो गयी। शहजादी तो खिड़की के सामने से हटती ही न थी। तुमसे बाते करने की उसकी बडी इच्छा थी। जब तुम अन्दर गये थे, तो उसी ने तुम्हे पान के बीडे दिए थे, याद है?

रमा ने कोई जवाब न दिया।

जालपा—अजी, वही जो रंग-रूप मे सबसे अच्छी थी, जिसके गाल पर एक तिल था, तुमने उसकी ओर बडे प्रेम से देखा था, बेचारी लाज के मारे मर गयी थी। मुझसे कहने लगी, जीजा तो बडे रसिक जान पड़ते हैं। सखियों ने उसे खूब चिढाया, बेचारी रुआँसी हो गयी। याद है?

रमा ने मानो नदी मे डूबते हुए कहा—मुझे तो याद नहीं आता।

जालपा—अच्छा, अबकी चलोगे तो दिखा दूँगी। आज तुम बाजार की तरफ गये थे कि नहीं?

रमा ने सिर झुका कर कहा—आज तो फुरसत नहीं मिली।

जालपा—जाओ, मैं तुमसे न बोलूंगी। रोज हीले-हवाले करते हो। कल ला दोगे न?

रमानाथ का कलेजा मसोस उठा। यह चन्द्रहार के लिए इतनी विकल हो रही है। उसे क्या मालूम कि दुर्भाग्य इसका सर्वस्व लूटने का सामान कर रहा है। जिस सरल बालिका पर उसे अपने प्राणों को न्योछावर करना चाहिए था, उसी का सर्वस्व अपहरण करने पर वह तुला हुआ है? वह इतना व्यग्र हुआ कि जी मे आया, कोठे से कूदकर प्राणों का अन्त करदे।

आधी रात बीत चुकी थी। चन्द्रमा चोर की भाँति एक वृक्ष की आड से झाँक रहा था। जालपा पति के गले मे हाथ डाले हुए निद्रा मे मग्न थी। रमा मनमे विकट सकल्प करके सीधे से उठा, पर निद्रा की गोद मे सोये हुये पुष्प प्रदीप ने उसे अस्थिर कर दिया। वह एक क्षण खड़ा मुग्ध नेत्रों से जालपा के निद्रा-विहसित मुख की ओर देखता रहा। कमरे में जाने का साहस न हुआ। फिर लेट गया।

जालपा ने चौंककर पूछा—कहाँ जाते हो, क्या सबेरा हो गया?

रमा०—अभी तो बडी रात है।

जालपा—तो तुम बैठे क्यों हो ?

रमा०—कुछ नहीं, जरा पानी पीने उठा था ।

जालपा ने प्रेमातुर होकर रमा के गले में बाहें डाल दीं और उसे सुलाकर कहा—तुम इस तरह मुझपर टोना करोगे तो मैं भाग जाऊँगी । न जाने किस तरह ताकते हो, क्या करते हो, क्या मंत्र पढ़ते हो, कि मेरा मन चंचल हो जाता है । वासन्ती सच कहती थी, पुरुषों की आँख मे टोना होता है ।

रमा ने फूटे हुए स्वर मे कहा—टोना नहीं कर रहा हूँ, आँखों की प्यास बुझा रहा हूँ । दोनों फिर सोये. एक उल्लास मे डूबी हुई, दूसरा चिन्ता मे मग्न !

तीन घंटे गुजर गये. द्वादशी के चाँद ने अपना विश्व-दीपक बुझा दिया । प्रभात की शीतल-समीर प्रकृति को मद के प्याले पिलाती फिरती थी । आधी रात तक जागने वाला बाजार भी सो गया । केवल रमा अभी तक जाग रहा था । मन मे भाँति-भाँति के तर्क-वितर्क उठने के कारण वह बार-बार उठता था, और फिर लेट जाता था । आखिर जब चार बजने की आवाज कान मे आयी, तो घबराकर उठ बैठा और कमरे मे जा पहुँचा । गहनों का सन्दूकचा आलमारी मे रखा हुआ था; रमा ने उसे उठा लिया और थर-थर काँपता हुआ नीचे उतर गया । इस घबराहट मे उसे इतना अवकाश न मिला कि वह कुछ गहने छाँटकर निकाल लेता ।

दयानाथ नीचे बरामदे मे सो रहे थे । रमा ने उन्हे धीरे से जगाया उन्होंने घबराकर पूछा—कौन ?

रमा ने ओठ पर उँगली रखकर कहा—मैं हूँ । यह सन्दूकची लाया [illegible] । रख लीजिये ।

दयानाथ [illegible] होकर बैठ गये । अभी तक केवल उनकी आँखे [illegible], अब चेतना भी जागृत हो गयी । रमा ने जिस वक्त उनसे गहने [illegible] की बात की थी उन्होंने समझा था कि वह आवेश मे ऐसा कह [illegible] विश्वास न आता था कि रमा जो कुछ कह रहा है, [illegible] । इन [illegible] बातों मे वह अलग ही रहना [illegible] हाथ डालना उनकी अन्तरात्मा

को किसी तरह स्वीकार न था। पूछा—इसे क्यों उठा लाये ?

रमा ने धृष्ठता से कहा—आपही का तो हुक्म था !

दया०—झूठ कहते हो।

रमा०—तो फिर क्या रख आऊँ ?

रमा के इस प्रश्न ने दयानाथ को सकट मे डाल दिया। झेंपते हुए बोले—अब क्या रख आओगे ? कहीं देख ले, तो गजब ही हो जाय। यही काम करोगे, जिसमे जग हँसाई हो। खड़े क्या हो, सन्दूकची मेरे बड़े सन्दूक मे रख आओ और जाकर लेट रहो। कहीं जाग पडे तो बस !

बरामदे के पीछे दयानाथ का कमरा था। उसमे एक देवदार का पुराना सन्दूक रखा था। रमा ने सन्दूकची उसके अन्दर रख दी और बड़ी फुर्ती से ऊपर चला गया। छत पर पहुँचकर उसने आहट ली, जालपा पिछले पहर की सुखद निद्रा मे मग्न थी।

रमा ज्यों ही चरपाई पर बैठा, जालपा चौंक पड़ी और उससे चिपट गयी। रमा ने पूछा—क्या है, तुम चौंक पड़ीं ?

जालपा ने इधर-उधर प्रसन्न नेत्रों से ताककर कहा—कुछ नहीं, एक स्वप्न देख रही थी। तुम बैठे क्यों हो, कितनी रात है अभी।

रमा ने लेटते हुए कहा—सवेरा हो रहा है, क्या स्वप्न देखती थीं ?

जालपा—जैसे कोई चोर मेरे गहनोंकी सन्दूकची उठाये लिये जाता हो।

रमा का हृदय इतने जोर से धक्-धक् करने लगा, मानों उस पर हथौडे पड़ रहे हों। खून सर्द हो गया। परन्तु सदेह हुआ, कहीं इसने मुझे देख तो नहीं लिया। वह जोर से चिल्ला पड़ा—चोर ! चोर ! नीचे बरामदे मे दयानाथ चिल्ला उठे—चोर ! चोर !।

जालपा घबड़ाकर उठी। दौड़ी हुई कमरे मे गई, झटके से आलमारी खोली, सन्दूकची वहाँ न थी। मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

(८)

सवेरा होते ही दयानाथ गहने लेकर सराफ के पास पहुँचे और हिसाब होने लगा। सराफ के २५००) आते थे; मगर वह केवल १५००) के गहने लेकर सतुष्ट न हुआ। बिके हुए गहनों को वह बट्टे पर ही ले सकता था। बिकी हुई चीज कौन वापस लेता है ? जाकड पर दिये होते,

तो दूसरी बात थी। इन चीजों का सौदा हो चुका था। उसने कुछ ऐसी व्यापारिक सिद्धान्त की बातें की, दयानाथ को कुछ ऐसा शिकंजे मे कसा, कि बेचारे को हॉ-हॉ करने के सिवा और कुछ न सूझा। दफ्तर का बाबू चतुर दूकानदार से पेश पाता? १५००) मे २५००) के गहने भी चले गये, ऊपर से ५० और बाकी रह गये। इस बात पर पिता-पुत्र मे कई दिन खूब वाद-विवाद हुआ। दोनों एक दूसरे को दोषी ठहराते रहे। कई दिन आपसमे बोल-चाल बन्द रही; मगर इस चोरी का हाल गुप्त रखा गया। पुलिस को खबर हो जाती, तो भंडा फूट जाने का भय था। जालपा से यही कहा गया कि माल तो मिलेगा नही व्यर्थ का झंझट भले ही होगा। जालपा ने भी सोचा, जब माल ही न मिलेगा, तो रपट व्यर्थ क्यों की जाय।

जालपा को गहनों से जितना प्रेम था, उतना कदाचित् संसार की और किसी वस्तु से न था; और उसमे आश्चर्य की कौन सी बात थी। जब वह तीन वर्ष की अबोध बालिका थी, उस उक्त उसके लिए सोने के चूडे बनवाये गये थे। दादी जब उसे गोद मे खिलाने लगती, गहनो ही की चर्चा करती। तेरा दुलहा तेरे लिए बडे सुन्दर गहने लायेगा। ठुमुक-ठुमुककर चलेगी।

जालपा पूछती—चॉदी के होंगे, कि सोने के दादी जी?

दादी कहती—सोने के होंगे बेटी, चाँदी की क्यो लावेगा? चॉदी के लावे, तो तुम उठाकर उसके मुंह पर पटक देना।

मानकी छेड़कर कहती—चॉदी के तो लावेगा ही। सोने के उसे कहॉ मिल जाते हैं।

जालपा रोने लगती, इस पर बूढ़ी दादी, मानकी, घर की महरियॉ, पड़ोसिने और दीनदयाल—सब हॅसते। उन लोगों के लिए यह विनोद का अशेष भंडार था।

बालिका जब जरा और बड़ी हुई तो गुडियों के व्याह करने लगी। लडके की ओर से चढ़ावे जाते, दुलहिन को गहने पहनाती, डोली मे बैठाकर विदा करती, कभी-कभी दुलहिन अपने गुड्डे दूल्हे से गहनों के लिए मॉग करती, गुड्डा बेचारा कहीं-न-कहीं से गहने लाकर स्त्री को प्रसन्न

करता था। उन्हीं दिनों बिसाती ने उसे वह चन्द्रहार दिया, जो अब तक उसके पास सुरक्षित था।

जरा और बड़ी हुई तो बड़ी-बूढ़ियों में बैठकर, गहने की बातें सुनने लगी। महिलाओं के उस छोटे-से संसार में इसके सिवा और कोई चर्चा ही नहीं थी। किसने कौन-कौन गहने बनवाये, कितने दाम लगे, ठोस हैं या पोले, जड़ाऊ है या सादे, किस लड़की के विवाह में कितने गहने आये—इन्हीं महत्वपूर्ण विषयों पर नित्य आलोचना-प्रत्यालोचना, टीका-टिप्पणी होती रहती थी। कोई दूसरा विषय इतना रोचक ग्राहक हो ही न सकता था।

इस आभूषण-मंडित संसार में पली हुई जालपा का यह आभूषण प्रेम स्वाभाविक ही था। महीने भर से ऊपर हो गया, उसकी दशा ज्यों-की त्यों है, न कुछ खाती-पीती है, न किसी से हँसती-बोलती है। खाट पर पड़ी हुई शून्य नेत्रों से शून्याकाश की ओर ताकती रहती है। सारा घर समझाकर हार गया, पड़ोसिनें समझाकर हार गयी, दीनदयाल आकर समझा गये; पर जालपा ने रोग-शय्या न छोड़ी। उसे घर में किसी पर विश्वास नहीं है, यहाँ तक कि रमा से भी उदासीन रहती है। वह समझती है, सारा घर मेरी उपेक्षा कर रहा है। सब-के-सब मेरे प्राण के ग्राहक हो रहे हैं। जब इनके पास इतना धन है, तो फिर मेरे गहने क्यों नहीं बनवाते? जिससे हम सबसे अधिक स्नेह रखते हैं, उसी पर सबसे अधिक रोष भी करते हैं। जालपा को सबसे अधिक क्रोध रमानाथ पर था। अगर यह अपने माता-पिता से जोर देकर कहते, तो कोई इनकी बात न टाल सकता; पर यह कुछ कहें भी? इनके मुँह में तो दही जमा है। मुझसे प्रेम होता; तो यों निश्चिन्त न बैठे रहते। जब तक सारी चीज न बनवा लेते, रात को नींद न आती। मुंह देखे की मुहब्बत है, माँ-बाप से कैसे कहें, जायेंगे तो अपनी ओर, मैं कौन हूँ?

वह रमा से केवल खिंची न रहती थी, वह कभी कुछ पूछता, तो दो-चार जली-कटी सुना देती। बेचारा अपना-सा मुंह लेकर रह जाता। गरीब अपनी ही लगायी हुई आग में जला जाता था। अगर वह जानता कि उन डींगों का यह फल होगा, तो वह जबान पर मुहर लगा लेता?

चिन्ता और ग्लानि उसके हृदय को कुचले डालती थी। कहाँ सुबह मे शाम तक हँसी-कहकहे, सैरसपाटे मे कटते थे, कहाँ अब नौकरी की तालाश मे ठोंकरे खाता फिरता था। सारी मस्ती गायब हो गयी। बार-बार अपने पिता पर क्रोध आता, वह चाहते तो-दो चार महीने मे सब रुपये अदा हो जाते : मगर इन्हे क्या फिक्र? मैं चाहे मर जाऊँ पर यह अपनी टेक नहीं छोड़ेगे। उसी प्रेम से भरे हुए निष्कपट हृदय में आग-सी सुलगती रहती थी। जालपा का मुरझाया हुआ मुख देख कर उसके मुंह से ठंडी साँस निकल जाती थी। वह सुखप्रद प्रेम-स्वप्न इतनी जल्द भग हो गया, क्या वे दिन फिर कभी आयेंगे? तीन हजार के गहने कैसे बनेंगे? अगर नौकर भी हुआ, तो ऐसा कौन-सा बडा उहदा मिल जायेगा? तीन हजार शायद तीन जन्म मे भी न जमा हो। वह कोई ऐसा उपाय सोच निकालना चहता था, जिससे वह जल्द-से-जल्द अतुल संपत्ति का स्वामी हो जाये। कहीं उसके नाम कोई लाटरी निकल आती। फिर तो वह जालपा को आभूषणों से मढ़ देता। सबसे पहले चन्द्रहार बनवाता। उसमे हीरे जडे होते। अगर इस वक्त उसे जाली नोट बनाना आ जाता तो वह अवश्य बनाकर चला देता।

एक दिन वह शाम तक नौकरी की तलाश मे मारा-मारा फिरता रहा। शतरंज की बदौलत उसका कितने ही अच्छे-अच्छे आदमियों से परिचय था; लेकिन वह संकोच और डर के कारण किसी से अपनी स्थिति प्रकट न कर सकता था। वह भी जानता था कि यह मान-सम्मान उसी वक्त तक है, जब तक किसी के सामने मदद के लिए हाथ नहीं फैलाता। यह आन टूटी, फिर कोई बात भी न पूछेगा। कोई ऐसा भलेमानस न दीखता था जो सब कुछ बिना कहे ही समझ जाय, और उसे कोई अच्छी सी जगह दिलादे। आज उसका चित्त बहुत खिन्न था। मित्रों पर ऐसा क्रोध आ रहा था कि एक-एक को फटकारे और आये तो द्वार से दुत्कार दे। अब किसी ने शतरज खेलने को बुलाया, तो ऐसा फटकार सुनाऊँगा, कि बचा याद करें, मगर वह जरा गौर करता, तो उसे मालूम हो जाता, कि इस विषय मे मित्रों का उतना दोष न था, जितना खुद उसका। कोई ऐसा मित्र न था, जिससे उसने बढ़-बढ़कर बातें न की हों। यह उसकी आदत थी। घर की असली दशा को वह सदैव बदनामी की तरह

छिपाता रहा। और यह उसी का फल था कि इतने मित्रों के होते हुए भी वह बेकार था। वह किसी से अपनी मनोव्यथा न कह सकता था और मनोव्यथा साँस की भाँति अन्दर असह्य हो जाती है। घर में आकर मुंह लटकाए हुए बैठ गया।

जागेश्वरी ने पानी लाकर दिया और पूछा—आज तुम दिन भर कहाँ रहे? लो हाथ-मुंह धो डालो।

रमा ने लोटा उठाया ही था कि जालपा ने आकर उग्र भाव से कहा—मुझे मेरे घर पहुँचा दो, इसी वक्त।

रमा ने लोटा रख दिया और उसकी ओर इस तरह ताकने लगा, मानों उसकी बात समझ में न आई हो।

जागेश्वरी बोली—भला इस तरह कहीं बहू-बेटियाँ विदा होती हैं। कैसी बात कहती हो बहू।

जालपा—मैं उन बहू-बेटियों में नहीं हूँ। मेरा जिस वक्त जी चाहेगा जाऊँगी, जिस वक्त जी चाहेगा आऊँगी। मुझे किसी का डर नहीं है। जब यहाँ कोई मेरी बात नहीं पूछता, तो मैं किसी को अपना नहीं समझती। सारे दिन अनाथों की तरह पड़ी रहती हूँ; कोई झांकता तक नहीं। मैं चिड़िया नहीं हूँ, जिसका पिंजड़ा दाना-पानी रखकर बन्द कर दिया जाये। मैं भी आदमी हूँ। अब इस घर में मैं क्षण-भर न रुकूँगी। अगर कोई मुझे भेजने न जायगा, तो अकेली चली जाऊँगी। राह में कोई भेड़िया नहीं बैठा है, जो मुझे उठा ले जायेगा और उठा भी ले जाय, तो क्या गम। यहाँ कौन-सा सुख भोग रही हूँ।

रमा ने सावधान होकर कहा—आखिर कुछ मालूम भी तो हो, क्या बात हुई?

जालपा—बात कुछ नहीं हुई, अपना जी है, यहाँ नहीं रहना चाहती।

रमानाथ—भला इस तरह जाओगी तो तुम्हारे घर वाले क्या कहेंगे। कुछ यह भी तो सोचो।

जालपा—यह सब सोच चुकी हूँ, और ज्यादा नहीं सोचना चाहती हूँ। मैं जाकर अपने कपड़े बाँधती हूँ और इसी गाड़ी से जाऊँगी।

यह कहकर जालपा ऊपर चली गई। रमा भी पीछे-पीछे यह सोचता हुआ चला, इसे कैसे शान्त करूँ ?

जालपा अपने कमरे मे आकर बिस्तर लपेटने लगी कि रमा ने उसका हाथ पकड लिया और बोला—तुम्हे मेरी कसम जो इस वक्त जाने का नाम लो !

जालपा ने त्योरी चढ़ाकर कहा—तुम्हारी कसम की हमे कुछ परवा नहीं है !

उसने अपना हाथ छुड़ा लिया और फिर बिछावन लपेटने लगी। रमा खिसियाना-सा होकर एक किनारे खड़ा हो गया। जालपा ने बिस्तर-बन्द से बिस्तरे को बॉधा और फिर अपने सन्दूक को साफ करने लगी; मगर अब उसमे वह पहले-सी तत्परता न थी, बार-बार सन्दूक बन्द करती और खोलती। वर्षा बन्द हो चुकी थी, केवल छत पर रुका हुआ पानी टपक रहा था।

आखिर वह उसी बिस्तर के बंडल पर बैठ गयी, और बोली—तुमने मुझे कसम क्यों दिलाई ?

रमा के हृदय मे आशा की गुदगुदी हुई। बोला—इसके सिवा मेरे पास तुम्हे रोकने का और क्या साधन था ?

जालपा—क्या तुम चाहते हो कि मैं यहीं घुट-घुटकर मर जाऊँ ?

रमा०—तुम ऐसे मनहूस शब्द क्यों मुंह से निकालती हो ? मैं तो चलने को तैयार हूँ, न मानोगी तो पहुँचाना ही पडेगा। जाओ, मेरा ईश्वर मालिक है, मगर कम-से-कम बाबूजी और अम्मा से पूछ लो।

बुझती हुई आग मे तेल पड़ गया। जालपा तडपकर बोली—वह मेरे कौन होते हैं जो उनसे पूछूं ?

रमा०—कोई नहीं होते ?

जालपा—कोई नहीं ! अगर कोई होते, तो मुझे यों न छोड़ देते ? रुपये रखते हुए कोई अपने प्रियजनों का कष्ट नहीं देख सकता। ये लोग क्या मेरे आँसू न पोंछ सकते थे ? मैं दिन के दिन यहाँ पड़ी रहती हूँ। कोई झूठों भी पूछता है ? मुहल्ले की स्त्रियॉ मिलने आती है, कैसे मिलूं ? यह सूरत अब मुझसे नहीं दिखाई जाती। न कहीं आना न जाना, न किसी

से बात न चीत, ऐसे कोई के दिन रह सकता है? मुझे इन लोगो से अब कोई आशा नहीं रही। आखिर दो लडके और भी तो हैं, उसके लिए भी कुछ जोडेगे कि तुम्ही को दे दे!

रमा को बडी-बडी बातें करने का फिर अवसर मिला। वह खुश था कि इतने दिनों के बाद आज उसे प्रसन्न करने का मौका मिला। बोला—प्रिये, तुम्हारा खयाल बहुत ठोक है। जरूर यही बात है। नहीं ता ढाई-तोन हजार उनके लिए क्या बड़ी बात थी? पचासो हजार बैंक मे जमा है, दफ्तर तो केवल दिल बहलाने जाते है।

जालपा—मगर हैं मक्खीचूस पल्ले सिरे के!

रमा०—मक्खीचूस न होते, तो इतनी सपत्ति कहाँ से आती?

जालपा—मुझे तो किसी की परवा नहीं है जो हमारे घर किस बात की कमी है! दाल-रोटी वहाँ, मिल जायेगी। दो-चार सखी-सहेलियाँ हैं, खेत-खलिहान है, बाग-बगीचे हैं, जी बहलता रहेगा।

रमा०—और मेरी क्या दशा होगी, जानती हो? घुल-घुलकर मर जाऊँगा। जब से चोरी हुई है, मेरे दिल पर जैसी गुजरती है, वह दिल ही जानता है। अम्मा और बाबू जी से एक बार नहीं, लाखों बार कहा, जोर देकर कहा कि दो-चार चीजे तो बनवा ही दीजिये, पर किसी के कान पर जूं तक न रेंगी। न जाने क्यों मुझसे आँखे फेर लीं।

जालपा—जब तुम्हारा नोकरो कहीं लग जाये तो मुझे बुला लेना।

रमा०—तलाश कर रहा हूँ। बहुत जल्द मिलनेवाली है। हजारो बडे-बडे आदमियों से मुलाकात है, नौकरी मिलते क्या देर लगती है, हाँ जरा अच्छी जगह चाहता हूँ।

जालपा—मैं इन लोगों का रुख समझती हूँ। मैं भी यहाँ अब दावे के साथ रहूँगी। क्यों, किसी से नौकरी के लिए कहते नही हो?

रमा—शर्म आती है किसी से कहते हुए।

जालपा—इसमे शर्म की कौन-सी बात है? कहते शर्म आती हो, तो खत लिख दो।

रमा उछल पड़ा, कितना सरल उपाय था, खैर अभी तक वह सीधी-सी बात उसे न सूझी थी। बोला—हाँ, यह तुमने बहुत अच्छी तरकीब

बतलाई। कल जरूर लिखूंगा।

जालपा—मुझे पहुँचाकर आना, तो लिखना। कल ही थोड़े लौट आओगे।

रमा०—तो क्या सचमुच जाओगी? तब मुझे नौकरी मिल चुकी और मैं खत लिख चुका! इसी वियोग के दुःख मे बैठकर रोऊँगा कि नौकरी ढूढूंगा। नहीं, इस वक्त जाने का विचार छोड़ो। नहीं, सच कहता हूँ, मैं कहीं भाग जाऊँगा। मकान का हाल देख चुका। तुम्हारे सिवा और कौन बैठा हुआ है, जिसके लिए यहाँ पड़ा सड़ा करूँ? हटो तो जरा मैं बिस्तर खोल दूँ।

जालपा ने बिस्तर पर से जरा खिसककर कहा—मैं बहुत जल्द चली आऊँगी। तुम गये और मैं आयी।

रमा ने बिस्तर खोलते हुए कहा—जी नहीं, माफ कीजिए, इस धोखे मे नहीं आता। तुम्हे क्या, तुम तो सहेलियों के साथ विहार करोगी, मेरी खबर तक न लोगी, और यहाँ मेरी जान पर बन आयेगी। इस घर मे फिर कैसे कदम रखा जायेगा।

जालपा ने एहसान जताते हुए कहा—आपने मेरा बँधा-बँधाया बिस्तर खोल दिया, नहीं तो आज कितने आनन्द से घर पहुँच जाती। शहजादी सच कहती थी, मर्द बडे टोनहे होते है। मैंने आज पक्का इरादा कर लिया था कि चाहे ब्रह्मा भी उतर आवे, पर मैं न मानूँगी। पर तुमने दो ही मिनट मे सारे मंसूबे चौपट कर दिये। कल खत लिखना जरूर। बिना कुछ पैदा किये अब निर्वाह नहीं है।

रमा०—कल नहीं, मैं इसी वक्त जाकर दो-तीन चिट्ठियाँ लिखता हूँ।

जालपा—पान तो खाते जाओ।

रमानाथ ने पान खाया और मर्दाने कमरे मे खत लिखने बैठे।

मगर फिर कुछ सोचकर उठ खडे हुए और एक तरफ को चल दिये। स्त्री का सप्रेम आग्रह पुरुष से क्या नहीं करा सकता!

(६)

रमा के परिचितों मे एक रमेश बाबू म्युनिसिपिल बोर्ड में हेड क्लर्क

थे। उम्र तो चालीस के ऊपर थी, पर थे बडे रसिक। शतरंज खेलने बैठते तो सवेरा कर देते, दफ्तर भी भूल जाते। न आगे नाथ न पीछे पगहा जवानी मे स्त्री मर गयी थी, दूसरा विवाह नही किया। उस एकान्त जीवन मे सिवा विनोद के और क्या अवलम्ब था। चाहते तो हजारों के वारे-न्यारे करते, पर रिश्वत की कौडी भी हराम समझते थे ? रमा से बड़ा स्नेह रखते थे और कौन ऐसा निठल्ला था, जो रात-रात भर उनसे शतरज खेलता। आज कई दिन से वेचारे बहुत व्याकुल हो रहे थे। शतरज की एक बाजी भी न हुई। अखबार कहॉ तक पढ़ते। रमा इधर दो-एक बार आया अवश्य, पर बिसात पर न बैठा। रमेश बाबू ने मुहरे बिछा दिये, उसको पकड़कर बैठाया पर वह बैठा नही। वह क्यो शतरंज खेलने लगा ? बहू आयी है, उसका मुँह देखेगा, उससे प्रेमालाप करेगा कि उस बूढे के साथ शतरंज खेलेगा। कई बार जी मे आया, उसे बुलवाये; पर यह सोचकर कि वह क्यों आने लगा, रह गये। कहॉ जाये ? सिनेमा देख आवे ? किसी तरह समय तो कटे। सिनेमा से उन्हे बहुत प्रेम न था, पर इस वक्त उन्हें सिनेमा के सिवा और कुछ न सूझा। कपडे पहने और जाना ही चाहते थे कि रमा ने कमरे मे कदम रखा।

रमेश उसे देखते ही गेंद की तरह लुढ़ककर द्वार पर जा पहुँचे। और उसका हाथ पकड़कर बोले—आइये, आइये, बाबू रमानाथ साहब बहादुर ! तुम तो इस बुड्ढे को बिलकुल भूल ही गये। हॉ भाई, अब क्यों आओगे ? प्रेमिका की रसीली बातों का आनन्द यहाँ कहाँ। चोरी का कुछ पता चला ?

रमा०—कुछ भी नहीं।

रमेश—बहुत अच्छा हुआ, थाने मे रपट नहीं लिखायी। नही सौ-दो-सौ के मत्थे और जाते। बहू को तो बडा दुःख हुआ होगा ?

रमा०—कुछ पूछिए मत, तभी से दाना-पानी छोड रखा है। मैं तो तग आ गया। जी मे आता है, कही भाग जाऊँ। बाबूजी सुनते ही नहीं।

रमेश०—बाबूजी के पास क्या कारूँ का खजाना रखा हुआ है ? अभी चार-पाँच-हजार खर्च किये है, फिर कहाँ से लाकर गहने बनवा दें ? दस-बीस हजार रुपये होंगे, तो अभी तो बच्चे भी तो सामने है और

नौकरी का भरोसा ही क्या । ५०) होते ही क्या हैं ?

रमा०—मैं तो मुसीबत में फँस गया । अब मालूम होता है, कहीं नौकरी करनी पडेगी । चैन से खाते और मौज उड़ाते थे, नहीं तो बैठे-बैठाये इस याजाल मे फँसे। अब बतलाइए, है कहीं नौकरी-चाकरी का सहारा।

रमेश ने ताक पर से मुहरे और बिसात उतारते हुए कहा—आओ एक बाजी हो जाये। फिर इस मसले को सोचे। इसे जितना आसान समझ रहे हो, उतना आसान नहीं है । अच्छे-अच्छे धक्के खा रहे हैं ।

रमा०—मेरा तो इस वक्त खेलने को जी नहीं चाहता । जब तक यह प्रश्न हल न हो जाये, मेरे होश ठिकाने नहीं होंगे ।

रमेश बाबू ने शतरंज के मुहरे बिछाते हुए कहा—आओ बैठो । एक बार तो खेल लो, फिर सोचें, क्या हो सकता है ।

रमा०—जरा भी जी नहीं चाहता । मैं जानता कि सिर मुड़ाते ही ओले पडेंगे, तो मैं विवाह के नजदीक ही न जाता ।

रमेश०—अजी दो-चार चालें चलो तो आप ही आप जी लग जायगा । जरा अकल की गाँठ तो खोलो ।

बाजी शुरू हुई । कई मामूली चालों के बाद रमेश बाबू ने रमा का रुख पीट लिया ।

रमा०—ओह, क्या गलती हुई !

रमेश बाबू की आँखों में नशे की सी लाली छाने लगी । शतरंज उनके लिए शराब का मादक नशा था । बोले—बोहनी अच्छी हुई ! तुम्हारे लिए मैं एक जगह सोच रहा हूँ । मगर वेतन बहुत कम है, केवल तीस रुपये । वह रंगीन दाढ़ीवाले खाँ साहब नहीं हैं, उनसे काम नहीं होता, कई बार बचा चुका हूँ । सोचता था, जब तक किसी तरह काम चले, बने रहे । बाल-बच्चे वाले आदमी हैं । वह तो कई बार कह चुके हैं, मुझे छुट्टी दीजिए । तुम्हारे लायक तो वह जगह नहीं है, चाहो तो कर लो ।

यह कहते-कहते रमा का फीला मार लिया ।

रमा ने फीले को फिर उठाने की चेष्टा करके कहा—आप मुझे बातों मे लगाकर मेरे मोहरे उडाते जाते हैं, इनकी सनद नहीं, लाओ मेरा फीला !

रमेश०—देखो भाई, बेईमानी मत करो। मैंने तुम्हारा फीला जबरदस्ती तो नहीं उड़ाया। हाँ तुम्हे वह जगह मजूर है ?

रमा०—वेतन तो तीस ही है।

रमेश—हाँ, वेतन तो कम है, मगर शायद आगे चलकर बढ़ जाये। मेरी तो राय है कर लो।

रमा०—अच्छी बात है, आपकी सलाह है तो कर लूँगा।

रमेश०—जगह आमदनी की है। मियाँ ने उसी जगह पर रहते हुए लड़कों को एम० ए०, एल० एल० बी० करा लिया। दो कालेज मे पढ़ते हैं। लड़कियों की शादियाँ अच्छे घरों मे कीं। हाँ, जरा समझ-बूझकर काम करने की जरूरत है।

रमा०—आमदनी की मुझे परवा नहीं, रिश्वत कोई अच्छी चीज तो है नहीं।

रमेश—बहुत खराब, मगर बाल-बच्चों के आदमी क्या करें। तीस रुपयों मे गुजर नहीं हो सकती। मैं अकेला आदमी हूँ। मेरे लिए डेढ सौ ही काफी है, कुछ बचा भी लेता हूँ। लेकिन जिस घर मे बहुत-से आदमी हो, लड़कों की पढ़ाई हो, लड़कियों की शादियाँ हों, वह आदमी क्या कर सकता है। जब तक छोटे छोटे आदमियो का वेतन इतना न हो जायेगा कि वह भलमनसी के साथ निर्वाह कर सके तब तक रिश्वत बन्द न होगी। यही रोटी-दाल, घी-दूध, तो वह भी खाते है फिर एक को तीस रुपये और दूसरे को तीन सौ रुपये क्यों देते हो ?

रमा का फर्जी पिट गया. रमेश बाबू ने बडे जोर से कहकहा मारा।

रमा ने रोष के साथ कहा—अगर आप चुपचाप खेलते है तो खेलिये, नहीं तो मैं जाता हूँ। मुझे बातों मे लगाकर सारे मुहरे उड़ा लिये।

रमेश०—अच्छा साहब, अब बोलूं तो जबान पकड़ लीजिये यह लीजिये शय ! तुम कल अर्जी दे दो। उम्मेद तो है, तुम्हे यह जगह मिल जायेगी ; मगर जिस दिन जगह मिले, मेरे साथ रात भर खेलना होगा।

रमा०—आप तो दो ही मातों मे रोने लगते है।

रमेश०—अजी, वह दिन गये, जब आप मुझे मात दिया करते थे।

आजकल चन्द्रमा बलवान है। इधर मैंने एक मन्त्र सिद्ध किया है। क्या मजाल कि कोई मात दे सके! फिर शय!

रमा०—जी तो चाहता है, दूसरी बाजी मात देकर जाऊँ, मगर देर होगी

रमेश०—देर क्या होगी। अभी तो नौ बजे है। खेल लो, दिल का अरमान निकल जाय! यह शय और मात!

रमा०—अच्छा कल की रही। कल ललकारकर पाँच माते न दीं तो कहिएगा।

रमेश०—अजी, जाओ भी; तुम मुझे क्या मात दोगे? हिम्मत हो तो अभी सही।

रमा०—अच्छा आइए, आप भी क्या कहेंगे; मगर मैं पाँच बाजियों से कम न खेलूँगा!

रमेश०—पॉच नहीं, तुम दस खेलो जी! रात तो अपनी है। तो चलो फिर खाना खा ले। तब निश्चिन्त होकर बैठे। तुम्हारे घर कहलाये देता हूँ कि आज यहीं सोयेंगे इन्तजार न करें।

दोनों ने भोजन किया और फिर शतरंज पर बैठे। पहली बाजी मे ग्यारह बज गये। रमेश बाबू की जीत रही। दूसरी बाजी भी उन्हीं के हाथ रही। तिसरी बाजी खतम हुई, तो दो बज गये।

रमा०—अब तो मुझे नींद आ रही है।

रमेश०—तो मुंह धो डालो, बरफ रखी हुई है। मैं पाँच बाजियाँ खेले बगैर सोने न दूँगा।

रमेश बाबू को यह विश्वास हो रहा था कि आज मेरा सितारा बुलन्द है। नहीं तो रमा को लगातार तीन मात देना आसान न था। वह समझ गये थे, इस वक्त चाहे जितनी बाजियाँ खेलूं जीत मेरी ही होगी; मगर चौथी बाजी हार गये, तो यह विश्वास जाता रहा। उलटे यह भय हुआ कि कहीं लगातार हारता न जाऊँ। बोले—अब तो सोना चाहिए।

रमा०—क्यों, पाँच बाजियाँ पूरी न कर लीजिये?

रमेश०—कल दफ्तर भी तो जाना है।

रमा ने अधिक आग्रह न किया। दोनों सोये।

रमा यों ही आठ से पहले न उठता था। फिर आज तो तीन बजे सोया था। आज तो उसे दस बजे तक सोने का अधिकार था। रमेश नियमानुसार पाँच बजे उठ बैठे, स्नान किया, संध्या की, घूमने गये और आठ बजे लौटे: मगर रमा तब तक सोता ही रहा। आखिर जब साढे नौ बज गये तो उन्होंने उसे जगाया।

रमा ने बिगड़कर कहा—नाहक जगा दिया! कैसी मजे की नींद आ रही थी।

रमेश—अजी, वह अर्जी देना है कि नहीं तुमको ?

रमा०—आप दे दीजिएगा।

रमेश०—और जो कहीं साहब ने बुलाया, तो मैं ही चला जाऊँगा ?

रमा०—उँह, जो चाहे कीजिएगा, मैं तो सोता हूँ।

रमा फिर लेट गया, और रमेश ने भोजन किया, कपड़े पहने और दफ्तर चलने को तैयार हुए। उसी वक्त रमानाथ घबडाकर उठा और आँखे मलता हुआ बोला—मैं भी चलूँगा।

रमेश०—अरे! मुँह-हाथ तो धो लो भले आदमी!

रमा०—आप तो चले जा रहे हैं।

रमेश०—नहीं, अभी १५-२० मिनट तक रुक सकता हूँ तैयार हो जाओ।

रमा०—मैं तैयार हू। वहाँ से लौटकर भोजन करूँगा।

रमेश०—कहता तो हूँ, अभी आध घंटे तक रुका हुआ हूँ।

रमा ने एक मिनट मे मुँह धोया, पांच मिनट मे भोजन किया और चटपट रमेश के साथ दफ्तर चला।

रास्ते मे रमेश ने मुसकिराकर कहा—घर क्या बहाना करोगे, कुछ सोच रखा है ?

रमा०—कह दूँगा, रमेश बाबू ने आने नहीं दिया।

रमेश—मुझे गालियाँ दिलाओगे और क्या। फिर कभी न आने पाओगे।

रमा०—ऐसा स्त्री भक्त नही हूँ। हाँ, यह तो बतलाइए, मुझे अर्जी लेकर तो साहब के पास न जाना पडेगा ?

रमेश०—और क्या तुम समझते हो, घर बैठे जगह मिल जायेगी? महीनों दौड़ना पड़ेगा, महीनों! बीसियों सिफारिशें लानी पड़ेगी; सुबह-शाम हाजिरी देनी पड़ेगी। क्या नौकरी मिलना आसान है?

रमा०—तो मैं ऐसी नौकरी से बाज आया। मुझे तो अर्जी लेकर जाते ही शर्म आती है, खुशामदें कौन करेगा। पहले मुझे क्लर्की पर बड़ी हँसी आती थी, मगर वही बला मेरे सिर पड़ी। साहब डाँट-वाँट तो न बतायेंगे?

रमेश०—बुरी तरह डाँटता है, लोग उसके सामने जाते हुए काँपते हैं।

रमा०—तो फिर मैं घर जाता हूँ। वह सब मुझसे न बर्दाश्त होगा।

रमेश—पहले सब ऐसे ही घबराते हैं, मगर सहते-सहते आदत पड़ जाती है। तुम्हारा दिल धड़क रहा होगा कि न जाने कैसी बीतेगी। जब मैं नौकर हुआ, तो तुम्हारी ही उम्र मेरी भी थी, और शादी हुए तीन ही महीने हुए थे। जिस दिन मेरी पेशी होने वाली थी, ऐसा घबराया हुआ था, मानो फाँसी पाने जा रहा हूँ, मगर तुम्हें डरने का कोई कारण नहीं है। मैं सब ठीक कर दूँगा।

रमा०—आपको तो बीस-बाईस साल नौकरी करते हो गये होंगे?

रमेश०—पूरे पच्चीस हो गये साहब! बीस बरस तो स्त्री का देहान्त हुए हो गये। दस रुपये पर नौकर हुआ था।

रमा०—आपने दूसरी शादी क्यों नहीं की? तब तो आपकी उम्र पच्चीस से ज्यादा न रही होगी।

रमेश ने हँसकर कहा—बरफी खाने के बाद गुड़ खाने का किसका जी चाहता है? महल का सुख भोगने के बाद झोपड़ा किसे अच्छा लगता है? प्रेम आत्मा को तृप्त कर देता है। तुम तो मुझे जानते हो, अब तो बूढ़ा हो गया हूँ, लेकिन मैं तुमसे सच कहता हूँ, इस विधुर जीवन में मैंने किसी स्त्री की ओर आँख तक नहीं उठाई। कितनी ही सुन्दरियाँ देखीं, कई बार लोगों ने विवाह के लिए घेरा भी, लेकिन कभी इच्छा ही न हुई। उस प्रेम की मधुर स्मृतियों में मेरे लिए प्रेम का सजीव आनन्द भरा हुआ है।

यों बातें करते हुए, दोनों आदमी दफ्तर पहुँच गये।

रमा दफ्तर से घर पहुँचा, तो चार बज रहे थे। वह दफ्तर ही मे था कि आसमान पर बादल घिर आये। पानी आया ही चाहता था; पर रमा को घर पहुँचने की इतनी बेचैनी हो रही थी कि उससे रुका न गया। हाते के बाहर भी न निकलने पाया था कि जोर की वर्षा होने लगी। आषाढ़ का पहला पानी था, एक क्षण मे वह लथ-पथ हो गया। फिर भी वह कहीं रुका नहीं। नौकरी मिल जाने का शुभ समाचार सुनाने का आनन्द इस दौंगडे की क्या परवा कर सकता था? वेतन तो केवल तीस रुपये थे, पर जगह आमदनी की थी। उसने मन ही मन हिसाब लगा लिया था, कि कितनी मासिक बचत हो जाने से वह जालपा के लिए चन्द्रहार बनवा सकेगा। अगर पचास-साठ रुपये महीने भी बच जायें, तो पाँच साल मे जालपा गहनों से लद जायेगी। कौन-सा आभूषण कितने का होगा, इसका भी उसने अनुमान कर लिया था। घर पहुँचकर उसने कपडे भी न उतारे, लथ-पथ जालपा के कमरे मे पहुँच गया।

जालपा उसे देखते ही बोली—यह भींग कहाँ गये, रात कहाँ गायब थे?

रमा०—इसी नौकरी की फिक्र मे पड़ा हुआ हूँ। इस वक्त दफ्तर से चला आता हूँ। म्युनिसिपैलिटी के दफ्तर में मुझे एक जगह मिल गयी।

जालपा ने उछलकर पूछा—सच, कितने की जगह है?

रमा को ठीक-ठीक बतलाने मे सकोच हुआ। तीस की नौकरी बताना अपमान की बात थी। स्त्री के नेत्रो मे तुच्छ बनना कौन चाहता है? बोला—अभी तो चालीस मिलेंगे, पर जल्द तरक्की होगी। जगह आमदनी की है।

जालपा ने उसके लिए किसी बडे पद की कल्पना कर रखी थी। बोली—चालीस मे क्या होगा। भला सत्तर तो होते?

रमा०—मिल तो सकती थी सौ रुपये की भी, पर यहाॅ रोब है, और आराम है। पचास-साठ रुपये ऊपर से मिल जायेंगे।

जालपा—तो तुम घूस लोगे, गरीबो का गला काटोगे?

रमा ने हँसकर कहा—नही प्रिये, वह जगह ऐसी नही कि गरीबो का गला काटना पडे। बडे-बडे महाजनों से रकमे मिलेंगी और वह खुशी से

गले लगायेंगे। मैं जिसे चाहूँ दिन भर दफ्तर में खड़ा रखूँ। महाजनों का एक-एक मिनट अशरफी के बराबर है। जल्द-से-जल्द अपना काम कराने के लिए वे खुशामद भी करेंगे, पैसा भी देंगे।

जालपा सन्तुष्ट हो गयी, बोली—हाँ, तब ठीक है। गरीबों का काम यों ही कर देना।

रमा०—वह तो करूँगा ही।

जालपा—अम्माजी से तो नहीं कहा? जाकर कह आओ। मुझे तो सबसे बड़ी खुशी यही है कि मालूम होगा कि यहाँ मेरा भी कोई अधिकार है।

रमा—हाँ, जाता हूँ; मगर उनसे तो मैं बीस ही बताऊँगा।

जालपा ने उल्लसित होकर कहा—हाँ जी; बल्कि पन्द्रह कहना, ऊपर की आमदनी की तो चर्चा ही करना व्यर्थ है। भीतर का हिसाब वे ले सकते है। सबसे पहले चन्द्रहार बनवाऊँगी।

इतने मे डाकिये ने पुकारा। रमा ने दरवाजे पर जाकर देखा, तो उसके नाम एक पार्सल आया हुआ था। महाशय दीनदयाल ने भेजा था। लेकर खुश-खुश घर मे आये और जालपा के हाथों मे रखकर बोले—तुम्हारे घर से आया है, देखो इसमें क्या है।

रमा ने चटपट कैंची निकाली और पारसल खोला। उसमें देवदार की एक डिबिया निकली, उसमें एक चन्द्रहार रखा हुआ था। रमा ने उसे निकालकर देखा और हँसकर बोला—ईश्वर ने तुम्हारी सुन ली; चीज तो बहुत अच्छी मालूम होती है।

जालपा ने कुण्ठित स्वर मे कहा—अम्माजी को यह क्या सूझी, यह तो उन्हीं का हार है। मैं तो इसे न लूँगी। अभी डाक का वक्त हो तो लौटा दो।

रमा ने विस्मित होकर कहा—लौटाने की क्या जरूरत है, वह नाराज न होंगी?'

जालपा ने नाक सिकोड़कर कहा—मेरी बला से, रानी रूठेगी अपना सुहाग लेगी। मैं उनकी दया के बिना भी जीती रह सकती हूँ। आज इतने दिनों के बाद उन्हे मुझ पर दया आयी है। उस वक्त दया न आयी

थी, जब मैं उनके घर से विदा हुई थी। उनके गहने उन्हे मुबारक हों। मैं किसी का एहसान नहीं लेना चाहती। अभी उनके ओढने-पहनने के दिन है। मैं क्यों बाधक बनूँ। तुम कुशल से रहोगे, तो मुझे बहुत गहने मिल जायेगे। मैं अम्माजी को यह दिखाना चाहती हूँ कि जालपा तुम्हारे गहनों की भूखी नहीं है।

रमा ने सात्वना देते हुए कहा—मेरी समझ मे तो तुम्हे हार रख लेना चाहिए! सोचो, उन्हे कितना दुःख होगा। विदाई के समय यदि न दिया, तो अच्छा ही किया। नहीं तो और गहनों के साथ यह भी चला जाता।

जालपा—मैं इसे लूँगी नहीं, यह निश्चय है।

रमा०—आखिर क्यों?

जालपा—मेरी इच्छा!

रमा०—इस इच्छा का कोई कारण भी तो होगा?

जालपा रुँधे हुए स्वर मे बोली—कारण यही है कि अम्माजी इसे खुशी से नहीं दे रही हैं। बहुत संभव है कि इसे भेजते समय वह रोई भी हों और इसमे तो कोई सदेह ही नही कि इसे वापस पाकर उन्हे सच्चा आनन्द होगा। देनेवाले का हृदय देखना चाहिए। प्रेम से यदि वह मुझे एक छल्ला भी दे दे, तो मै दोनो हाथों से ले लूँ। जब दिल पर जब्र करके दुनिया की लाज से या किसी के धिक्कारने से दिया, तो क्या दिया। दान भिखारिनियों को दिया जाता है। मैं किसी का दान न लूँगी, चाहे वह माता ही क्यो न हों।

माता के प्रति जालपा का यह द्वेष देखकर रमा और कुछ कह न सका। द्वेष तर्क और प्रमाण नहीं सुनता। रमा ने हार ले लिया, और चारपाई से उठता हुआ बोला—जरा अम्मा और बाबूजी को तो दिखा दूँ। कम से कम उनसे पूछ तो लेना ही चाहिए।

जालपा ने हार उसके हाथ से छीन लिया, और बोली—वे लोग मेरे कौन होते हैं, जो उनसे पूछूँ? केवल एक घर मे रहने का नाता है। जब मुझे कुछ नहीं समझते, तो मैं भी उन्हे कुछ नहीं समझती। यह कहते हुए उसने हार को उसी डिब्बे मे रख दिया, और उस

पर कपड़ा लपेटकर सीने लगी। रमा ने एक बार डरते-डरते फिर कहा—ऐसी जल्दी क्या है, दस-पाँच दिन में लौटा देना : उन लोगों की भी खातिर हो जायेगी।

इस पर जालपा ने कठोर नेत्रों से देखकर कहा—जब तक मैं इसे लौटा न दूँगी, मेरे दिल को चैन न आयेगा। मेरे हृदय में काँटा सा खटकता रहेगा। अभी पारसल तैयार हुआ जाता है, हाल ही लौटा दो।

एक क्षण में पारसल तैयार हो गया और रमा उसे लिये हुए चिन्तित भाव से नीचे चला।

(११)

महाशय दयानाथ को जब रमा के नौकर हो जाने का हाल मालूम हुआ तो बहुत खुश हुए। विवाह होते ही वह इतनी जल्दी चेतेगा इसकी उन्हें आशा न थी। बोले—जगह तो अच्छी है। ईमानदारी से काम करोगे, तो किसी अच्छे पद पर पहुँच जाओगे। मेरा यही उपदेश है कि पराये पैसे को हराम समझना।

रमा के जी में तो आया कि साफ कह दूँ—अपना उपदेश आप अपने ही लिए रखिए, यह मेरे अनुकूल नहीं है! मगर इतना बेहया न था।

दयानाथ ने फिर कहा—यह जगह तो तीस रुपये की थी, तुम्हें बीस क्यों मिले?

रमा०—नये आदमी को पूरा वेतन कैसे देते? शायद साल छः महीने में बढ़ जाये। काम बहुत है।

दया०—तुम जवान आदमी हो, काम से न घबड़ाना चाहिये।

रमा ने दूसरे दिन नया सूट बनवाया, और फैशन की कितनी ही चीजें खरीदीं। ससुराल से मिले हुए रुपये कुछ बच रहे थे। कुछ मित्रों से उधार ले लिये। वह साहबी ठाट बना कर सारे दफ्तर पर रोब जमाना चाहता था। कोई उससे वेतन तो पूछेगा नहीं; महाजन लोग उसका ठाट-बाट देखकर सहम जायेंगे। वह जानता था, अच्छी आमदनी तभी हो सकती है, जब अच्छा ठाट-बाट हो। सड़क के चौकीदार को एक पैसा काफी समझा जाता है, लेकिन उसकी जगह सार्जंट हो, तो

किसी की हिम्मत न पडेगी कि उसे एक पैसा दिखाये। फटेहाल भिखारी के लिए एक चुटकी बहुत समझी जाती है; लेकिन गेरुये रेशम धारण करने वाले बाबाजी को लजाते-लजाते भी एक रुपया देना ही पड़ता है। भेख और भीख मे सनातन से मित्रता है।

तीसरे दिन रमा कोट पैंट पहनकर और हैट लगाकर निकला तो उसकी शान ही कुछ और हो गई। चपरासियों ने झुक-झुककर सलाम किये। रमेश बाबू से मिलकर जब वह अपने काम का चार्ज लेने आया, तो देखा एक बरामदे मे फटी हुई मैली दरी पर एक मियाँ साहब सन्दूक पर रजिस्टर फैलाये बैठे है और व्यापारी लोग उन्हे चारो तरफ से घेरे खड़े है। सामने गाड़ियों, ठेलों और इक्को का बाजार लगा हुआ है। सभी अपने-अपने काम की जल्दी मचा रहे है। कहीं लोगों मे गाली-गलौज हो रही है, कहीं चपरासियों मे हँसी-दिल्लगी। सारा काम बडे ही अव्य-वस्थित रूप से हो रहा है। उस फटी-मैली दरी पर बैठना रमा को अप-मानजनक जान पडा। वह सीधे रमेश बाबू से जाकर बोला—क्या मुझे भी इसी मैली दरी पर बैठाना चाहते है। एक अच्छी सी मेज और कई कुर्सियाँ भेजवाइए और चपरासियों को हुक्म दीजिए कि एक आदमी से ज्यादा मेरे सामने न आने पावे। रमेश बाबू ने मुसकराकर मेज और कुर्सियाँ भिजवा दी। रमा शान से कुर्सी पर बैठा। बूढे मुशीजी उसकी उच्छृङ्खलता पर दिल मे हँस रहे थे। समझ गये, अभी नया जोश है, नई सनक है। चार्ज दे दिया। चार्ज मे था क्या, केवल आज की आमदनी का हिसाब समझा देना था। किस जिन्स पर किस हिसाब से चुङ्गी ली जाती है, इसकी छपी हुई तालिका मौजूद थी, रमा आध घटे मे अपना काम समझ गया। बूढे मुंशीजी ने यद्यपि खुद ही यह जगह छोड़ी थी; पर इस वक्त जाते हुए उन्हे दुःख हो रहा था। इसी जगह वह ३० साल से बराबर बैठते आये थे। इसी जगह की बदौलत उन्होंने धन और यश दोनों ही कमाया था। उसे छोडते हुए क्यों न दुःख होता? चार्ज देकर जब वह बिदा होने लगे तो रमा उनके साथ जीने के नीचे तक गया। खाँ साहब उसकी इस नम्रता से प्रसन्न हो गये। मुसकराकर बोले—हर एक बिल्टी पर एक आना बँधा हुआ है, खुली हुई बात है! लोग

शौक से देते है। आप अमीर आदमी हैं; मगर रस्म न बिगाड़िएगा। एक बार कोई रस्म टूट जाती है, तो उसका फिर बँधना मुश्किल हो जाता है। इस एक आने मे चपरासियों का हक है। जो बडे बाबू पहले थे, वह पचीस रुपया महीना लेते थे, मगर यह कुछ नहीं लेते।

रमा ने अरुचि प्रकट करते हुए कहा—गंदा काम है, मैं सफाई से काम करना चाहता हूँ।

बूढ़े मियाँ ने हँसकर कहा—अभी गन्दा मालूम होता है, लेकिन फिर इसी मे मजा आयेगा।

खा साहब को बिदा करके रमा अपनी कुर्सी पर आ बैठा और एक चपरासी से बोला—इन लोगों से कहो, बरामदे के नीचे जायें। एक-एक करके नम्बरवार आवें, एक कागज पर सबके नाम नम्बरवार लिख लिया करो।

एक बनिया जो दो घंटे से खडा था, खुश होकर बोला—हाँ सरकार यह बहुत अच्छा होगा।

रमा०—जो पहले आवे, उसका काम पहले होना चाहिए। बाकी लोग अपना नम्बर आने तक बाहर रहे। यह नहीं कि सबसे पीछे वाले शोर मचाकर पहले आ जायें और पहले वाले खड़े मुँह ताकते रहें।

कई व्यापारियों ने कहा—हाँ बाबूजी, यह इंतजाम हो जाय तो बहुत अच्छा हो। भम्भड मे बडी देर हो जाती है।

इतना नियंत्रण रमा का रोब जमाने के लिए काफी था। वणिक् समाज मे ही उसके रंग-ढंग की आलोचना और प्रशंसा होने लगी। किसी बडे कालेज के प्रोफेसर को इतनी ख्याति उम्र भर मे न मिलती।

दो-चार दिन के अनुभव से ही रमा को सारे दाँव-घात मालूम हो गये। ऐसी-ऐसी बातें सूझ गयीं जो खाँ साहब को ख्वाब मे भी न सूझी थीं। माल की तौल, गिनती और परख मे इतनी धाधली थी, जिसकी कोई हद नहीं। जब इस धाधली से व्यापारी लोग सैकड़ों की रकम डकार जाते है, तो रमा बिल्टी पर एक आना लेकर ही क्यों संतुष्ट हो जाये, जिसमे आध आना चपरासियो का है? माल का तौल और परख मे नियमों का पालन करके वह धन और कीर्ति, दोनों ही कमा सकता है।

यह अवसर वह क्यों छोडने लगा ? विशेषकर जब बडे बाबू उसके गहरे दोस्त थे। रमेश बाबू इस नये रंगरूट की कार्य पटुता पर मुग्ध हो गये। उसकी पीठ ठोंककर बोले—कायदे के अन्दर रहो और जो चाहो करो, तुम पर आँच तक न आने पावेगी।

रमा की आमदनी तेजी से बढ़ने लगी। आमदनी के साथ प्रभाव भी बढा। सूखी कलम घिसनेवाले दफ्तर के बाबुओं को सिगरेट, पान, चाय या जलपान की इच्छा होती, तो रमा के पास चले आते, उस बहती गंगा मे सभी हाथ धो सकते थे। सारे दफ्तर मे रमा की सराहना होने लगी। पैसे को तो ठीकरा समझता है। क्या दिल है कि वाह! और जैसा दिल है, वैसी ही जबान भी। मालूम होता है नस-नस मे शराफत भरी हुई है। बाबुओं का जब यह हाल था, तो चपरासियों और मुहर्रिरों का पूछना ही क्या! सबके सब रमा के बिना दामो के गुलाम थे। उन गरीबों की आमदनी ही नहीं, प्रतिष्ठा भी खूब बढ़ गयी थी। जहाँ गाड़ीवान तक फटकार दिया करते थे, वहाँ अब अच्छे-अच्छे की गर्दन पकड़कर नीचे ढकेल देते थे। रमानाथ की तूती बोलने लगी।

मगर जालपा की अभिलाषा अभी एक भी न पूरी हुई। नागपंचमी के दिन मुहल्ले की कई युवतियाँ जालपा के साथ कजली खेलने आयीं; मगर जालपा अपने कमरे से बाहर नही निकली। भादों मे जन्माष्टमी का उत्सव आया। पडोस ही मे एक सेठ जी रहते थे; उनके यहाँ बड़ी धूमधाम से उत्सव मनाया जाता था। वहाँ से सास और बहू को बुलावा आया। जागेश्वरी गयी, जालपा ने जाने से इनकार किया। इन तीन महीनों मे उसने रमा से एक बार भी आभूषण की चर्चा न की, पर उसका एकान्त प्रेम, उसके आचरण से उत्तेजक था। इससे ज्यादा उत्तेजक वह पुराना सूचीपत्र था जो एक दिन रमा कहीं से उठा लाया था। इसमे भाँति-भाँति के सुन्दर आभूषणो के नमूने बने हुए थे। उनके मूल्य भी लिखे हुए थे। जालपा एकान्त मे इस सूचीपत्र को बडे ध्यान से देखा करती। रमा को देखते ही वह सूचीपत्र छिपा लेती थी। इस हार्दिक कामना को प्रकट करके वह अपनी हँसी न उड़वाना चाहती थी।

रमा आधी रात के बाद लौटा, तो देखा जालपा चारपाई पर पड़ी

है। हँसकर बोला—बड़ा अच्छा गाना हो रहा था। तुम नहीं गयीं, बड़ी गलती की।

जालपा ने मुंह फेर लिया, कोई उत्तर न दिया।

रमा ने फिर कहा—यहाँ अकेले पड़े-पड़े तुम्हारा जी घबराता रहा होगा?

जालपा ने तीव्र स्वर में कहा—तुम कहते हो, मैंने गलती की। मैं समझती हूँ, मैंने अच्छा किया। वहाँ किसके मुंह में कालिख लगती?

जालपा ताना तो न देना चाहती थी; पर रमा की इन बातों ने उसे उत्तेजित कर दिया। रोष का एक कारण यह भी था कि उसे अकेला छोड़कर सारा घर उत्सव देखने चला गया था। अगर उन लोगों के हृदय होता, तो क्या वहाँ जाने से इन्कार न कर देते?

रमा ने लज्जित होकर कहा—कालिख लगाने की कोई बात न थी, सभी जानते है कि चोरी हो गयी है, और इस जमाने मे दो-चार हजार के गहने बनवा लेना मुंह का कौर नहीं है।

चोरी का शब्द जबान पर लाते हुए रमा का हृदय धड़क उठा। जालपा पति की ओर तीव्र दृष्टि से देखकर रह गयी। और कुछ बोलने से बात बढ़ जाने का भय था, पर रमा को उसकी दृष्टि से ऐसा भासित हुआ, मानो उसे चोरी का रहस्य मालूम है और वह केवल संकोच के कारण उसे खोलकर नहीं कह रही है। उसे स्वप्न की बात भी याद आई, जो जालपा ने चोरी की रात को देखा था। वह दृष्टि बाण के समान उसके हृदय को छेदने लगी; उसने सोचा शायद मुझे भ्रम हुआ। इस दृष्टि मे रोष के सिवा और कोई भाव नहीं है; मगर यह बोलती क्यों नहीं? चुप क्यों हो गयी! उसका चुप हो जाना ही गजब था। अपने मन का संशय मिटाने और जालपा के मन की थाह लेने के लिए रमा ने मानो डुबकी मारी—यह कौन जानता था कि डोली से उतरते ही यह विपत्ति तुम्हारा स्वागत करेगी।

जालपा आँखों में आँसू भरकर बोली—तो मैं तुमसे गहने के लिए रोती तो नहीं हूँ। भाग्य में जो लिखा था वह हुआ; आगे भी वही होगा, जो लिखा है। जो औरतें गहने नहीं पहनतीं, क्या उनके दिन नहीं कटते?

इस वाक्य ने रमा का संशय तो मिटा दिया; पर इसमें जो तीव्र वेदना छिपी हुई थी, वह छिपी न रही। इन तीन महीनों मे बहुत प्रयत्न करने पर भी वह सौ रुपये से अधिक संग्रह न कर सका था। बाबू लोगों के आदर-सत्कार मे उसे बहुत-कुछ गलना पडता था; मगर बिना खिलाये-पिलाये काम भी तो न चल सकता था। सभी उसके दुश्मन हो जाते और उखाड़ने की बात सोचने लगते। मुफ्त का धन अकेले नही हजम होता, यह वह अच्छी तरह जानता था। वह स्वयं एक पैसा भी व्यर्थ खर्च न करता। चतुर व्यापारी की भाँति वह जो कुछ खर्च करता था, वह केवल कमाने के लिए। आश्वासन देते हुए बोला—ईश्वर ने चाहा, तो दो-एक महीने मे कोई चीज बन जायेगी।

जालपा—मैं उन स्त्रियों मे नहीं हूँ, जो गहनों पर जान देती हैं। हाँ, इस तरह किसी के घर आते-जाते शर्म आती ही है।

रमा का चित्त ग्लानि से व्याकुल हो उठा। जालपा के एक-एक शब्द से निराशा टपक रही थी। इस अपार वेदना का कारण कौन था? क्या यह भी उसी का दोष न था, कि इन तीन महीनों मे उसने कभी गहनों की चर्चा नहीं की? जालपा यदि संकोच के कारण इसकी चर्चा न करती थी तो रमा को उसके आँसू पोंछने के लिए, क्या मौन के सिवा दूसरा उपाय न था? मुहल्ले मे रोज ही एक-न-एक उत्सव होता रहता है, रोज ही पास-पड़ोस की औरतें मिलने आती है, बुलावे भी रोज आते ही हैं, बेचारी जालपा कब तक इस प्रकार आत्मा का दमन करती रहेगी, अन्दर-ही-अन्दर कुढ़ती रहेगी? हँसने बोलने का किसका जी नहीं चाहता, कौन कैदियों की तरह अकेला पड़ा रहना पसन्द करता है? मेरे ही कारण तो इसे यह भीषण यातना सहनी पड़ रही है।

उसने सोचा, क्या किसी सराफ़ से गहने उधार नहीं लिए जा सकते?

कई बड़े सराफ़ों से उसका परिचय था; लेकिन उनसे वह यह बात कैसे कहता? कहीं वे इन्कार कर दे तो? या संभव है, बहाना करके टाल दे। उसने निश्चय किया कि अभी उधार लेना ठीक न होगा। कहीं वादे पर रुपये न दे सका, तो व्यर्थ मे थुक्का-फजीहत होगी। लज्जित होना पड़ेगा। अभी कुछ दिन और धैर्य से काम लेना चाहिये।

सहसा उसके मन मे आया, इस विषय मे जालपा की राय लूं। देखूं, वह क्या कहती है। अगर उसकी इच्छा है तो किसी सराफ़ से वादे पर चीजे ले ली जाये; मैं इस अपमान और सकोच को सह लूंगा। जालपा को संतुष्ट करने के लिए उसे गहनों की कितनी फ़िक्र है! बोला—तुमसे एक सलाह करना चाहता हूँ। पूछूं या न पूछूं।

जालपा को नींद आ रही थी। आँखे बन्द किये बोली—अब सोने दो भई, सवेरे उठना है।

रमा—अगर तुम्हारी राय हो, तो किसी सराफ से वादे पर गहने बनवा लाऊँ। इसमे कोई हर्ज तो नहीं?

जालपा की आँखे खुल गयीं। कितना कठोर प्रश्न था? किसी मेहमान से पूछना—कहिए तो आपके लिये भोजन लाऊँ, कितनी बड़ी अशिष्टता है! इसका तो आशय है कि हम मेहमान को खिलाना नहीं चाहते। रमा को चाहिए था कि चीजे लाकर जालपा के सामने रख देता। उसके बार-बार पूछने पर भी यह कहना चाहिए था कि दाम देकर लाया हूँ तब वह अलबत्ता खुश होती। इस विषय मे उसकी सलाह लेना घाव पर नमक छिड़कना था। रमा की ओर अविश्वास की आँखों से देखकर बोली—मैं तो गहनों के लिए इतनी उत्सुक नहीं हूँ।

रमा०—नहीं, यह बात नही, इसमे क्या हर्ज है। किसी सराफ़ से चीज़े ले लूं, धीरे-धीरे उसके रुपये चुका दूँ।

जालपा ने दृढ़ता से कहा—नहीं, मेरे लिए कर्ज की जरूरत नहीं। मैं वेश्या नहीं कि तुम्हे नोच-खसोटकर अपना रास्ता लूं। मुझे तुम्हारे साथ जीना और मरना है। अगर मुझे सारी उम्र बेगहनों के रहना पड़े, तो भी मैं कर्ज लेने को न कहूँगी। औरते गहनों की इतनी भूखी नहीं होतीं। घर के प्राणियों को संकट मे डालकर गहने पहनने वाली दूसरी होंगी; लेकिन तुमने तो पहले कहा था कि जगह बड़ी आमदनी की है, मुझे तो कोई विशेष बचत दिखायी नहीं देती।

रमा०—बचत तो जरूर होती, और अच्छी होती; लेकिन जब अहलकारों के मारे बचने भी पाये। सब शैतान सिर पर सवार रहते हैं। मुझे पहले नहीं मालूम था कि यहाँ इतने प्रेतों की पूजा करनी होगी।

जालपा—तो अभी कौन-सी जल्दी है, बनते रहेंगे धीरे-धीरे।

रमा—खैर, तुम्हारी सलाह है तो एक-आध महीने और चुप रहता हूँ। मैं सबसे पहले कंगन बनवाऊँगा।

जालपा ने गद्गद् होकर कहा—तुम्हारे पास अभी उतने रुपये कहाँ होंगे ?

रमा०—इसका उपाय तो मेरे पास है। तुम्हे कैसा कंगन पसन्द है ?

जालपा अब अपने कृत्रिम संयम को न निभा सकी। आलमारी मे से आभूषणों का सूचीपत्र निकालकर रमा को दिखाने लगी। इस समय वह इतनी तत्पर थी, मानो सोना आकर रखा हुआ है, सुनार बैठा हुआ है, केवल डिजाइन ही पसन्द करना बाकी है। उसने सूची के दो डिजाइन पसन्द किये। दोनों वास्तव मे बहुत ही सुन्दर थे। पर रमा उनका मूल्य देखकर सन्नाटे मे आ गया। एक, एक हजार का था, दूसरा आठ सौ का।

रमा०—ऐसी चीज तो शायद यहाँ बन भी न सके ; मगर कल मैं जरा सराफ़े की सैर करूँगा।

जालपा ने पुस्तक बन्द करते हुए करुण स्वर मे कहा—इतने रुपये न जाने तुम्हारे पास कब तक होंगे ? उँह, बनेंगे-बनेंगे, नहीं कौन कोई गहनों के बिना मरा जाता है।

रमा को आज इसी उधेड़बुन में बड़ी रात तक नींद न आयी। ये जडाऊ कगन इन गोरी-गोरी कलाइयों पर कितने खिलेंगे। यह मोह स्वप्न देखते-देखते उसे न जाने कब नीद आ गयी।

(१२)

दूसरे दिन सवेरे ही रमा ने रमेश बाबू के घर का रास्ता लिया। उनके यहाँ भी जन्माष्टमी में झाँकी होती थी। उन्हे तो इससे कोई अनुराग न था ; पर उनकी स्त्री उत्सव मनाती थीं, उसी यादगार मे अब तक यह उत्सव मनाते जाते थे। रमा को देखकर बोले—आओजी, रात क्यों नहीं आये ? मगर यहाँ गरीबों के घर क्यों आते। सेठजी की झाँकी कैसे छोड देते ? खूब बहार रही होगी !

रमा०—आपकी-सी सजावट तो न थी, हाँ और सालों से अच्छी

थी। कई कत्थक और वेश्याएँ भी आयी थीं! मैं तो चला आया था, मगर सुना रात भर गाना होता रहा।

रमेश०—सेठजी ने तो वचन दिया था कि वेश्याएँ न आने पावेंगी, फिर यह क्या किया! इन मूर्खों के हाथों हिन्दू-धर्म का सर्वनाश हो जायगा। एक तो वेश्याओं का नाच यों भी बुरा, उस पर ठाकुरद्वारे मे! छिः, छिः! न जाने इन गधों को कब अक्ल आयेगी!

रमा०—वेश्याएँ न हों, तो झाँकी देखने जाये ही कौन? सभी तो आपकी तरह योगी और तपस्वी नहीं हैं।

रमेश०—मेरा वश चले, तो मैं कानून से यह दुराचार बन्द कर दूँ। खैर, फ़ुरसत है; तो आओ एक आध बाजी हो जाये।

रमा०—और आया किसलिए हूँ; मगर आज आपको मेरे साथ जरा सराफ़े तक चलना पडेगा। यों कई बड़ी-बड़ी कोठियों से मेरा परिचय है। मगर आपके रहने से कुछ और ही बात होगी।

रमेश०—चलने को चला चलूंगा; मगर इस विषय मे मैं बिलकुल कोरा हूँ। न कोई चीज बनवायी. न खरीदी। तुम्हें क्या कुछ लेना है?

रमा०—लेना देना क्या है, जरा भाव-ताव देखूंगा।

रमेश०—मालूम होता है, घर मे फटकार पड़ी है।

रमा०—जी, बिलकुल नहीं। वह तो जेवरों का नाम तक नहीं लेती। मैं कभी पूछता भी हूँ, तो मना करती है; लेकिन अपना कर्तव्य भी तो है? जब से गहने चोरी चले गये एक चीज भी नहीं बनी।

रमेश०—मालूम होता है, कमाने का ढंग आ गया। क्यों न हो, कायस्थ के बच्चे हो। कितने रुपये जोड़ लिये?

रमा०—रुपये किसके पास है, वादे पर लूंगा?

रमेश०—इस खब्त मे न पड़ो। जब तक रुपये हाथ मे न हों, बाजार की तरफ जाओ ही मत। गहनों से बूड्ढे नयी बीबियों का दिल खुश किया करते हैं। उन बेचारों के पास गहनों के सिवा होता ही क्या है। जवानों के लिए और बहुत से लटके है। यों मैं चाहूँ तो दो-चार हजार का माल दिलवा सकता हूँ, मगर भाई, कर्ज की लत बुरी है।

रमा०—मैं दो-तीन महीनों मे सब रुपये चुका दूँगा; अगर मुझे

इसका विश्वास न होता, तो मैं जिक्र ही न करता।

रमेश०—तो दो-तीन महीने और सब्र क्यों नहीं कर जाते? कर्ज से बडा पाप दूसरा नहीं। न इससे बडी विपत्ति दूसरी है। यहाँ एक बार धडका खुला कि तुम आये दिन सराफ़े की दूकान पर नजर आओगे। बुरा न मानना। मैं जानता हूँ, तुम्हारी आमदनी अच्छी है, पर भविष्य के भरोसे पर और चाहे जो काम करो, लेकिन कर्ज कभी मत लो। गहनों का मर्ज न जाने इस दरिद्र देश मे कैसे फैल गया। जिन लोगों को भोजन का ठिकाना नहीं, वे भी गहनों के पीछे प्राण देते है। हर साल अरबों रुपये केवल सोना-चाँदी खरीदने मे व्यय हो जाते है। ससार के और किसी देश मे इन धातुओ की इतनी खपत नही। तो बात क्या है? उन्नत देशों मे धन व्यापार मे लगता है, जिससे लोगों की परवरिश होती है, और धन बढता है। यहाँ धन शृंगार मे खर्च होता है, उससे उन्नति और उपकार की जो महान् शक्तियाँ है, उन दोनों का ही अन्त हो जाता है। बस यही समझ लो कि जिस देश के लोग जितने ही मूर्ख होंगे, वहाँ जेवरों का प्रचार भी उतना ही अधिक होगा। यहाँ तो खैर नाक-कान छिदाकर ही रह जाते है, मगर कई ऐसे देश भी हैं, जहाँ ओठ छेदकर लोग गहने पहनते हैं।

रमा ने कौतूहल से पूछा—वह कौन-सा देश है?

रमेश०—इस समय ठीक याद नहीं आता, पर शायद अफ्रीका हो। हमे यह सुनकर अचम्भा होता है; लेकिन अन्य देश वालों के लिए नाक-कान का छिदाना कुछ कम अचम्भे की बात न होगी। बुरा मरज है, बहुत ही बुरा। वह धन जो भोजन मे खर्च होना चाहिए, बाल-बच्चों का पेट काटकर गहनों की भेंट कर दिया जाता है। बच्चों को दूध न मिले, न सही। घी की गंध तक उनकी नाक मे न पहुँचे न सही। मेवों और फलों के दर्शन उन्हे न हों, कोई परवाह नहीं। पर देवी जी गहने जरूर पहनेंगी और स्वामीजी गहने जरूर बनवायेंगे। दस-दस, बीस-बीस रुपये पाने वाले क्लर्कों को देखता हूँ, जो सड़ी हुई कोठियो मे पशुओं की भाँति जीवन काटते हैं, जिन्हे सवेरे का जलपान तक मयस्सर नही होता, उन पर भी गहनो की सनक सवार रहती है। इस प्रथा से हमारा

सर्वनाश होता जा रहा है। मैं तो कहता हूँ, यह गुलामी पराधीनता से कहीं बढ़कर है। इसके कारण हमारा कितना आत्मिक, नैतिक, दैहिक, आर्थिक और धार्मिक पतन हो रहा है, इसका अनुमान ब्रह्मा भी नहीं कर सकते !

रमा०—मैं तो समझता हूँ, ऐसा कोई भी देश नहीं, जहाँ स्त्रियाँ गहने न पहनती हो। क्या योरप मे गहनों का रिवाज नहीं है ?

रमेश०—तो तुम्हारा देश योरप नही है। वहाँ के लोग धनी हैं। वहाँ धन लुटाये, उन्हे शोभा देता है; हम दरिद्र है, हमारी कमाई का एक पैसा भी फजूल न खर्च होना चाहिये।

रमेश बाबू इस वादविवाद मे शतरंज भूल गये। छुट्टी का दिन था ही, दो-चार मिलने वाले और आ गये, रमानाथ चुपके से खिसक आया। इस बहस मे एक बात ऐसी थी, जो उसके दिल मे बैठ गयी। उधार गहने लेने का विचार उसके मन से निकल गया। कही वह जल्दी रुपया न चुका सका तो कितनी बड़ी बदनामी होगी। सराफ़े तक गया अवश्य; पर किसी दुकान में जाने का साहस न हुआ। उसने निश्चय किया, अभी तीन-चार महीने तक गहनों का नाम न लूंगा।

वह घर पहुँचा तो नौ बज गये थे। दयानाथ ने उसे देखा तो पूछा —आज सवेरे-सवेरे कहाँ चले गये थे ?

रमा०—जरा बडे बाबू से मिलने गया था।

दया०—घंटे-आध-घटे के लिये पुस्तकालय क्यों नही चले जाया करते ? गप-शप मे दिन गवाँ देते हो। अभी तुम्हारी पढ़ने-लिखने की उम्र है। इम्तहान न सही, अपनी योग्यता तो बढ़ा सकते हो। एक सीधा-सा खत लिखना पड़ जाता है तो बगले झाँकने लगते हो। असली शिक्षा स्कूल छोडने के बाद ही शुरू होती है; और वही हमारे जीवन मे काम भी आती है। मैंने तुम्हारे विषय मे कुछ ऐसी बातें सुनी है, जिससे मुझे बहुत खेद हुआ है और तुम्हे समझा देना मैं अपना धर्म समझता हूँ। मैं यह हरगिज नहीं चाहता कि मेरे घर मे हराम की कौड़ी भी आये। मुझे नौकरी करते तीस साल हो गये। चाहता तो अब तक हजारों रुपये जमा कर लेता ; लेकिन मैं कसम खाता हूँ कि कभी एक पैसा हराम का नहीं लिया।

तुममे यह आदत कहाँ से आ गई, यह मेरी समझ मे नहीं आता।

रमा ने बनावटी क्रोध दिखाकर कहा—किसने आप से कहा है। जरा उसका नाम तो बताइये ? मूछें उखाड लूं उसकी !

दया०—किसी ने भी कहा हो, इससे तुम्हे कोई मतलब नही। तुम उसकी मूछें उखाड लोगे, इसलिए बताऊँगा नहीं, लेकिन बात सच है या झूठ, मैं इतना ही पूछना चाहता हूं।

रमा०—बिलकुल झूठ !

दया०—बिलकुल झूठ ?

रमा०—जी हाँ, बिलकुल झूठ !

दया०—तुम दस्तूरी नही लेते ?

रमा०—दस्तूरी रिश्वत नही है, सभी लेते है और खुल्लमखुल्ला लेते हैं। लोग बिना माँगे आप-ही-आप देते है, मैं किसी से माँगने नहीं जाता।

दया०—सभी खुल्लमखुल्ला लेते हैं, और लोग बिना माँगे देते है, इससे तो रिश्वत की बुराई कम नही हो जाती।

रमा०—दस्तूरी को बन्द कर देना मेरे वश की बात नहीं। मैं खुद न लूं, लेकिन चपरासी और मुहर्रिर का हाथ तो नहीं पकड़ सकता। आठ-आठ नौ-नौ पाने वाले नौकर अगर न लें, तो उनका काम नहीं चल सकता। मैं खुद न लूं, पर उन्हे नहीं रोक सकता।

दयानाथ ने उदासीन भाव से कहा—मैंने समझा दिया, मानने न मानने का अख्तियार तुम्हे है।

यह कहते हुए दयानाथ दफ्तर चले गये। रमा के मन मे आया, साफ कह दे, आपने निस्पृह बनकर क्या कर लिया, जो मुझे दोष दे रहे है ? हमेशा पैसे-पैसे को मुहताज रहे। लड़कों को पढ़ा तक न सके। जूते-कपडे तक न पहना सके। यह डींग मारना तब शोभा देता, जब कि नीयत भी साफ रहती, और जीवन भी सुख से कटता।

रमा घर मे गया तो माता ने पूछा—आज कहाँ चले गये थे बेटा ? तुम्हारे बाबू जी इसी पर बिगड रहे थे ?

रमा०—इस पर तो नही बिगड़ रहे थे; हाँ, उपदेश दे रहे थे कि

दस्तूरी मत लिया करो, इससे आत्मा दुर्बल होती है और बदनामी होती है।

जागे०—तुमने कहा नहीं, आपने बड़ी ईमानदारी की तो कौन-से झंडे गाड़ दिये; सारी जिन्दगी पेट पालते रहे।

रमा०—कहना तो चाहता था, पर चिढ जाते। जैसे आप कौड़ी-कौड़ी को मुहताज रहे, वैसे मुझे भी बनाना चाहते है। आपको लेने का शऊर तो है नहीं। जब देखा कि यहाँ दाल नहीं गलती, तो भगत बन गये। यहाँ ऐसे घोंघावसन्त नहीं है। बनियों से रुपये ऐंठने के लिए अक्ल चाहिये, दिल्लगी नही है। जहाँ किसी ने भगतपन किया और मैं समझ गया बुद्धू है। लेने की तमीज नहीं, क्या करे बेचारा। किसी तरह आँसू तो पोंछे।

जागे०—बस-बस यही बात है, बेटा! जिसे लेना आवेगा, वह जरूर लेगा। इन्हे तो बस घर मे कानून बघारना आता है, और किसी के सामने बात तक तो मुँह से निकलती नहीं, रुपये निकाल लेना तो मुश्किल है।

रमा दफ्तर जाते समय ऊपर कपडे पहनने गया तो जालपा ने उसे तीन लिफाफे डाक मे छोड़ने के लिए दिये। उस वक्त उसने तीनों लिफाफे जेब में डाल लिए, लेकिन रास्ते मे उन्हें खोलकर चिट्ठियाँ पढ़ने लगा। चिट्ठियाँ क्या थीं विपत्ति और वेदना का करुण विलाप था जो उसने अपनी तीनों सहेलियों को सुनाया था। तीनों का विषय एक ही था। केवल भावों का अन्तर था—जिन्दगी पहाड़ हो गयी है, न रात को नींद आती है, न दिन को आराम; पतिदेव को प्रसन्न करने के लिए कभी-कभी हँस-बोल लेती हूँ; पर दिल हमेशा रोया करता है। न किसी के घर जाती हूँ, न किसी को मुँह दिखाती हूँ। ऐसा जान पड़ता है कि यह शौक मेरी जान ही लेकर छोड़ेगा। मुझसे वादे तो रोज किये जाते हैं, रुपये जमा हो रहे है, सुनार ठीक किया जा रहा है डिजाइन तय किया जा रहा है; पर यह सब धोखा है और कुछ नहीं।

रमा ने तीनों चिट्ठियाँ जेब मे रख लीं। डाकखाना सामने से निकल गया, पर उसने उन्हें छोड़ा नहीं। यह अभी तक समझती है कि

मैं इसे धोखा दे रहा हूँ ! क्या करूँ, कैसे विश्वास दिलाऊँ ? अगर अपना वश होता इसी वक्त आभूषणों के टोकरे भर-भर जालपा के सामने रख देता; उसे किसी बड़े सराफ की दूकान पर ले जाकर कहता, तुम्हे जो-जो चीज लेनी हो, ले लो। इतनी अपार वेदना है, जिसने विश्वास का भी अपहरण कर लिया ! उसको आज उस चोट का सच्चा अनुभव हुआ, जो उसने झूठी मर्यादा की रक्षा से उसे पहुँचाई थी। अगर वह जानता, उस अभिनय का यह फल होगा, तो कदाचित् अपनी डींगों का परदा खोल देता। क्या ऐसी दशा मे भी, जब जालपा इस शोक-ताप से फुँकी जा रही थी, रमा को कर्ज लेने मे संकोच करने की जगह थी ? उसका हृदय कातर हो उठा। उसने पहली बार सच्चे हृदय से ईश्वर से याचना की—भगवान, मुझे चाहे जो दंड देना, पर मेरी जालपा को मुझसे मत छीनना। इसके पहले मेरे प्राण हर लेना। उसके रोम-रोम से आत्मध्वनि निकलने लगी—ईश्वर, ईश्वर, मेरी दीन दया पर दया करो !

लेकिन इसके साथ ही उसे जालपा पर क्रोध भी आ रहा था। जालपा ने क्यों मुझसे यह बात नहीं कही ? मुझसे क्यो परदा रखा और मुझसे परदा रखकर अपनी सहेलियों से यह दुखड़ा रोया ?

बरामदे मे माल तौला जा रहा था। मेज पर रुपये-पैसे रखे जा रहे थे और रमा चिन्ता मे डूबा बैठा हुआ था। किससे सलाह ले। उसने विवाह ही क्यों किया ? सारा दोष उसका अपना था। जब वह घर की दशा जानता था, तो क्यों विवाह करने से इन्कार नहीं कर दिया ? आज उसका मन काम मे नहीं लगता था। समय से पहिले ही उठकर चला आया।

जालपा ने उसे देखते ही पूछा—मेरी चिट्ठियाँ छोड़ तो नहीं दीं ?

रमा ने बहाना किया—अरे इनकी तो याद ही नहीं रही। जेब मे पड़ी रह गयीं।

जालपा—यह बहुत अच्छा हुआ। लाओ मुझे दे दो, अब न भेजूगी।

रमा०—क्यों कल भेज दूंगा !

जालपा—नही अब मुझे भेजना ही नही है, कुछ ऐसी बाते लिख

गयी थी, जो मुझे न लिखना चाहिए था। अगर तुमने छोड़ दी होती, तो मुझे दुःख होता। मैंने तुम्हारी निन्दा की थी।

यह कह कर वह मुस्कराई।

रमा०—जो बुरा है, दगाबाज है, धूर्त है, उसकी निंदा होनी ही चाहिए।

जालपा ने व्यग्र होकर पूछा—तुमने चिट्ठियाँ पढ़ लीं क्या?

रमा ने निःसंकोच भाव से कहा—हाँ, यह कोई अक्षम्य अपराध है?

जालपा कातर स्वर में बोली—तब तो मुझसे बहुत नाराज होगे?

आँसुओं के आवेग से जालपा की आवाज रुक गयी। उसका सिर झुक गया और झुकी हुई आँखों से आँसुओं की बूँदें अञ्चल पर गिरने लगीं। एक क्षण में उसने स्वर को सभाल कर कहा—मुझसे बड़ा भारी अपराध हुआ है। जो चाहो सजा दो; पर मुझसे अप्रसन्न मत हो। ईश्वर जानते हैं; तुम्हारे जाने के बाद मुझे कितना दुःख हुआ। मेरी कलम से न जाने कैसे ऐसी बातें निकल गयीं।

जालपा जानती थी कि रमा को आभूषणों की चिन्ता मुझसे कम नहीं है, लेकिन मित्रों से अपनी व्यथा कहते समय हम बहुधा अपना दुःख बढ़ाकर कहते हैं। जो बातें परदे की समझी जाती हैं, उनकी चर्चा करने से एक तरह का अपमान जाहिर होता है। हमारे मित्र समझते हैं, हमसे जरा भी दुराव नही रखता और उन्हे हमसे सहानुभूति हो जाती है। अपनापन दिखाने की यह आदत औरतों मे कुछ अधिक होती है।

रमा जालपा के आँसू पोंछते हुए बोला—मैं तुमसे अप्रसन्न नहीं हूँ प्रिये, अप्रसन्न होने की तो कोई बात ही नहीं है। आशा का विलम्ब ही दुराशा है। क्या मैं इतना नहीं जानता? अगर तुमने मुझे मना न कर दिया होता, तो अब तक मैंने किसी-न-किसी तरह एक-दो चीजें अवश्य ही बनवा दी होतीं। मुझसे भूल यही हुई कि तुमसे सलाह ली। यह तो वैसा ही है जैसे मेहमान को पूछ-पूछकर भोजन दिया जाये। उस वक्त मुझे ध्यान न रहा कि सकोच मे आदमी इच्छा होने पर भी 'नहीं-नहीं' करता है। ईश्वर ने चाहा तो तुम्हे बहुत दिनों तक इन्तजार न करना पड़ेगा।

जालपा ने सचिन्त नेत्रो से देखकर कहा—तो क्या उधार लाओगे?

रमा०—हाँ, उधार लाने मे कोई हर्ज नहीं है। जब सूद नही देना है, तो जैसे नकद वैसे उधार! ऋण से दुनिया का काम चलता है। कौन ऋण नहीं लेता? हाथ मे रुपया आ जाने से अलल्ले-तलल्ले खर्च हो जाते हैं। कर्ज सिर पर सवार रहेगा तो उसकी चिन्ता हाथ रोके रहेगी।

जालपा—मैं तुम्हे चिन्ता मे नही डालना चाहती। अब मैं भूलकर भी गहनो का नाम न लूगी।

रमा०—नाम तो तुमने कभी नही लिया; लेकिन तुम्हारे नाम लेने से मेरे कर्तव्य का अन्त नहीं हो जाता। तुम कर्ज से व्यर्थ इतना डरती हो। रुपये जमा होने के इन्तजार मे बैठा रहूँगा, तो शायद कभी न जमा होंगे। इसी तरह लेते-देते साल मे तीन-चार चीजे बन जायेगी।

जालपा—मगर कोई छोटी-सी चीज लाना।

रमा०—हाँ ऐसा तो करूँगा ही।

रमा बाजार चला तो खूब अंधेरा हो गया था। दिन रहते जाता तो सभव था, मित्रों मे किसी की निगाह उस पर पड़ जाती। मुंशी दयानाथ ही देख लेते। वह इस मामले को गुप्त ही रखना चाहता था।

(१३]

सराफे मे गंगू की दूकान मशहूर थी। गगू था तो ब्राह्मण, पर बड़ा ही व्यापार-कुशल। उसकी दूकान पर नित्य ग्राहकों का मेला लगा रहता था। उसकी कर्म-निष्ठा ग्राहको मे विश्वास पैदा करती थी। और दूकानों पर ठगे जाने का भय था। वहाँ किसी तरह का धोखा न था। गगू ने रमा को देखते ही मुसकराकर कहा—आइये बाबूजी, ऊपर आइए। बडी दया की। मुनीमजी, आपके वास्ते पान मगवाओ। क्या हुक्म है बाबूजी, आप तो जैसे मुझसे नाराज हैं। कभी आते ही नहीं। गरीबों पर कभी-कभी दया किया कीजिए।

गगू की शिष्टता ने रमा की हिम्मत खोल दी। अगर उसने इतने आग्रह से न बुलाया होता, तो शायद रमा को दूकान पर जाने का साहस न होता। अपनी साख का उसे अभी तक अनुभव न हुआ था। दूकान पर

जाकर बोला :—यहाँ हम-जैसे मजदूरों का कहाँ गुजर है, महाराज ! गाँठ मे कुछ हो भी तो !

गंगू—यह आप क्या कहते हैं सरकार। आपकी दूकान है, जो चीज चाहिये ले जाइए। दाम आगे-पीछे मिलते रहेगे। हम लोग आदमी पहचानते है बाबू साहब, ऐसी बात नहीं है। धन्य भाग कि आप हमारी दूकान पर आये तो। दिखाऊँ कोई जड़ाऊ चीजे ? कोई कंगन, कोई हार। अभी हाल ही मे दिल्ली से माल आया है।

रमा०—कोई हल्के दामों का हार दिखाइए।

गंगू—यही कोई सात-आठ सौ तक ?

रमा०—अजी नहीं, हद चार सौ तक।

गंगू—मैं आपको दोनों दिखाये देता हूँ। जो पसन्द आये ले लीजिएगा। हमारे यहाँ किसी तरह का दगल-फसल नहीं, बाबू साहब। इसकी आप जरा भी चिन्ता न करें। पाँच बरस का लड़का हो, या सौ बरस का बूढ़ा, सबके साथ एक बात रखते हैं। मालिक को भी एक दिन मुंह दिखाना है, बाबू जी !

संदूक सामने आया; गंगू ने हार निकाल-निकालकर दिखाने शुरू किये। रमा की आँखे खुल गयीं, जी लोट-पोट हो गया। क्या सफाई थी ! नगीनों की कितनी सुन्दर सजावट ! कैसी आब-ताब ! उनकी चमक दीपक को मात करती थी। रमा ने सोच रखा था, सौ रुपये से ज्यादा उधार न लगाऊँगा, लेकिन चार सौ वाला हार आँखों मे कुछ जँचता न था। और जेब में कुल तीन सौ रुपये थे। सोचा, अगर यह हार ले गया और जालपा ने पसन्द न किया, तो फायदा ही क्या। ऐसी चीज ले जाऊँ कि वह देखते ही फड़क उठे। वह जड़ाऊ हार उसकी गर्दन मे कितना शोभा देगा। वह हार एक सहस्र मणि-रंजित नेत्रों से उसके मन को खींचने लगा। वह अभिभूत होकर उसकी ओर ताक रहा था; पर मुंह से कुछ कहने का साहस न होता था। कहीं गंगू ने तीन सौ रुपये उधार लगाने से इनकार कर दिया, तो उसे कितना लज्जित होना पड़ेगा। गंगू ने उसके मन का संशय ताड़कर कहा—आपके लायक तो बाबूजी यही चीज है; अँधेरे घर में रख दीजिए तो उजाला हो जायेगा।

रमा०—पसन्द तो मुझे भी यही है; लेकिन मेरे पास कुल तीन सौ रुपये हैं, यह समझ लीजिए।

शर्म से रमा के मुंह पर लाली छा गयी। वह धड़कते हुए हृदय से गंगू का मुह देखने लगा।

गंगू ने निष्कपट भाव से कहा—बाबू साहब, रुपये का तो जिक्र ही न कीजिये। कहिये दस हजार का माल साथ भेज दू। दूकान आपकी है, भला कोई बात है। हुक्म हो तो एक आध चीज और दिखाऊँ। एक शीशफूल अभी बनकर आया है; बस, यही मालूम होता है गुलाब का फूल खिला हुआ है। देखकर जी खुश हो जायेगा। मुनीमजी, जरा वह शीशफूल दिखाना तो और दाम का भी कुछ ऐसा भारी नहीं, आपको ढाई सौ मे दे दूगा।

रमा ने मुसकराकर कहा—महाराज, बहुत बातें बनाकर कहीं उलटे छुरे से न मूड लेना, गहनों के मामलों मे बिलकुल अनाड़ी हूँ।

गंगू—ऐसा न कहो बाबूजी! आप चीज ले जाइये, बाजार मे दिखा लीजिए, अगर कोई ढाई सौ से कौड़ी कम दे, तो मैं मुफ्त मे दे दूंगा।

शीशफूल आया, सचमुच गुलाब का फूल था, जिस पर हीरे की कनियाँ ओस की बूदों के समान चमक रही थीं। रमा की टकटकी बँध गयी, मानों कोई अलौकिक वस्तु सामने आ गयी हो।

गंगू—बाबूजी, ढाई सौ रुपये तो कारीगर की सफाई के इनाम हैं। यह एक चीज है।

रमा०—हाँ, है तो बहुत सुन्दर, मगर भाई ऐसा न हो कि कल ही से दाम का तकाजा करने लगो। मैं खुद ही जहाँ तक हो सकेगा, जल्दी दे दूंगा।

गंगू ने दोनों चीजे दो सुन्दर मखमली केसो मे रखकर रमा को दे दीं। फिर मुनीमजी से नाम टकवाया और पान खिलाकर बिदा किया।

रमा के मनोल्लास की इस समय सीमा न थी, किन्तु यह विशुद्ध उल्लास न था; इसमे एक शंका का भी समावेश था। यह उस बालक का आनद न था जिसने माता से पैसे माँगकर मिठाई ली हो, बल्कि उस बालक का जिसने पैसे चुराकर ली हो। उसे मिठाइयाँ मीठी तो

लगती है; पर दिल काँपता रहता है कि कहीं घर चलने पर मार न पड़ने लगे। साढ़े छः सौ रुपये चुका देने की तो उसे विशेष चिन्ता न थी, घात लग जाये, तो वह छः महीने मे चुका देगा। भय यही था, कि बाबू जी सुनेंगे तो जरूर नाराज होंगे। लेकिन ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जाता था जालपा को इन आभूषणों से शोभित देखने की उत्कंठा इस शंका पर विजय पाती जाती थी। घर पहुँचने की जल्दी मे उसने सड़क छोड़ दी, और एक गली मे घुस गया। सघन अंधेरा छाया हुआ था। बादल तो उसी वक्त छाये हुए थे, जब घर से चला था। गली में घुसा ही था, कि पानी की बूंदे सिर पर छर्रे की तरह पड़ीं। जब तक छतरी खोले, वह लथ-पथ हो चुका था। उसे शका हुई, इस अंधकार मे कोई आकर दोनों चीजे छीन न ले, पानी की झरझर मे कोई आवाज भी न सुने। अंधेरी गलियों मे खून तक हो जाते है। पछताने लगा; नाहक इधर से आया। दो-चार मिनट देर ही मे पहुँचता, तो ऐसी कौन-सी आफत आ जाती। असामयिक वृष्टि ने उसकी आनंद-कल्पनाओं मे बाधा डाल दी। किसी तरह गली का अन्त हुआ और सडक मिली। लालटेन दिखाई दी। प्रकाश मे कितना विश्वास उत्पन्न करनेवाली शक्ति है, आज इसका उसे यथार्थ अनुभव हुआ।

वह घर पहुँचा तो दयानाथ बैठे हुक्का पी रहे थे। वह उस कमरे मे न गया। उनकी आँख बचाकर अन्दर जाना चाहता था कि उन्होंने टोका—इस वक्त कहाँ गये थे?

रमा ने उन्हे जवाब न दिया। कहीं वह अखबार सुनाने लगे, तो घंटों की खबर लेंगे। सीधा अन्दर जा पहुँचा। जालपा द्वार पर खडी उसकी राह देख रही थी, तुरन्त उसके हाथ से छतरी ले ली और बोली —तुम तो बिलकुल भीग गये। कहीं ठहर क्यो न गये?

रमा०—पानी का क्या ठिकाना, रात-भर बरसता रहे?

यह कहता हुआ रमा ऊपर चला गया। उसने समझा था, जालपा भी पीछे-पीछे आती होगी, पर वह नीचे बैठी अपने देवरों से बाते कर रही थी, मानो उसे गहनों की याद ही नहीं है। जैसे वह बिलकुल भूल गई है, कि रमा सराफ़े से आया है।

रमा ने कपड़े बदले, और मन मे झुंझलाता हुआ नीचे चला आया। उसी समय दयानाथ भोजन करने आ गये। सब लोग भोजन करने बैठ गये। जालपा ने ज़ब्त तो किया था, पर इस उत्कंठा की दशा मे आज उससे कुछ खाया न गया। जब वह ऊपर पहुँची, तो रमा चारपाई पर लेटा हुआ था। उसे देखते ही कौतुक से बोला—आज सराफ़े का जाना तो व्यर्थ हो गया, हार कहीं तैयार न था। बनाने को कह आया हूँ।

जालपा की उत्साह से चमकती हुई मुख-छवि मलिन पड़ गयी, बोली—यह तो पहले ही जानती थी, बनते-बनते पाँच-छः महीने तो लग ही जायगे?

रमा०—नहीं जी, बहुत जल्द बना देगा, कसम खा रहा था।

जालपा—उँह, जब चाहे दे!

उत्कंठा की चरम सीमा ही निराशा है। जालपा मुह फेरकर लौटने जा रही थी, कि रमा ने जोर से कहकहा मारा। जालपा चौक पड़ी। समझ गई, रमा ने शरारत की थी। मुसकराती हुई बोली—तुम भी बडे नटखट हो! क्या लाये?

रमा०—कैसा चकमा दिया?

जालपा—यह तो मरदों की आदत ही है, तुमने नई बात क्या की?

जालपा दोनों आभूषणों को देखकर निहाल हो गई। हृदय मे आनंद की लहरें-सी उठने लगीं। वह मनोभावों को छिपाना चाहती थी कि रमा उसे ओछी न समझे; लेकिन एक-एक अंग खिला जाता था। मुसकराती हुई आँखें, दमकते हुए कपोल और खिले हुए अधर उसका भरम गंवाए देते थे। उसने हार गले मे पहिना, शीशफूल जूड़े मे सजाया, और सर्प-सी उन्मत्त होकर बोली—तुम्हे आशीर्वाद देती हूँ ईश्वर तुम्हारी कामनाएँ पूरी करे!

आज जालपा की वह अभिलाषा पूरी हुई जो बचपन ही से उसकी कल्पनाओं का एक स्वप्न, उसकी आशाओं का क्रीड़ास्थल बनी हुई थी। आज उसकी वह साध पूरी हो गई। यदि मानकी यहाँ होती, तो सबसे पहले यह हार उसे दिखाती और कहती—तुम्हारा हार तुम्हें मुबारक हो!

रमा पर घडों का नशा चढ़ा हुआ था। आज उसे अपना जीवन सफल जान पड़ा। अपने जीवन मे आज पहली बार उसे विजय का आनंद प्राप्त हुआ।

जालपा ने पूछा—जाकर अम्माजी को दिखा आऊँ?

रमा ने नम्रता से कहा—अम्माजी को दिखाने जाओगी? ऐसी कौन-सी बडी चीजे है?

जालपा—अब मैं तुमसे साल-भर तक और किसी चीज के लिए न कहूँगी। इसके रुपये देकर ही मेरे दिल का बोझ हल्का होगा।

रमा गर्व से बोला—रुपये की क्या चिन्ता? हैं ही कितने!

जालपा—जरा अम्माजी को दिखा आऊँ, देखें क्या कहती हैं?

रमा०—मगर यह न कहना उधार लाये है।

जालपा इस तरह दौड़ी हुई नीचे गई, मानो उसे वहाँ कोई निधि मिल जायगी।

आधी रात बीत चुकी थी। रमा आनंद की नींद सो रहा था। जालपा ने छत पर आकर एक बार आकाश की ओर देखा। निर्मल चादनी छिटकी हुई थी—वह कार्तिक की चादनी जिसमे संगीत की शान्ति है, शान्ति का माधुर्य और माधुर्य का उन्माद। जालपा ने कमरे मे आकर अपनी संदूकची खोली और उसमे से वह काँच का चन्द्रहार निकाला जिसे एक दिन पहन कर उसने अपने को धन्य माना था। पर अब इस नये चन्द्रहार के सामने उसकी चमक उसी भाँति मन्द पड गयी थी, जैसे इस निर्मल चन्द्रज्योति के सामने तारों का आलोक। उसने नकली हार को तोड डाला और उसके दानों को नीचे गली मे फेंक दिया, उसी भाँति जैसे पूजन समाप्त हो जाने के बाद कोई उपासक मिट्टी की पार्थिवी को जल मे विसर्जित कर देता है।

(१४)

उस दिन से जालपा के पति-स्नेह मे सेवा-भाव का उदय हुआ। वह स्नान करने जाता तो उसे अपनी धोती चुनी हुई मिलती। आले पर तेल और साबुन भी रखा हुआ पाता। जब दफ्तर जाने लगता तो जालपा उसके कपड़े लाकर सामने रख देती। पहले पान माँगने पर मिलते थे,

अजबरदस्ती खिलाये जाते थे। जालपा उसका रुख देखा करतीन्न। उसे कुछ कहने की जरूरत न थी। यहाँ तक कि जब वह भोजन करने बैठता तो वह पंखा झला करती। पहले वह अनिच्छा से भोजन बनाने जाती थी और उस पर भी बेगार-सी टालती थी। अब बडे प्रेम से रसोई मे जाती। चीजे अब भी वही बनती थीं, पर उनका स्वाद बढ़ गया था। रमा को इस मधुर स्नेह के सामने दो गहने बहुत तुच्छ जँचते थे।

उधर जिस दिन रमा ने गंगू की दूकान से गहने खरीदे, उसी दिन से दूसरे सराफों को भी उसके आभूषण-प्रेम की सूचना मिल गयी। रमा जब उधर से निकलता, तो दोनों तरफ से दूकानदार उठ-उठकर उसे सलाम करते—आइये बाबूजी, पान तो खाते जाइये। दो-एक चीजे हमारी दूकान से तो देखिये!

रमा के आत्म-सयम से उसकी साख और भी बढ़ती थी। यहाँ तक कि एक दिन एक दलाल रमा के घर पर आ पहुँचा, और उसके नहीं-नहीं करने पर भी अपनी सन्दूकची खोल ही दी।

रमा ने उससे पीछा छुड़ाने के लिए कहा—भाई इस वक्त मुझे नहीं लेना है। क्यों अपना और मेरा समय नष्ट करोगे। दलाल ने वडे विनीत भाव से कहा—बाबूजी, देख तो लीजिये। पसन्द आयेजं। लीजिएगा, नहीं तो न लीजिएगा। देख लेने मे कोई ह नहीं है तो आखिर रईसों के पास न जायँ, तो किसके पास जायँ? औरों ने आपसे गहरी रकमे मारीं; हमारे भाग्य में भी बदा होगा, तो आपसे चार पैसा पा जायंगे। बहूजी और माईजी को दिखा लीजिये। मेरा मन तो कहता है कि आज आप ही के हाथों बोहनी होगी।

रमा०—औरतों के पसन्द की न कहो, चीजें अच्छी होंगी ही। पसन्द आते क्या देर लगती है; लेकिन भाई इस वक्त हाथ खाली है।

दलाल हसकर बोला—बाबूजी बस ऐसी बात कहते हैं कि वाह! आपका हुक्म हो जाय, तो हजार पाँच सौ आपके ऊपर निछावर कर दें। हम लोग आदमी का मिजाज देखते है बाबूजी। भगवान् ने चाहा तो आज मैं सौदा करके ही उठूगा।

दलाल ने सदूकची से दो चीजे निकालीं, एक तो नए फैशन का

जड़ाऊ कंगन था और दूसरा कानों का रिंग। दोनों ही चीजे अपूर्व थीं। ऐसी चमक थी, मानो दीपक जल रहा हो। दस बजे थे। दयानाथ दफ्तर जा चुके थे, वह भी भोजन करने जा रहा था। समय बिल्कुल न था; लेकिन इन दोनों चीजों को देखकर उसे किसी बात की सुधि ही न रही। दोनों केस लिए हुए घर मे आया। उसके हाथ मे केस देखते ही दोनों स्त्रियाँ टूट पड़ीं और चीजों को निकाल-निकालकर देखने लगीं। उसकी चमक-दमक ने उन्हे ऐसा मोहित कर लिया कि गुण-दोष की विवेचना करने की उनमे शक्ति ही न रही।

रमा०—आजकल की चीजों के सामने तो पुरानी चीजे कुछ जँचती ही नहीं।

जालपा—मुझे तो पुरानी चीजों को देखकर कै आने लगती है। न जाने उन दिनों औरते कैसे पहनती थीं।

रमा ने मुसकिराकर कहा—तो दोनों चीजें पसन्द हैं न ?

जालपा—पसन्द क्यों नहीं ; अम्माजी, तुम ले लो !

रामेश्वरी ने अपनी मनोव्यथा छिपाने के लिए सिर झुका लिया। जिसका सारा जीवन गृहस्थी की चिन्ताओं में कट गया, वह आज क्या स्वप्न मे भी इन गहनों के पहनने की आशा कर सकती थी! आह! उस दुखिया के जीवन की साध ही न पूरी हुई। पति की आय ही कभी इतनी न हुई, कि बाल-बच्चों के पालन-पोषण के उपरान्त कुछ बचता। जब से घर की स्वामिनी हुई, तभी से मानो उनकी तपश्चर्या का आरंभ हुआ और सारी लालसाएँ एक-एक करके धूल मे मिल गयी। उसने उन आभूषणों की ओर से आँखे हटा लीं। उनमे इतना आकर्षण था कि उनकी ओर ताकते हुए वह डरती थी। कहीं उसकी विरक्ति का पर्दा न खुल जाय। बोली—मैं लेकर क्या करूँगी बेटी, मेरे पहनने-ओढ़ने के दिन तो निकल गये। कौन लाया है बेटा ? क्या दाम है इनके ?

रमा०—एक सराफ़ दिखाने लाया है, अभी दाम-आम नहीं पूछे; मगर ऊँचे दाम होंगे। लेना तो था ही नहीं, दाम पूछ कर क्या करता ?

जालपा—लेना नहीं था तो यहाँ लाये क्यों ?

जालपा ने यह शब्द इतने आवेश मे कहा कि रमा खिसिया गया।

उनमे इतनी उत्तेजना, इतना तिरस्कार भरा हुआ था कि इन गहनों को लौटा ले जाने की उसकी हिम्मत न पडी। बोला—तो ले लू ?

जालपा—अम्मा लेने ही को नहीं कहतीं तो लेकर क्या करोगे। क्या मुफ्त मे दे रहा है !

रमा०—समझ लो मुफ्त ही मिलते है।

जालपा—सुनती हो अम्मा जी, इनकी बाते ? आप जाकर लौटा आइये। जब हाथ मे रुपये होंगे, तो बहुत गहने मिलेंगे।

रामेश्वरी ने मोहासक्त होकर कहा—रुपये अभी तो नहीं माँगता ?

जालपा—उधार भी देगा तो सूद तो लगा ही लेगा।

रमा०—तो लौटा दूॅ ? एक बात चटपट तय कर डालो। लेना हो ले लो, न लेना हो लौटा दो। मोह और दुबिधे मे न पड़ो।

जालपा को यह स्पष्ट बातचीत इस समय बहुत कठोर लगी। रमा के मुह से उसे ऐसी आशा न थी। इनकार करना उसका काम था, रमा को लेने के लिए आग्रह करना चाहिये। रामेश्वरी की ओर लालायित नेत्रों से देखकर बोली—लौटा दो। रात-दिन के तकाजे कौन सहेगा ?

वह केसों को बन्द करने वाली थी, कि रामेश्वरी ने कंगन उठाकर पहन लिया, मानो एक क्षण भर पहनने से ही उसकी साध पूरी हो जायगी। फिर मन मे इस ओछेपन पर लज्जित होकर वह उसे उतारना ही चाहती थी कि रमा ने कहा—अब तुमने पहन लिया है अम्माँ, तो पहने रहो। मैं तुम्हे भेंट करता हूँ। रामेश्वरी की आँखे सजल हो गयीं। जो लालसा आज तक पूरी न हो सकी वह आज रमा की मातृ-भक्ति से पूरी हो रही थी ; लेकिन क्या वह अपने प्रिय पुत्र पर ऋण का इतना भारी बोझ रख देगी ? अभी वह बेचारा बालक है, उसकी सामर्थ्य ही क्या है ? न जाने रुपये जल्द हाथ आयें या देर मे। दाम भी तो नहीं मालूम। अगर ऊँचे दामों का हुआ तो बेचारा देगा कहाँ से ? उसे कितने तकाजे सहने पड़ेंगे और कितना लज्जित होना पडेगा। कातर स्वर मे बोली—नहीं बेटा, मैंने यों ही पहन लिया था। ले जाओ, लौटा दो।

माता का उदास मुख देखकर रमा का हृदय मातृ-प्रेम से हिल उठा। क्या ऋण के भय से वह अपनी त्याग-मूर्ति माता की इतनी सेवा

भी न कर सकेगा ? माता के प्रति उसका कुछ कर्त्तव्य भी तो है। बोला —रुपये बहुत मिल जायंगे अम्मा, तुम इसकी चिन्ता मत करो।

रामेश्वरी ने बहू की ओर देखा। मानो कह रही थी कि रमा मुझ पर कितना अत्याचार कर रहा है !

जालपा उदासीन भाव से बैठी थी। कदाचित् उसे भय हो रहा था कि माता जी यह कंगन ले न लें। मेरा कंगन पहन लेना, बहू को अच्छा नहीं लगा इसमे रामेश्वरी को संदेह नहीं रहा। उन्होंने तुरन्त कंगन उतार डाला, और जालपा की ओर बढ़कर बोलीं—मैं अपनी ओर से तुम्हें भेंट करती हूँ बहू, मुझे जो कुछ पहनना-ओढ़ना था, ओढ़-पहन चुकी अब जरा तुम पहनो, देखूं !

जालपा को इसमे जरा भी संदेह न था कि माताजी के पास रुपये की कमी नहीं। वह समझी, शायद आज वह पसीज गयी हैं और कगन के रुपये दे देंगी। एक क्षण पहले उसने समझा था कि रुपये रमा को देने पड़ेगे, इसीलिए इच्छा रहने पर भी वह उसे लौटा देना चाहती थी। जब माताजी उसका दाम चुका रही थीं, तो वह क्यों इनकार करती ; ऊपरी मन से बोली—रुपये न हो तो रहने दीजिए अम्माजी, अभी कौन जल्दी है ?

रमा ने कुछ चिढ़कर कहा—तो तुम वह कंगन ले रही हो ?

जालपा—अम्मांजी नहीं मानतीं, तो मैं क्या करूँ ?

रमा०—और ये रिंग, इन्हे भी क्यों नहीं रख लेतीं ?

जालपा—जाकर दाम तो पूछ आओ।

रमा ने अधीर होकर कहा—तुम इन चीजों को ले जाओ, तुम्हे दाम से क्या मतलब !

रमा ने बाहर आकर दलाल से दाम पूछा, तो सन्नाटे में आ गया। कंगन सात सौ के थे और रिंग डेढ़ सौ के। उनका अनुमान था कि कंगन अधिक से अधिक तीन सौ के होंगे और रिंग चालिस-पचास रुपये के। पछताये कि पहले ही दाम क्यों न पूछ लिये, नहीं तो इन चीजों को घर मे ले जाने की नौबत ही क्यों आती ? फेरते हुए शर्म आती थी ; मगर कुछ भी हो, फेरना तो पड़ेगा ही। इतना बड़ा बोझ वह सिर पर

नहीं ले सकता। दलाल से बोला—बडे दाम हैं भाई, मैंने तो तीन-चार सौ के भीतर ही आँका था। दलाल का नाम चरनदास था। बोला—दाम मे एक कौड़ी फरक पड जाये सरकार, तो मुंह न दिखाऊँ। धनीराम की कोठी का माल है, आप चलकर पूछ ले। दमड़ी रुपये की दलाली अलबत्ता मेरी है, आपकी मरजी हो दीजिए, या न दीजिए ।

रमा०—तो भाई, इन दामों की चीजे तो इस वक्त हमे नहीं लेनी हैं।

चरन०—ऐसी बात न कहिए बाबूजी। आपके लिए इतने रुपये कौन बड़ी बात हैं। दो महीने भी माल चल जाय, तो इसके दूने हाथ आ जायेंगे। आपसे बढ़कर कौन शौकीन होगा ? यह सब रईसों के ही पसन्द की चीजे है। गंवार लोग इनकी कद्र क्या जाने।

रमा०—साढे आठ सौ बहुत होते है भई।

चरन०—रुपये का मुंह न देखिए बाबूजी, जब बहूजी पहनकर बैठेंगी, तो एक निगाह मे सारे रुपये तर जायेंगे !

रमा को विश्वास था कि जालपा गहनों का मूल्य सुनकर आप ही हिचक जायेगी। दलाल से और ज्यादा बातचीत न की। अन्दर जाकर बडे जोर से हँसा, और बोला—आपने इस कगन का क्या दाम समझा था माँजी ?

रामेश्वरी कोई जवाब देकर बेवकूफ न बनना चाहती थी—इन जड़ाऊ चीजों मे नाप-तौल का तो कुछ हिसाब रहता नहीं, जितने मे तै हो जाये वही ठीक है।

रमा०—अच्छा, तुम बताओ जालपा, इस कंगन का कितना दाम आँकती हो ?

जालपा—छः सौ से कम का नहीं है।

रमा का सारा खेल बिगड गया। दाम का भय दिखाकर रमा ने जालपा को डरा देना चाहा था ; मगर छः और सात मे बहुत थोड़ा ही अन्तर था। और संभव है चरनदास इतने ही पर राजी हो जाये। कुछ झेंपकर बोला—कच्चे नगीने नहीं है ?

जालपा—कुछ भी हो, छः सौ से ज्यादा का नहीं।

रमा०—और रिंग का ?

जालपा—अधिक-से-अधिक सौ रुपये।

रमा०—यहाँ भी चूकीं, डेढ़ सौ माँगता है।

जालपा—लट्टू है कोई, हमे इन दामों लेना ही नहीं

रमा की चाल उलटी पड़ी। जालपा को इन चीजों के मूल्य के विषय मे बहुत धोखा न हुआ था। आखिर रमा की आर्थिक दशा तो उससे छिपी न थी, फिर भी वह सात सौ रुपये की चीजों के लिए मुंह खोले बैठी थी। रमा को क्या मालूम था कि जालपा कुछ और ही समझ-कर कंगन पर लहराई थी। तो गला छूटने का एक ही उपाय था और और वह यह कि दलाल छः सौ पर राजी न हो। बोला—वह साढ़े आठ सौ से कौडी कम न लेगा।

जालपा—तो लौटा दो।

रमा०—मुझे तो लौटाते शर्म आती है। अम्मा, जरा आप ही दालान मे चलकर कह दे, हमे सात सौ से ज्यादा नहीं देना है। देना हो तो दे दो, नही तो चले जाओ।

रामे०—हाँ रे, क्यो नहीं, उस दलाल से मैं बाते करने जाऊँ?

जालपा—तुम्हीं क्यों नहीं कह देते, इसमे तो कोई शर्म की बात नहीं।

रमा०—मुझसे साफ जवाब न देते बनेगा। दुनिया भर की खुशा-मद करेगा, चुनी-चुना—आप बडे आदमी है, रईस है, राजा है। आपके लिए डेढ़ सौ क्या चीज है, मैं उसकी बातों मे आ जाऊँगा।

जालपा—अच्छा चलो मैं ही कहे देती हूँ।

रमा०—वाह, फिर तो सब काम ही बन गया।

रमा पीछे दबक गया। जालपा दालान मे आकर बोली—जरा यहाँ आना जी, ओ सराफ! लूटने आये हो, या माल वेचने आये हो?

चरनदास बरामदे से उठकर द्वार पर आया और बोला—क्या हुक्म है सरकार?

जालपा—माल वेचने आते हो या जटने आते हो! सात सौ रुपये कंगन के माँगते हो?

चरन०—सात सौ तो उसकी कारीगरी के दाम है हुजूर?

जालपा—अच्छा, जो उस पर सात सौ निछावर कर दे, उसके पास

ले जाओ। रिंग के डेढ़ सौ कहते हो, लूट है क्या? कंगन के छः सौ और रिंग के सौ, इतने ही हम देने को तैयार है। इससे ज्यादा एक कौड़ी नहीं!

चरन०—बहूजी, आप तो अंधेर करती है। कहाँ साढे आठ सौ और कहाँ सात सौ।

जालपा—तुम्हारी खुशी; अपनी चीज ले जाओ।

चरन०—इतने बडे दरबार मे आकर चीजे लौटा ले जाऊँ? आप यों ही पहने। दस पाँच रुपये की बात होती, तो आपकी जबान न फेरता। आपसे झूठ नहीं कहता बहूजी; इन चीजों पर पैसा रुपया नफा है। उसी एक पैसे मे दूकान का भाडा, बट्टा-खाता, दस्तूरी-दलाली सब समझिए। यह बात ऐसी समझकर कहिए कि हमे भी चार पैसे मिल जाये। सबेरे-सवेरे लौटना न पड़े।

जालपा—कह दिये, वही सात सौ।

चरन ने ऐसा मुंह बनाया, मानो वह किसी धर्म-सकट मे पड़ गया है। फिर बोला—सरकार, है तो घाटा ही पर आपकी बात नही टालते बनती। रुपये कब मिलेगे?

जालपा—जल्दी ही मिल जायंगे।

जालपा अन्दर जाकर बोली—आखिर दिया कि नहीं सात सौ मे? डेढ सौ साफ उड़ाये लिये जाता था। मुझे पछतावा हो रहा है कि कुछ और कम क्यो न कहा। ये लोग इसी तरह गाहको को लूटते है।

रमा इतना भारी बोझ लेते घबरा रहा था, लेकिन परिस्थिति ने कुछ ऐसा रग पकड़ा, कि बोझ उस पर लद ही गया।

जालपा तो खुशी की उमगो मे दोनों चीजे लिये ऊपर चली गयी, पर रमा सिर झुकाये चिन्ता मे डूबा खड़ा था। जालपा ने उसकी दशा जानकर भी चीजों को क्यों ठुकरा नही दिया, क्यों जोर देकर नहीं कहा—मैं न लूगी, क्यों दुविधे मे पड़ी रही। साढे पाँच सौ भी चुकाना मुश्किल था, इतने और कहाँ से आयेंगे। असल मे गलती मेरी ही है। मुझे दलाल को दरवाजे से ही दुत्कार देना चाहिए था।

लेकिन उसने मन को समझाया। यह अपने ही पापो का तो प्रायश्चित

है। फिर आदमी इसीलिए तो कमाता है। रोटियों के लाले थोड़े ही थे।

भोजन करके जब ऊपर कपड़े पहनने गया, जो जालपा आईने के सामने खड़ी कानों मे रिंग पहन रही थी। उसे देखते ही बोली—आज किसी अच्छे का मुंह देखकर उठी थी ! दो चीज मुफ्त हाथ आ गयीं।

रमा ने विस्मय से पूछा—मुफ्त क्यों ? रुपये न देने पड़ेंगे ?

जालपा—रुपये तो अम्माजी देंगी ?

रमा०—क्या कुछ कहती थीं ?

जालपा—उन्होंने मुझे भेंट दिये है, तो रुपये कौन देगा ?

रमा ने उसके भोलेपन पर मुसकराकर कहा—यही समझकर तुमने यह चीजें लीं ? अम्माँ को देना होता, तो उसी वक्त दे देतीं जब गहने चोरी गये थे। क्या उनके पास रुपये न थे ?

जालपा असमंजस मे पड़कर बोली—तो मुझे क्या मालूम था। अब भी तो लौटा सकते हो। कह देना, जिसके लिए लिया था, उसे पसन्द नहीं आया।

यह कहकर उस ने तुरन्त कानों से रिंग निकाल लिये। कंगन भी उतार डाले और दोनों चीजें केस मे रखकर उसकी तरफ इस तरह बढ़ाईं जैसे कोई बिल्ली चूहे को अपनी पकड़ से बाहर नहीं होने देती। उसे छोड़कर भी नहीं छोड़ती। हाथों को फैलाने का साहस नहीं होता था। क्या उसके हृदय की भी यही दशा न थी ? उसके मुख पर हवा-इयाँ उड़ रही थीं। क्यों वह रमा की ओर देखकर भूमि की ओर देख रही थी ? क्यों सिर ऊपर न उठाती थी ? किसी संकट से बच जाने मे जो हार्दिक आनन्द होता है, वह कहाँ था ? उसकी दशा ठीक उस माता की-सी थी, जो बालक को विदेश जाने की अनुमति दे रही हो। वही विवशता, वही कातरता, वही ममता इस समय जालपा के मुख पर उदय हो रही थी।

रमा उसके हाथ से केसों को ले सके, इतना कड़ा संयम उसमे न था। उसे तकाजे सहना, लज्जित होना, मुँह छिपाये फिरना, चिन्ता की आग मे जलना, सब कुछ सहना मजूर था। ऐसा काम करना नामंजूर

था, जिससे जालपा का दिल टूट जाये, वह अपने को अभागिन समझने लगे। उसका सारा ज्ञान, सारी चेष्टा, सारा विवेक इस आघात का विरोध करने लगा। प्रेम और परिस्थितियों के संघर्ष मे प्रेम ने विजय पायी।

उसने मुसकराकर कहा—रहने दो, अब ले लिया है, तो क्या लौटाये। अम्माजी भी हँसेगी।

जालपा ने बनावटी काँपते हुए कठ से कहा—अपनी चादर देखकर ही पाँव फैलाने चाहिए। एक नयी विपत्ति मोल लेने की क्या जरूरत है।

रमा ने मानो जल मे डूबते हुए कहा—ईश्वर मालिक है!

और तुरन्त नीचे चला गया।

हम क्षणिक मोह और संकोच मे पड़कर अपने जीवन के सुख और शाति का कैसे होम कर देते है। अगर जालपा मोह के इस झोंके मे अपने को स्थिर रख सकती, अगर रमा संकोच के आगे सिर न झुका देता, दोनो के हृदय मे प्रेम का सच्चा प्रकाश होता, तो वे पथ-भ्रष्ट होकर सर्वनाश की ओर न जाते।

ग्यारह बज गये थे, दफ्तर के लिए देर हो रही थी; पर रमा इस तरह जा रहा था, जैसे कोई अपने प्रिय बन्धु की दाह-क्रिया करके लौट रहा हो।

(१५)

जालपा अब वह एकान्तवासिनी रमणी न थी, जो दिन-भर मुँह लपेटे उदास खड़ी रहती थी। उसे अब घर मे बैठना अच्छा न लगता था। अब तक तो वह मजबूर थी, कहीं आ-जा न सकती थी। अब ईश्वर की दया से उसके पास भी गहने हो गये थे। फिर वह क्यों मन मारे घर मे पड़ी रहती? वस्त्राभूषण कोई मिठाई तो नहीं, जिसका स्वाद एकान्त मे लिया जा सके। आभूषणों को सन्दूकची मे बन्द रखने से क्या फायदा! मुहल्ले या बिरादरी मे कहीं से बुलावा आता तो वह सास के साथ अवश्य जाती। कुछ दिनों के बाद सास की जरूरत भी न रही। वह अकेली ही आने-जाने लगी। फिर कार्य-प्रयोजन की भी

कैद नहीं रही। उसके रूप-लावण्य, वस्त्राभूषण और शील-विनय ने मुहल्ले की स्त्रियों मे उसे जल्दी ही सम्मान के पद पर पहुँचा दिया। उसके बिना मण्डली सूनी रहती थी। उसका कण्ठ-स्वर इतना कोमल था, भाषण इतना मधुर, छवि इतनी अनुपम, कि वह मण्डली की रानी मालूम होती थी। उसके आने से मुहल्ले के नारी-जीवन मे जान-सी पड़ गयी। नित्य ही कहीं-न-कहीं जमाव हो जाता। घंटे-दो-घंटे गा-बजाकर या गप-शप करके रमणियाँ दिल बहला लिया करतीं। कभी किसी के घर कभी किसी के। फागुन मे १५ दिन बराबर गाना होता रहा। जालपा ने जैसा रूप पाया था, वैसा ही उदार हृदय भी पाया था। पान-पत्ते का खर्च प्रायः उसी के मत्थे पड़ता। कभी-कभी गायनें बुलायी जातीं, उनके सेवा-सत्कार का भार उसी पर था। कभी-कभी वह स्त्रियों के साथ गंगा-स्नान करने जाती, ताँगे का किराया और गंगा-तट पर जलपान का खर्च भी उसी के मत्थे जाता। इस तरह उसके दो-तीन रुपये रोज जाते थे। रमा आदर्श पति था, जालपा अगर माँगती तो प्राण तक उसके चरणों पर रख देता। रुपये की हकीकत ही क्या थी? उसका मुँह जोहता रहता था। जालपा उससे इन जमघटों की रोज चर्चा करती। उसका स्त्री-समाज मे कितना आदर-सम्मान है, यह देखकर वह फूला न समाता था।

एक दिन इस मण्डली को सिनेमा देखने की धुन सवार हुई। वहाँ की बहार देखकर सब-की-सब मुग्ध हो गयीं। फिर तो आये दिन सिनेमा की सैर होने लगी। रमा को अब तक सिनेमा का शौक न था। शौक होता भी तो क्या करता? अब हाथ मे पैसे आने लगे थे; उस पर जालपा का आग्रह, फिर भला वह क्यों न जाता? सिनेमा-गृह मे ऐसी कितनी ही रमणियाँ मिलतीं, जो मुंह खोले निःसंकोच हँसती-बोलती रहती थीं। उनकी आजादी गुप्तरूप से जालपा पर भी जादू डालती जाती थी। वह घर से बाहर निकलते ही मुह खोल लेती, मगर संकोचवश परदे वाली स्त्रियों के ही स्थान पर बैठती। उसकी कितनी इच्छा होती कि रमा भी उसके साथ बैठता। आखिर वह उन फैशनेबुल औरतों से किस बात मे कम है? रूप-रंग मे वह हेठी नहीं। सजधज मे किसी से कम नहीं।

बातचीत करने मे कुशल, फिर वह क्यों परदेवालियों के साथ बैठे ? रमा बहुत शिक्षित न होने पर भी देश और काल के प्रभाव से उदार था। पहले तो वह परदे का ऐसा अनन्य भक्त था, कि माता को कभी गंगा-स्नान कराने लिवा जाता तो पण्डों तक से न बोलने देता। कभी माता की हँसी मर्दाने मे सुनाई देती, तो आकर बिगड़ता—तुमको जरा भी शर्म नहीं है, अम्मा ! बाहर लोग बैठे हुए हैं, और तुम हँस रही हो। माँ लज्जित हो जाती थी; किन्तु अवस्था के साथ रमा का वह लिहाज गायब होता जाता था। उस पर जालपा की रूप-छटा उसके साहस को और भी उत्तेजित करती थी। जालपा रूपहीन, काली-कलूटी, फूहड़ होती तो वह जबरदस्ती उसको परदे मे बैठाता। उसके साथ घूमने या बैठने में उसे शर्म आती। जालपा जैसी अनन्य सुन्दरी के साथ सैर करने में आनन्द के साथ गौरव भी तो था। वहाँ के सभ्य समाज की कोई महिला रूप, गठन और शृंगार मे जालपा की बराबरी न कर सकती थी। देहात की लड़की होने पर भी शहर के रंग मे वह इस तरह रग गयी थी, मानो जन्म से शहर ही मे रहती आयी है। थोड़ी-सी कमी अँगरेजी शिक्षा की थी। वह भी रमा पूरी किये देता था।

मगर पर्दे का यह बन्धन टूटे कैसे ? भवन मे रमा के कितने ही मित्र, कितने ही जान-पहचान के लोग बैठे नज़र आते थे। वे उसे जालपा के साथ बैठे देखकर कितना हँसेंगे। आखिर एक दिन उसने समाज के सामने ताल ठोंककर खड़े हो जाने का निश्चय कर ही लिया। जालपा से बोला—आज हम तुम सिनेमा-घर मे साथ बैठेंगे।

जालपा के हृदय मे गुदगुदी-सी होने लगी। हार्दिक आनन्द की आभा चेहरे पर झलक उठी। बोली—साथ ! नहीं भाई, साथवालियाँ जीने न देंगी !

रमा०—इस तरह डरने से तो फिर कभी कुछ न होगा। यह क्या स्वाग है कि स्त्रियाँ मुह छिपाये चिक की आड़ मे बैठी रहे !

इस तरह यह मामला भी तय हो गया। पहले दिन दोनों झेंपते रहे; लेकिन दूसरे दिन से हिम्मत खुल गयी। कई दिनों के बाद वह समय

भी आया, कि रमा और जालपा सन्ध्या समय पार्क मे साथ-साथ टहलते दिखाई दिये।

जालपा ने मुसकराकर कहा—कहीं बाबूजी देख लें तो ?

रमा०—तो क्या, कुछ नहीं।

जालपा—मैं तो मारे शर्म के गड जाऊँ!

रमा०—अभी तो मुझे भी शर्म आयेगी, मगर बाबूजी खुद ही इधर न आयेंगे!

जालपा—और जो कहीं अम्माजी देख ले ?

रमा०—अम्मा से कौन डरता है, दो दलीलों मे ठीक कर दूंगा।

दस-ही-पाँच दिन मे जालपा ने नये महिला समाज मे अपना रंग जमा लिया। उसने इस समाज मे इस तरह प्रवेश किया, जैसे कोई कुशल वक्ता पहली बार परिषद् के मंच पर आता है। विद्वान् लोग उसकी उपेक्षा करने की इच्छा होने पर भी उसकी प्रतिभा के सामने सिर झुका देते हैं। जालपा भी 'आयी, देखा, और विजय कर लिया।' उसके सौन्दर्य मे वह गरिमा, वह कठोरता, वह शान, वह तेजस्विता थी जो कुलीन महिलाओं के लक्षण हैं। पहले ही दिन एक महिला ने जालपा को चाय का निमन्त्रण दे दिया और जालपा इच्छा न रहने पर भी उसे अस्वीकार न कर सकी।

जब दोनों प्राणी वहाँ से लौटे, तो रमा ने चिन्तित स्वर मे कहा—कल किसकी चाय-पार्टी मे जाना पडेगा ?

जालपा—क्या करती ? इनकार करते भी तो न बनता था।

रमा०—तो सवेरे तुम्हारे लिए अच्छी-सी साडी ला दूं ?

जालपा—क्या मेरे पास साड़ी नहीं है ? जरा देर के लिए पचास-साठ रुपये खर्च करने से फायदा!

रमा०—तुम्हारे पास अच्छी साड़ी कहाँ है ? इसकी साड़ी तुमने देखी। ऐसी ही तुम्हारे लिए भी लाऊँगा।

जालपा ने विवशता के भाव से कहा—मुझे साफ कह देना चाहिए था कि फुरसत नहीं है।

रमा०—फिर इनकी दावत भी करनी पड़ेगी।

जालपा—यह तो बुरी विपत्ति गले पड़ी।

रमा०—विपत्ति कुछ नही है, सिर्फ यही खयाल है कि मेरा मकान इस काम के लायक नहीं। मेज, कुर्सियाँ, चाय के सेट रमेश के यहाँ से माँग लाऊँगा, लेकिन घर के लिये क्या करूँ।

जालपा—क्या यह जरूरी है कि हम लोग भी दावत करें?

रमा ने ऐसी भद्दी बात का कुछ उत्तर न दिया। उसे जालपा के लिए एक जूते की जोड़ी और सुन्दर कलाई घडी की फिक्र पैदा हो गयी। उसके पास कौडी भी न थी। उसका खर्च रोज बढता जाता था। अभी तक गहनेवालो को एक पैसा भी देने की नौबत न आयी थी। एक बार गंगू महाराज ने इशारे से तकाजा भी किया था; लेकिन यह भी तो नहीं हो सकता कि जालपा फटे हालों चाय पार्टी मे जाये। नहीं, जालप पर वह इतना अन्याय नहीं कर सकता। इस अवसर पर जालपा की रूपा शोभा का सिक्का बैठ जायेगा। सभी तो आज चमाचम साड़ियाँ पहने हुए थीं। जडाऊ कगन और मोतियो के हारों की भी तो कमी न थी; पर जालपा अपने सादे आवरण मे उनसे कोसों आगे थी। उसके सामने एक भी नहीं जँचती थी। यह मेरे पूर्व कर्मों का फल है कि मुझे ऐसी सुन्दरी मिली। आखिर यही तो खाने-पहनने और जीवन का आनन्द उठाने के दिन हैं। जब जवानी ही मे सुख न उठाया, तो बुढ़ापे मे क्या कर लेंगे। बुढापे मे मान लिया, धन हुआ ही तो क्या! यौवन बीत जाने पर विवाह किस काम का? साडी और घड़ी लाने की उसे धुन सवार हो गयी। रात भर तो उसने सब्र किया। दूसरे दिन दोनों चीजें लाकर ही दम लिया।

जालपा ने झुझलाकर कहा—मैंने तो तुमसे कहा था, कि इन चीजों का काम नहीं है। डेढ़ सौ से कम की न होंगी?

रमा०—डेढ़ सौ! इतना फजूल-खर्च मैं नहीं हूँ।

जालपा—डेढ सौ से कम की यह चीजें नहीं है।

जालपा ने घड़ी कलाई मे बाँध ली और साडी को खोलकर मन्त्र-मुग्ध नेत्रों से देखा।

रमा०—तुम्हारी कलाई पर यह घड़ी कैसी खिल रही है! मेरे रुपये वसूल हो गये।

जालपा—सच बताओ, कितने रुपये खर्च हुए?

रमा०—सच बता दूं? एक सौ पैंतीस रुपये। पचहत्तर रुपये की साड़ी दस के जूते, और पच्चीस की घड़ी।

जालपा—यह डेढ़ सौ ही हुए, मैंने कुछ बढ़ाकर थोडे ही कहा था; मगर यह सब रुपये अदा कैसे होंगे? उस चुड़ैल ने व्यर्थ ही मुझे निमंत्रण दे दिया! अब मैं बाहर जाना ही छोड़ दूँगी।

रमा भी इसी चिन्ता मे मग्न था; पर उसने अपने भाव को प्रकट करके जालपा के हर्ष मे बाधा न डाली। बोला—सब अदा हो जायेगा।

जालपा ने तिरस्कार के भाव से कहा—कहाॅ से अदा हो जायेगा, जरा सुनू? कौड़ी तो बचती नही, अदा कहाॅ से हो जायेगा? वह तो बाबूजी घर का खर्च सँभाले हुए हैं, नहीं तो मालूम होता। क्या तुम समझते हो कि मैं गहने और साड़ियों पर मरती हूँ? इन चीजों को लौटा आओ।

रमा ने प्रेमपूर्ण नेत्रो से कहा—इन चीजों को रख लो। फिर तुमसे बिना पूछे कुछ न लाऊँगा।

सन्ध्या समय जब जालपा ने नयी साड़ी और नये जूते पहने, घडी कलाई पर बाँधी और आइने मे अपनी सूरत देखी, तो मारे गर्व और उल्लास के उसका मुख-मण्डल प्रज्वलित हो उठा। उसने उन चीजों को लौटाने के लिए सच्चे दिल से कहा हो; पर इस समय वह इतना त्याग करने को तैयार न थी। सन्ध्या समय जालपा और रमा छावनी की ओर चले। महिला ने केवल बँगले का नम्बर बता दिया था। बँगला आसानी से मिल गया। फाटक पर साइनबोर्ड था—'इन्दुभूषण एडवोकेट, हाई-कोर्ट'। अब रमा को मालूम हुआ कि वह महिला पं० इन्दुभूषण की पत्नी थीं। पण्डितजी काशी के नामी वकील थे। रमा ने उन्हे कितनी ही बार देखा था; पर इतने बड़े आदमी से परिचय का सौभाग्य उसे कैसे होता। छः महीने पहिले वह कल्पना भी न कर सकता था कि किसी दिन उसे उनके घर निमंत्रित होने का गौरव प्राप्त होगा; पर जालपा की

बदौलत आज वह अनहोनी बात हो गयी। वह काशी के सबसे बड़े वकील का मेहमान था।

रमा ने सोचा कि बहुत से स्त्री-पुरुष निमंत्रित होंगे; पर यहाँ वकील साहब और उनकी पत्नी रतन के सिवा और कोई न था। रतन इन दोनों को देखते ही बरामदे मे निकल आयी और उनसे हाथ मिलाकर अन्दर ले गयी, और अपने पति से उनका परिचय कराया। पंडितजी ने आराम-कुर्सी पर लेटे ही लेटे दोनों मेहमानों से हाथ मिलाया और मुसकराकर कहा—क्षमा कीजिएगा बाबू साहब, मेरा स्वास्थ्य अच्छा नही है। आप यहाँ किसी आफिस मे हैं ?

रमा ने झेंपते हुए कहा—जी हाँ, म्युनिसिपल आफिस मे हूँ। अभी हाल ही मे आया हूँ। कानून की तरफ जाने का इरादा था, पर नये वकीलों की यहाँ जो हालत हो रही है, उसे देखकर हिम्मत न पड़ी।

रमा ने अपना महत्व बढ़ाने के लिए जरा-सा झूठ बोलना अनुचित न समझा। इसका असर बहुत अच्छा हुआ। अगर वह साफ कह देता, मैं पच्चीस रुपये का क्लर्क हूँ, तो शायद वकील साहब उससे बातें करने मे अपना अपमान समझते। बोले—आपने बहुत अच्छा किया जो इधर नहीं आये। वहाँ दो-चार साल के बाद आप अच्छी जगह पहुँच जायेंगे। यहाँ सम्भव है दस साल तक आपको कोई मुकदमा ही न मिलता।

जालपा को अभी तक सन्देह हो रहा था कि रतन वकील साहब की बेटी है या पत्नी। वकील साहब की उम्र साठ से नीचे न थी। चिकनी चाँद आस-पास सुफेद बालों के बीच मे वारनिश की हुई लकड़ी की भाँति चमक रही थी। मूछें साफ थीं पर माथे की शिकन और गालों की झुर्रियाँ बतला रही थी कि यात्री ससार-यात्रा से थक गया है। आराम-कुर्सी पर लेटे हुए वह ऐसे मालूम होते थे, जैसे बरसों के मरीज हों। हाँ, रग गोरा था, जो साठ साल की गर्मी-सर्दी खाने पर भी उड़ न सका था। ऊँची नाक थी, ऊँचा माथा और बड़ी-बड़ी आँखे, जिनमे अभि-मान भरा हुआ था। उनके मुख से ऐसा भासित होता था कि उन्हे किसी से बोलना या किसी बात का जवाब देना भी अच्छा नहीं लगता। इसके प्रतिकूल रतन साँवली, सुगठित युवती थी, बड़ी मिलनसार जिसे

गर्व ने छुआ तक न था। सौन्दर्य का उसके रूप में कोई लक्षण न था। नाक चिपटी थी, मुख गोल, आँखें छोटी, फिर भी वह रानी-सी लगती थी। जालपा उसके सामने ऐसी लगती थी, जैसे सूर्यमुखी के सामने जूही का फूल।

चाय आयी। मेवे, फल, मिठाई, बर्फ की कुल्फी, सब मेज पर सजा दिये गये। रतन और जालपा एक मेज पर बैठीं। दूसरी मेज रमा और वकील साहब की थी। रमा तो मेज के सामने जा बैठा, मगर वकील साहब अभी आरामकुर्सी पर लेटे हुए थे।

रमा ने मुसकराकर वकील साहब से कहा—आप भी आयें।

वकील साहब ने लेटे-लेटे मुसकराकर कहा—शुरू कीजिए, मैं भी आया जाता हूँ।

लोगों ने चाय पी, फल खाये; पर वकील साहब के सामने हँसते-बोलते रमा और जालपा दोनों ही झिझकते थे। जिन्दादिल बूढ़ों के साथ तो सोहबत का आनन्द उठाया जा सकता है, लेकिन ऐसे रूखे निर्जीव मनुष्य जवान भी हों तो दूसरों को मुर्दा बना देते हैं। वकील साहब ने बहुत आग्रह करने पर दो घूंट चाय पी। दूर से बैठे तमाशा देखते रहे। इसलिए जब रतन ने जालपा से कहा—चलो, हम लोग जरा बगीचे की सैर करें, इन दोनों महाशयों को समाज और नीति की विवेचना करने दें, तो मानो जालपा के गले से फन्दा छूट गया। रमा ने पिंजडे मे बन्द पक्षी की भाँति उन दोनों को कमरे से निकलते देखा और एक लम्बी साँस ली। वह जानता कि यहाँ यह विपत्ति उसके सिर पर पड़ जायेगी तो आने का नाम न लेता।

वकील साहब ने मुंह सिकोड़कर पहलू बदला और बोले—मालूम नहीं, पेट में क्या हो गया है, कि कोई चीज हजम नहीं होती। दूध भी हजम नहीं होता। चाय को न जाने लोग इतने शौक से क्यों पीते हैं, मुझे तो इसकी सूरत से डर लगता है। पीते ही बदन मे ऐंठन होने लगती है और आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगती हैं।

रमा ने कहा—आपने हाजमे की कोई दवा नहीं की?

वकील साहब ने अरुचि के भाव से कहा—दवाओं पर मुझे रत्ती

भर भी विश्वास नहीं। इन वैद्यों और डाक्टरों से ज्यादा बेसमझ आदमी संसार मे न मिलेंगे। किसी में निदान की शक्ति नहीं। दो वैद्यों, दो डाक्टरों के निदान कभी न मिलेंगे। लक्षण वही हैं, पर एक वैद्य रक्तदोष बतलाता है, दूसरा पित्तदोष; एक डाक्टर फेफड़े की सूजन बतलाता है, दूसरा आमाशय का विकार। बस, अनुमान से दवा की जाती है और निर्दयता से रोगियों की गर्दन पर छुरी फेरी जाती है। इन डाक्टरों ने मुझे तो अब तक जहन्नुम पहुँचा दिया होता; पर उनके पंजे से निकल भागा। योगाभ्यास की बड़ी प्रशंसा सुनता हूँ, पर कोई ऐसे महात्मा नहीं मिलते जिनसे कुछ सीख सकूँ। किताबों के आधार पर कोई क्रिया करने से लाभ के बदले हानि होने का डर रहता है।

यहाँ तो आरोग्य-शास्त्र का खंडन हो रहा था, उधर दोनों महिलाओं मे प्रगाढ़ स्नेह की बातें हो रही थीं।

रतन ने मुसकराकर कहा—मेरे पतिदेव को देखकर तुम्हे बड़ा आश्चर्य हुआ होगा?

जालपा को आश्चर्य ही नहीं, भ्रम भी हुआ था। बोली—वकील साहब का दूसरा विवाह होगा?

रतन—हाँ, अभी पाँच ही बरस तो हुए है। इनकी पहली स्त्री को मरे पैंतीस वर्ष हो गये। उस समय इनकी अवस्था कुल पच्चीस साल थी। लोगों ने समझाया, दूसरा विवाह कर लो; पर इनके एक लड़का हो चुका था, विवाह करने से इन्कार कर दिया और तीस साल तक अकेले रहे; मगर आज पाँच वर्ष हुए जवान बेटे का देहान्त हो गया; तब विवाह करना आवश्यक हो गया। मेरे माँ-बाप न थे। मामाजी ने मेरा पालन किया था। कह नहीं सकती इनसे कुछ ले लिया या इनकी सज्जनता पर मुग्ध हो गये। मैं तो समझती हूँ ईश्वर की यही इच्छा थी, लेकिन मैं जब से आई हूँ, मोटी होती चली जाती हूँ। डाक्टरों का कहना है कि तुम्हे सन्तान नहीं हो सकती। बहन, मुझे तो संतान की लालसा नहीं है; लेकिन मेरे पतिदेव मेरी दशा देखकर बहुत दुखी रहते हैं। मैं ही इनके सब रोगों की जड़ हूँ। आज ईश्वर मुझे एक संतान दे दे, तो इनके सारे रोग भाग जायेंगे। कितना चाहती हूँ कि दुबली हो जाऊँ, गरम

पानी से टब-स्नान करती हूँ, रोज पैदल घूमने जाती हूँ, घी-दूध बहुत कम खाती हूँ, भोजन आधा कर दिया है, जितना परिश्रम करते बनता है, करती हूँ फिर भी दिन-रात मोटी ही होती जाती हूँ। कुछ समझ में नहीं आता, क्या करूँ!

जालपा—वकील साहब तुमसे चिढ़ते होंगे?

रतन—नहीं बहन, बिलकुल नहीं, भूलकर भी मुझसे इसकी चर्चा नहीं की। उनके मुँह से कभी एक शब्द भी ऐसा नहीं निकला, जिससे उनकी मनोव्यथा प्रकट होती; पर मैं जानती हूँ, यह चिन्ता उन्हे मारे डालती है। अपना कोई बस नहीं है, क्या करूँ! मैं जितना चाहूँ खर्च करूँ, जैसे चाहूँ रहूँ, कभी नहीं बोलते। जो कुछ पाते हैं, लाकर मेरे हाथ मे रख देते हैं। समझाती हूँ, अब तुम्हे वकालत करने की क्या जरूरत है, आराम क्यों नहीं करते? पर इनसे घर पर बैठे रहा नहीं जाता। केवल दो चपातियों से नाता है। बहुत जिद की तो दो-चार दाना अंगूर खा लिये। मुझे तो उनपर दया आती है। अपने से जहाँ तक हो सकता है, उनकी सेवा करती हूँ। आखिर वह मेरे ही लिए तो अपनी जान खपा रहे हैं।

जालपा—ऐसे पुरुष को देवता समझना चाहिए। यहाँ तो एक स्त्री मरी नही, कि दूसरा ब्याह रच गया। तीस साल अकेले रहना सब का काम नहीं है।

रतन—हाँ बहन, हैं तो देवता ही। अब भी कभी उस स्त्री की चर्चा आ जाती है, तो रोने लगते हैं। तुम्हे उनकी तस्वीर दिखाऊँगी। देखने मे जितने कठोर मालूम होते हैं, भीतर से इनका हृदय उतना ही नर्म है। कितने ही अनाथों, विधवाश्रमों और गरीबो के महीने बाँध रखे है। तुम्हारा कगन तो बड़ा सुन्दर है।

जालपा—हाँ बडे अच्छे कारीगर का बनाया हुआ है।

रतन—मैं तो यहाँ किसी को जानती ही नहीं। वकील साहब को गहनों के लिए कष्ट देने की इच्छा नहीं होती। मामूली सोनारो से बनवाते डर लगता है, न जाने क्या मिला दे। मेरी सपत्नीजी के सब गहने रखे हुए हैं। लेकिन वह मुझे अच्छे नहीं लगते। तुम बाबू रमानाथ से मेरे लिए ऐसा ही एक जोड़ा कंगन बनवा दो।

जालपा—देखिए, पूछती हूँ।

रतन—आज तुम्हारे आने से जी बहुत खुश हुआ। दिन भर अकेली पडी रहती हूँ। जी घबड़ाया करता है, किसके पास जाऊँ। किसी से परिचय नहीं और न मेरा मन ही चाहता है उनसे मैत्री करूँ। दो एक महिलाओ को बुलाया, उनके घर गयी, चाहा कि बहनापा जोड़ लूँ; लेकिन उनके आचार-विचार देखकर उनसे दूर रहना ही अच्छा मालूम हुआ। दोनों ही मुझे उल्लू बनाकर जटना चाहती थीं। मुझसे रुपया उधार ले गयीं और आज तक दे रही हैं। शृंगार की चीजों पर मैंने उनका इतना प्रेम देखा, कि कहते लज्जा आती है। तुम घड़ी-आध घड़ी के लिए रोज चली आया करो बहन !

जालपा—वाह, इससे अच्छा और क्या होगा !

रतन—मैं मोटर भेज दिया करूँगी।

जालपा—क्या जरूरत है। ताँगे तो मिलते ही हैं।

रतन—न जाने क्यो तुम्हे छोड़ने को जी नहीं चाहता। तुम्हे पाकर रमानाथ जी अपना भाग्य सराहते होंगे।

जालपा ने मुस्कराकर कहा—भाग्य-वाग्य तो कहीं नहीं सराहते, घुड़कियाँ जमाया करते है।

रतन—सच ! मुझे तो विश्वास नहीं आता। लो वह भी तो आ गये। पूछना ऐसा दूसरा कंगन बनवा देंगे।

जालपा—(रमा से) क्यों, चरनदास से कहा जाय तो ऐसा कगन कितने दिन मे बना देंगे ? रतन ऐसा ही कंगन बनवाना चाहती हैं।

रमा ने तत्परता से कहा—हाँ बना क्यों नही सकता ? इससे बहुत अच्छे बना सकता है।

रतन—इस जोडे के क्या लिए थे ?

जालपा—आठ सौ के थे।

रतन—कोई हरज नहीं, मगर बिलकुल ऐसा ही हो, इसी नमूने का।

रमा०—हाँ-हाँ, बनवा दूँगा।

रतन—मगर भाई, अभी मेरे पास रुपये नहीं हैं।

रुपये के मामले मे पुरुष महिलाओं के सामने कुछ नहीं कह सकता।

क्या वह कह सकता है। इस वक्त मेरे पास रुपये नहीं है ! वह मर जायेगा; पर यह उज्र न करेगा। वह कर्ज लेगा, दूसरों की खुशामद करेगा; पर स्त्री के सामने अपनी मजबूरी न दिखायेगा। रुपये की चर्चा को ही वह तुच्छ समझता है। जालपा पति की आर्थिक दशा अच्छी तरह जानती थी, पर यदि रमा ने इस समय कोई बहाना कर दिया होता, तो उसे बहुत बुरा मालूम होता। वह मन में डर रही थी कि कहीं यह महाशय यह न कह बैठें, सराफ़ से पूछ कर कहूँगा। उसका दिल धड़क रहा था। पर जब रमा ने वीरता के साथ कहा—हाँ-हाँ रुपये की कोई बात नहीं, जब चाहे दे दीजिएगा, तो वह खुश हो गयी।

रतन—तो कब तक आशा करूँ ?

रमा०—मैं आज ही सराफ़ से कह दूंगा। तब भी १५ दिन तो लग ही जायेंगे।

जालपा—अबकी रविवार को मेरे ही घर पर चाय पीजिएगा।

रतन ने निमंत्रण सहर्ष स्वीकार किया और दोनों आदमी विदा हुए। घर पहुँचे तो शाम हो गयी। रमेश बाबू बैठे हुए थे। जालपा तो ताँगे से उतर कर अन्दर चली गयी, रमा रमेश बाबू के पास जाकर बोला—क्या आपको आये देर हुई ?

रमेश—नहीं, अभी तो चला आ रहा हूँ। क्या वकील साहब के यहाँ गये थे ?

रमा०—जी हाँ, तीन रुपये की चपत पड़ गयी।

रमेश०—कोई हरज नहीं, यह रुपये वसूल हो जायँगे। बड़े आदमियों से राह-रस्म हो जाये तो बुरा नहीं है, बड़े-बड़े काम निकलते हैं। एक दिन उन लोगों को भी तो बुलाओ।

रमा०—अबकी इतवार को चाय की दावत दे आया हूँ।

रमेश०—कहो तो मैं भी आऊँ। जानते हो न, वकील साहब के एक भाई इंजीनियर हैं ? मेरे एक साले बहुत दिनों से बेकार बैठे हैं। अगर वकील साहब उनकी सिफारिश कर दें, तो गरीब को जगह मिल जाये। तुम जरा मेरा इन्ट्रोडक्शन करा देना, बाकी और सब मैं कर लूंगा पार्टी का इन्तजाम ईश्वर ने चाहा, तो ऐसा होगा कि मेम साहब खुश

हो जायेंगी। चाय के सेट, शीशे के रंगीन गुलदान और फानूस मैं ला दूँगा। कुर्सियाँ, मेजें सब मेरे ऊपर छोड़ दो। न कुली की जरूरत न मजूर की। उन्हीं मूसलचन्द को रगेटूंगा।

रमा०—तब तो बड़ा मजा रहेगा। मैं तो बड़ी चिन्ता में पड़ा हुआ था।

रमेश०—चिन्ता की कोई बात नहीं, उसी लौंडे का जोत दूँगा। कहूँगा, जगह चाहते हो, तो कारगुजारी दिखाओ। फिर देखना, कैसी दौड़-धूप करता है।

रमा०—अभी दो-तीन महीने हुए आप अपने साले को कहीं नौकर रखा चुके हैं न?

रमेश०—अजी, अभी छः और बाकी हैं। पूरे सात जीव हैं। जरा बैठ जाओ, जरूरी चीजों की सूची बना ली जाये। आज ही से दौड़-धूप होगी, तब चीजें जुटा सकूंगा। और कितने मेहमान होंगे?

रमा०—मेम साहब होंगी, और शायद वकील साहब भी आयें।

रमेश०—यह बहुत अच्छा किया। बहुत से आदमी हो जाते तो भम्भड़ हो जाता। हमें तो मेम साहब से काम है। ठलुओं की खुशामद करने से क्या फायदा?

दोनों आदमियों ने सूची तैयार की। रमेश बाबू ने दूसरे ही दिन से सामान जमा करना शुरू किया। उनकी पहुँच अच्छे-अच्छे घरों में थी। सजावट की अच्छी-अच्छी चीजें बटोर लाये। सारा घर जगमगा उठा। दयानाथ भी इन तैयारियों मे शरीक थे। चीजों को करीने से सजाना उनका काम था। कौन गमला कहाँ रखा जाये, कौन तस्वीर कहाँ लटकाई जाये, कौन-सा गलीचा कहाँ बिछाया जाये, इन प्रश्नों पर तीनों मनुष्यों में घंटों वाद-विवाद होता था। दफ्तर जाने से पहले और दफ्तर से आने के बाद तीनों इन्हीं कामों में जुट जाते थे। एक दिन इस बात पर बहस छिड़ गई कि कमरे में आईना कहाँ रखा जाये। दयानाथ कहते थे, इस कमरे मे आईने की जरूरत नहीं। आईना पीछे वाले कमरे में रखना चाहिए। रमेश इसका विरोध कर रहे थे। रमा दुबिधे मे चुपचाप खड़ा था। न इनकी-सी कह सकता था, न उनकी-सी।

दया०—मैंने सैकड़ों अंगरेजों के ड्राइंग-रूम देखे हैं, कहीं आईना नहीं देखा। आईना श्रृङ्गार के कमरे मे रहना चाहिए। यहाँ आईना बेतुकी-सी बात है।

रमेश०—मुझे सैकड़ो अंगरेजों के कमरों को देखने का अवसर तो नहीं मिला है; लेकिन दो-चार जरूर देखे है और उनमे आईना लगा हुआ देखा। फिर क्या यह जरूरी बात है कि इन जरा-जरा-सी बातों मे भी हम अँगरेजों की नकल करे? हम अंगरेज नहीं हिन्दुस्तानी हैं। हिन्दुस्तानी रईसों के कमरे मे बडे-बडे आदमकद आईने रखे जाते हैं। यह तो आपने हमारे बिगड़े हुए बाबुओं की-सी बात कही, जो पहनावे में, कमरे की सजावट मे, बोली मे, चाय और शराबों मे, चीनी की प्यालियों मे—गरज दिखावे की सभी बातों मे तो अंग्ररेजों को मुंह चिढाते हैं; लेकिन जिन बातो ने अंगरेजों को अंगरेज बना दिया है और जिनकी बदौलत वे दुनिया पर राज्य करते हैं उनकी हवा तक नहीं छू जाती है। क्या आपको भी बुढ़ापे मे अँगरेज बनने का शौक चर्राया है?

दयानाथ अँगरेजों की नकल को बहुत बुरा समझते थे। वह चाय पार्टी भी उन्हे बुरी मालूम हो रही थी। अगर कुछ सन्तोष था, तो यही कि दो-चार बडे आदमियों से परिचय हो जायेगा। उन्होंने अपनी जिन्दगी मे कभी कोट नहीं पहना था! चाय पीते थे; मगर चीनी के सेट की कैद न थी। कटोरा-कटोरी, गिलास, लोटा-तसला, किसी से भी उन्हें आपत्ति न थी; लेकिन इस वक्त उन्हें अपना पक्ष निभाने की पड़ी थी। बोले—हिन्दुस्तानी रईसों के क़मरे मे मेज कुर्सियाँ नहीं होतीं। फर्श होता है। आपने कुर्सी-मेज लगाकर इसे अंगरेजी ढंग पर तो बना दिया; अब आईने के लिए हिन्दुस्तानियों की मिसाल दे रहे हैं। या तो हिन्दुस्तानी रखिए या अँगरेजी। यह क्या कि आधा तीतर आधा बटेर! कोट-पतलून पर चौगोसिया टोपी तो नहीं अच्छी मालूम होती!

रमेश बाबू ने समझा था कि दयानाथ की जबान बन्द हो जायेगी: लेकिन यह जवाब सुना तो चकराये। मैदान हाथ से जाता हुआ दिखाई दिया। बोले—तो आपने किसी अंगरेज के कमरे में आईना नहीं देखा?

भला ऐसे दस-पाँच अँगरेजो के नाम बतलाइए तो ? एक आपका वही किरंटा हेडक्लर्क है, उसके सिवा और किसी अँगरेज के कमरे मे तो शायद आपने कदम भी न रखा हो। उसी किरंटे को आपने अँग्रेजो रुचि का आदर्श समझ लिया ? मानता हूँ !

दया०—यह तो आपकी जबान है, उसे किरटा, चमरेशियन, पिल-पिली जो चाहे कहें, लेकिन रग को छोडकर वह किसी बात मे अँगरेजों से कम नहीं। और उसके पहले तो योरोपियन था।

रमेश इसका कोई जवाब सोच ही रहे थे कि एक मोटरकार द्वार पर आकर रुकी, और रतनबाई उतरकर बरामदे मे आयीं। तीनों आदमी चटपट बाहर निकल आये। रमा को इस वक्त का आना बुरा मालूम हुआ। डर रहा था, कि कहीं कमरे मे भी न चली आये, नहीं तो सारी कलई खुल जायेगी। आगे बढ़कर हाथ मिलाता हुआ बोला—आइए, यह मेरे पिता है, वह मेरे दोस्त रमेश बाबू है। लेकिन उन दोनों सज्जनों ने न हाथ बढ़ाया और न जगह से हिले। सकपकाये-से खडे रहे। रतन ने भी उनसे हाथ मिलाने की जरूरत न समझी। दूर से उनको नमस्कार करके रमा से बोली—नहीं बैठूंगी नहीं। इस वक्त फुर-सत नहीं है। आपसे कुछ कहना था।

यह कहते हुए रमा के साथ मोटर तक आयी और आहिस्ता से बोली—आपने सराफ से कह तो दिया होगा ?

रमा ने निःसंकोच होकर कहा—जी हाँ, बना रहा है।

रतन—उस दिन मैंने कहा था, अभी रुपये न दे सकूगी ; पर मैंने समझा शायद आपको कष्ट हो इसलिए रुपये मँगवा लिए। आठ सौ चाहिए न ?

जालपा ने कंगन का दाम आठ-सौ बताया था। रमा चाहता तो इतने रुपये ले सकता था, पर रतन की सरलता और विश्वास ने उसके हाथ पकड लिये। ऐसी उदार, निष्कपट रमणी के साथ वह विश्वासघात न कर सका। वह व्यापारियों से दो-दो चार-चार आने लेते जरा भी न झिझकता था। वह जानता था कि वे सब भी ग्राहकों को उलटे छूरे से मूड़ते है। ऐसो के साथ ऐसा व्यवहार करते हुए उसकी आत्मा को

लेशमात्र भी संकोच न होता था ; लेकिन इस देवी के साथ यह कपट व्यवहार करने के लिये किसी पुराने पापी की जरूरत थी। कुछ सकुचाता हुआ बोला—क्या जालपा ने कंगन के दाम आठ-सौ बतलाये थे ? उन्हें शायद याद न रही होगी। उसके कंगन छः सौ के हैं। आप चाहे, तो आठ सौ का बनवा दूँ।

रतन—नहीं, मुझे तो वही पसन्द है। आप छः सौ का ही बनवाइए।

उसने मोटर से अपनी थैली उठाकर सौ-सौ रुपये के छः नोट निकाले। रमा ने कहा—ऐसी जल्दी क्या थी, चीज तैयार हो जाती, तब हिसाब हो जाता।

रतन०—मेरे पास रुपये खर्च हो जाते। इसलिए मैंने सोचा, आपके सिर पर लाद आऊँ। मेरी आदत है कि जो काम करती हूँ, जल्द-से-जल्द कर डालती हूँ। विलम्ब से मुझे उलझन होती है।

यह कहकर वह मोटर पर बैठ गयी, मोटर हवा हो गयी। रमा सन्दूक मे रुपये रखने के लिए अन्दर चला गया, तो दोनों, वृद्धजनों मे बाते होने लगीं।

रमेश०—देखा ?

दया०—जी हाँ, आँखे खुली हुई थीं। अब मेरे घर में भी हवा आ रही है। ईश्वर ही बचाये।

रमेश०—बात तो ऐसी ही है; पर आजकल ऐसी ही औरतों का काम है। जरूरत पड़े, तो कुछ मदद तो कर सकती हैं। बीमार पड़ जाओ तो डाक्टर को बुला सकती हैं। यहाँ तो चाहे हम मर जायें, तब भी क्या मजाल कि स्त्री घर से बाहर पाँव निकाले।

दया०—हमसे तो भाई यह अंगरेजियत नहीं देखी जाती। क्या करें, सन्तान की ममता है, नहीं तो यही जी चाहता है कि रमा से साफ कह दूँ, भैया अपना घर अलग लेकर रहो। आँख फूटी, पीर गयी। मुझे तो उन मर्दों पर क्रोध आता है, जो स्त्रियों को सिर चढ़ाते हैं। देख लेना, एक दिन यह औरत वकील साहब को दगा देगी।

रमेश०—महाशय, इस बात में मैं तुमसे सहमत नहीं। यह क्यों मान लेते हो कि जो औरत बाहर आती है, वह जरूर बिगड़ी हुई है ?

मगर वह रमा को मानती बहुत है। रुपये न जाने किसलिये दिये ?

दया०—मुझे तो इसमें कुछ गोल-माल मालूम होता है। रमा कहीं उससे कोई चाल न चल रहा हो ?

इसी समय रमा भीतर से निकला आ रहा था। अन्तिम वाक्य उसके कान में पड़ गया। भौंहें चढ़ाकर बोला—जी हाँ, जरूर चाल चल रहा हूँ। उसे धोखा देकर रुपये ऐंठ रहा हूँ। यही तो मेरा पेशा है !

दयानाथ ने झेंपते हुए कहा—तो इतना बिगड़ते क्यों हो, मैंने तो कोई ऐसी बात नहीं कही ?

रमा०—पक्का जालिया बना दिया, और क्या कहते ? आपके दिल में ऐसा शुबहा क्यों आया ? आपने मुझमें कौन-सी बात देखी जिससे आपको यह खयाल पैदा हुआ ? मैं जरा साफ-सुथरे कपड़े पहनता हूँ, जरा नयी प्रथा के अनुसार चलता हूँ, इसके सिवा आपने मुझमे कौन-सी बुराई देखी ? मैं जो कुछ खर्च करता हूँ, ईमानदारी से कमाकर खर्च करता हूँ। जिस दिन धोखे और फरेब की नौबत आयेगी जहर खाकर प्राण दे दूँगा। हाँ, यह बात है कि किसी को खर्च करने की तमीज होती है, किसी को नहीं होती। यह अपनी सुबुद्धि है। अगर इसे आप धोखेबाजी समझें, तो आपको अख्तियार है। जब आपकी तरफ से मेरे विषय में ऐसे सशय होने लगे, तो मेरे लिए यही अच्छा है कि मुँह में कालिख लगाकर कहीं निकल जाऊँ। रमेश बाबू यहाँ मौजूद हैं। आप इनसे मेरे विषय मे जो कुछ चाहे पूछ सकते है। यह मेरे खातिर झूठ न बोलेंगे।

सत्य के रंग मे रंगी हुई बातों ने दयानाथ को आश्वस्त कर दिया। बोले—जिस दिन मुझे मालूम हो जायेगा कि तुमने यह ढंग अख्तियार किया है तुम्हारे पहले मैं मुंह मे कालिख लगाकर निकल जाऊँगा। तुम्हारा बढ़ता हुआ खर्च देखकर मेरे मन मे सन्देह हुआ था, मैं इसे छिपाता नहीं हूँ; लेकिन जब तुम कह रहे हो, तुम्हारी नियत साफ है, तो मैं सन्तुष्ट हूँ। मैं केवल इतना ही चाहता हूँ, मेरा लड़का चाहे गरीब रहे पर नियत न बिगाड़े। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि वह तुम्हें सत्पथ पर रखे।

रमेश ने मुसकराकर कहा—अच्छा, यह किस्सा तो हो चुका; अब यह बताओ उसने तुम्हे रुपये किसलिये दिये। मैं गिन रहा था, छः नोट थे, शायद सौ-सौ के थे।

रमा०—ठग लाया हूँ।

रमेश—मुझसे शरारत करोगे, तो मार बैठूंगा। अगर जट ही लाये हो तो भी मैं तुम्हारी पीठ ठोकूगा, जीते रहो। खूब जटो; लेकिन आबरू पर आँच न आने पाये। किसी को कानोकान खबर न हो। ईश्वर से तो मैं डरता नहीं। वह जो कुछ पूछेगा, उसका जवाब मैं दे लूंगा; मगर आदमी से डरता हूँ। बताओ, किसलिए रुपये दिये? कुछ दलाली मिलने वाली हो ता मुझे भी शरीक कर लेना।

रमा०—जड़ाऊ कगन बनवाने को कह गयी हैं।

रमेश०—तो चलो मैं एक अच्छे सराफ़ से बनवा दूं। यह झंझट तुमने बुरा मोल लिया। औरत का स्वभाव तुम जानते हो। किसी पर विश्वास तो इन्हे आता ही नहीं। तुम चाहे दो-चार रुपये अपने पास ही से खर्च कर दो पर वह यही समझेगी कि मुझे लूट लिया। नेकनामी तो शायद ही मिले; हाँ, बदनामो तैयार खडी है।

जरा देर बाद रमा अन्दर आकर जालपा से बोला—अभी तुम्हारी सहेली रतन आयी थीं।

जालपा—सच! तब तो बड़ा गडबड हुआ होगा? यहाँ कुछ तैयारी तो थी ही नहीं।

रमा०—कुशल यही हुई कि कमरे मे नहीं आयीं। कंगन के रुपये देने आयी थीं। तुमने शायद आठ सौ रुपये बताये थे। मैंने छः सौ ले लिये।

जालपा ने झेपते हुए कहा—मैंने दिल्लगी की थी।

जालपा ने इस तरह अपनी सफाई तो दे दी, लेकिन बहुत देर तक उसके मन मे उथल-पुथल होती रही। रमा ने अगर आठ सौ रुपये ले लिए होते, तो शायद वह उथल-पुथल न होती। वह अपनी सफलता पर खुश होती: पर रमा के विवेक ने उसकी धर्म-बुद्धि को जगा दिया था। वह पछता रही थी कि मैं व्यर्थ झूठ बोली! यह मुझे अपने मन

मे कितना नीच समझ रहे होंगे। रतन भी मुझे कितना बेईमान समझ ही होगी।

(१६)

चाय-पार्टी मे कोई विशेष बात नहीं हुई। रतन के साथ उसकी एक नाते की बहन और थी। वकील साहब न आये थे। दयानाथ ने उतनी देर के लिए घर से टल जाना ही उचित समझा। हाँ, रमेश बाबू बरामदे मे बराबर खडे रहे। रमा ने कई बार चाहा कि उन्हे भी पार्टी मे शरीक कर ले, पर रमेश मे इतना साहस न था।

जालपा ने दोनों मेहमानों को अपनी सास से मिलाया। ये युवतियाँ उन्हे कुछ ओछी जान पड़ीं। उनका सारे घर मे दौड़ना, धम्-धम् करके कोठे पर जाना, छत पर इधर-उधर उचकना, खिलखिलाकर हँसना उन्हे हुड़दंग-पन मालूम होता था। उनकी नीति मे बहू-बेटियों को भारी और लज्जाशील होना चाहिए था। आश्चर्य यह था कि आज जालपा भी उन्हे मे मिल गयी थी। रतन ने आज कगन की चर्चा तक न की।

अभी तक रमा को पार्टी की तैयारियों से इतनी फ़ुर्सत नहीं मिली थी कि गंगू की दूकान तक जाता। उसने समझा था, गंगू को छः सौ रुपये दे दूँगा तो पिछले हिसाब मे जमा हो जायँगे। केवल ढाई सौ रुपये और रह जायँगे। इस नये हिसाब मे छः सौ रुपये और मिलाकर फिर साढे आठ सौ रह जायेगे। इस तरह उसे अपनी साख जमाने का सुअवसर मिल जायेगा।

दूसरे दिन रमा खुश होता हुआ गँगू की दूकान पर पहुँचा और रोब से बोला—क्या रग-ढंग है महाराज, कोई नयी चीज बनवायी है इधर ?

रमा के टालमटोल से गगू इतना विरक्त हो रहा था कि आज कुछ रुपये मिलने की आशा भी उसे प्रसन्न न कर सकी। शिकायत के ढग से बोला—बाबू साहब, चीजे कितनी बनीं और कितनी बिकीं। आपने तो दूकान पर आना ही छोड़ दिया। इस तरह की दूकानदारी हम लोग नहीं करते। आठ महीने हुए, आपके यहाँ से एक पैसा भी नहीं मिला।

रमा०—भाई, खाली हाथ दूकान पर आते शर्म आती है। हम उन लोगों मे नहीं हैं, जिनसे तकाजा करना पड़े। आज यह छः सौ रुपये जमा कर लो, और एक अच्छा कंगन तैयार कर दो।

गंगू ने रुपये लेकर संदूक मे रखे, और बोला—बन जायेंगे। बाकी रुपये कब तक मिलेंगे?

रमा०—बहुत जल्द।

गंगू—हाँ बाबूजी, अब पिछला हिसाब साफ कर दीजिए।

गंगू ने बहुत जल्द कंगन बनवाने का वचन दिया; लेकिन एक बार सौदा करके उसे मालूम हो गया था कि यहाँ से जल्दी रुपये वसूल होने वाले नहीं। नतीजा यह हुआ कि रमा रोज तकाजा करता और गंगू रोज हीले करके टालता। कभी कारीगर बीमार पड़ जाता, कभी अपनी स्त्री की दवा कराने ससुराल चला जाता, कभी उसके लड़के बीमार हो जाते। एक महीना गुजर गया और कंगन न बने। रतन के तकाजों के डर से रमा ने पार्क जाना छोड़ दिया; मगर उसने घर तो देख ही रखा था। इस एक महीने में कई बार तकाजा करने आयी। आखिर जब सावन का महीना आ गया तो एक दिन उसने रमा से कहा—यह सूअर नहीं बनाकर देता, तो तुम किसी और कारीगर को क्यों नहीं देते।

रमा०—उस पाजी ने ऐसा धोखा दिया कि कुछ न पूछो। बस, रोज आज कल किया करता है। मैंने बड़ी भूल की जो उसे पेशगी रुपये दे दिये। अब उससे रुपये निकालना मुश्किल है।

रतन—आप मुझे उसकी दूकान दिखा दीजिए, मैं उसके बाप से वसूल कर लूँगी! तावान अलग! ऐसे बेईमान आदमी को पुलिस मे देना चाहिए।

जालपा ने कहा—हाँ और क्या, सभी सुनार देर करते हैं मगर ऐसा नहीं कि रुपये डकार जायँ और चीज के लिए महीनों दौड़ायें।

रमा ने सिर खुजलाते हुए कहा—आप दस दिन और सब्र करें, मैं आज ही उससे रुपये लेकर किसी दूसरे सराफ़ को दे दूँगा!

रतन—आप मुझे उस बदमाश की दूकान क्यों नहीं दिखा देते? मैं हंटर से बात करूँ।

रमा०—कहता तो हूँ। दस दिन के अन्दर आपको कंगन मिल जायेंगे।

रतन—आप खुद ही ढील डाले हुए हैं। आप उसकी लल्लो-चप्पो की बातों मे आ जाते होंगे। एक बार कड़े पड़ जाते, तो मजाल थी कि यों हीले-हवाले करता!

आखिर रतन बड़ी मुश्किल से बिदा हुई। उसी दिन शाम को गंगू ने साफ जवाब दे दिया—बिना आधे रुपये लिए कंगन न बन सकेंगे। पिछला हिसाब भी बेबाक हो जाना चाहिए।

रमा को मानो गोली लग गयी। बोला—महाराज, यह तो भलमंसी नहीं है। एक महिला की चीज है, उन्होंने पेशगी रुपये दिये थे, सोचो, मैं उन्हे क्या मुँह दिखाऊँगा। मुझसे अपने रुपये के लिये पुरनोट लिखा लो, स्टाम्प लिखा लो, और क्या करोगे?

गंगू—पुरनोट को शहद लगाकर चाटूँगा? आठ-आठ महीने का उधार नहीं होता। महीना, दो महीना बहुत है। आप तो बडे आदमी है। आपके लिये पॉच-छः सौ रुपये कौन बड़ा बात है। कगन तैयार है।

रमा ने दाँत पीसकर कहा—अगर यही बात थी तो तुमने एक महीना पहले क्यों न कह दिया? अब तक मैंने रुपये की कोई फिक्र की होती न!

गंगू—मैं क्या जानता था, आप इतना भी नहीं समझ रहे हैं।

रमा निराश होकर घर लौट आया। अगर इस समय भी उसने जालपा से सारा वृत्तान्त साफ-साफ कह दिया होता तो उसे चाहे कितना ही दुःख होता, पर वह अपना कंगन उतारकर दे देती; लेकिन रमा मे इतना साहस न था। वह अपनी आर्थिक कठिनाइयों की दशा कहकर उसके कोमल हृदय पर आघात न कर सकता था।

इसमे संदेह नहीं कि रमा को सौ रुपये के करीब ऊपर से मिल जाते थे, और वह किफायत करना जानता तो आठ महीनों मे दोनों सरफ़ो के कम-से-कम आधे रुपये अवश्य दे देता; लेकिन ऊपर की आमदनी थी, तो ऊपर का खर्च भी था। जो कुछ मिलता था, सैर-सपाटे मे खर्च हो जाता था। कौड़ियों से रुपये बनाना वणिकों का ही काम है। बाबू लोग तो रुपये की कौड़ियाँ ही बनाते हैं।

कुछ रात जाने पर रमा ने एक बार फिर सराफ़े का चक्कर लगाया बहुत चाहा, किसी सराफ़ को झाँसा दूँ; पर कहीं दाल न गली। बाजार मे बेतार की खबरें चला करती हैं।

रमा को रात भर नींद नहीं आयी। यदि आज उसे एक हजार का रुक्का लिखकर कोई पाँच सौ रुपये भी दे देता, तो वह निहाल हो जाता; पर अपनी जान-पहचान वालों मे उसे ऐसा कोई नजर न आता था। अपने मिलनेवालों मे उसने सभी से अपनी हवा बाँध रखी थी। खिलाने-पिलाने मे खुले हाथ रुपया खर्च करता था। अब किस मुँह से अपनी विपत्ति कहे? वह पछता रहा था कि नाहक गंगू को रुपये दिये। गंगू नालिश करने तो जाता न था। इस समय यदि रमा को कोई भयंकर रोग हो जाता तो वह उसका स्वागत करता। कम-से-कम दस-पाँच दिन की मुहलत तो मिल जाती; मगर बुलाने से तो मौत भी नहीं आती। वह तो उसी समय आती है जब हम उसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं होते। ईश्वर कहीं से कोई तार ही भिजवा दे। कोई ऐसा मित्र भी नजर नहीं आता था, जो उसके नाम फर्जी तार भेज देता। वह उन्हीं चिन्ताओं मे करवट बदल रहा था, कि जालपा की आँख खुल गयी। रमा ने तुरन्त चादर से मुँह छिपा लिया, मानो बेखबर सो रहा है। जालपा ने धीरे से चादर हटाकर उसका मुँह देखा, और उसे सोता पाकर ध्यान से उसका मुँह देखने लगी। जागरण और निद्रा का अन्तर उससे छिपा न रहा। उसे धीरे से हिलाकर बोली—क्या अभी तक जाग रहे हो?

रमा०—क्या जाने क्यों नींद नहीं आ रही है। पडे-पड़े सोचता था, कुछ दिनों के लिये बाहर चला जाऊँ। कुछ रुपये कमा लाऊँ।

जालपा—मुझे भी लेते चलोगे न?

रमा०—परदेश मे कहाँ लिये फिरूँगा?

जालपा—तो मैं यहाँ अकेली रह चुकी। एक मिनट तो रहूँगी नहीं। मगर जाओगे कहाँ?

रमा—अभी कुछ निश्चय नही कर सका हूँ।

जालपा०—तो क्या सचमुच तुम मुझे छोडकर चले जाओगे? मुझसे तो एक दिन भी न रहा जाय। मैं समझ गयी, तुम मुझसे मुहब्बत नहीं

करते। केवल मुँह देखे की प्रीति करते हो।

रमा०—तुम्हारे प्रेम-पाश ही ने मुझे यहाँ बाँध रखा है। नहीं तो अब तक कभी चला गया होता।

जालपा बातें बना रहे हो। अगर तुम्हे मुझसे सच्चा प्रेम होता तो तुम कोई पर्दा न रखते। तुम्हारे मन मे कोई ऐसी बात जरूर है, जो तुम मुझसे छिपा रहे हो। कई दिनों से देख रही हूँ, तुम चिन्ता मे डूबे रहते हो। मुझसे क्यों नहीं कहते? जहाँ विश्वास नहीं है, वहाँ प्रेम कैसे रह सकता है?

रमा०—यह तुम्हारा भ्रम है, जालपा। मैंने तो तुमसे कभी पर्दा नहीं रखा।

जालपा—तो तुम मुझे सचमुच दिल से चाहते हो?

रमा०—यह क्या मुह से कहूँगा जभी?

जालपा—अच्छा, अब मैं एक प्रश्न करती हूँ। सँभले रहना। तुम मुझसे क्यों प्रेम करते हो? तुम्हे मेरी कसम है, सच बताना।

रमा०—यह तो तुमने बेढब प्रश्न किया। अगर मैं तुमसे यही प्रश्न पूछूँ तो तुम क्या जवाब दोगी?

जालपा—मैं तो जानती हूँ।

रमा०—बताओ।

जालपा—तुम बतला दो, मैं भी बतला दूँ।

रमा०—मैं तो जानता ही नहीं। केवल इतना ही जानता हूँ कि तुम मेरे रोम-रोम मे रम रही हो।

जालपा—सोचकर बतलाओ। मैं आदर्श पत्नी नहीं हूँ इसे मैं खूब जानती हूँ। पति-सेवा अब तक मैंने नाम को भी नही की। ईश्वर की दया से तुम्हारे लिए अब तक कष्ट सहने की जरूरत नहीं पड़ी। घर-गृहस्थी का कोई काम मुझे नहीं आता। जो कुछ सीखा, यहीं सीखा। फिर तुम्हे मुझसे क्यों प्रेम है? बातचीत मे निपुण नहीं। रूप-रग भी ऐसा आकर्षक नहीं। जानते हो, मैं तुमसे क्यों ये प्रश्न कर रही हूँ?

रमा०—क्या जाने भाई, मेरी समझ मे तो कुछ नहीं आ रहा है।

जालपा—मैं इसलिए पूछ रही हूँ कि तुम्हारे प्रेम को स्थायी बना सकूं।

रमा०—मैं कुछ नहीं जानता जालपा, ईमान से कहता हूँ। तुममें कोई कमी है, कोई दोष है, यह बात आज तक मेरे ध्यान में नहीं आयी, लेकिन तुमने मुझमे कौन-सी बात देखी? न मेरे पास धन है, न विद्या है, न रूप है। बताओ।

जालपा—बता दूँ? मैं तुम्हारी सज्जनता पर मोहित हूँ। अब तुमसे क्या छिपाऊँ, जब मैं यहाँ आयी तो यद्यपि तुम्हें अपना पति समझती थी, लेकिन कोई बात कहते या करते समय मुझे चिन्ता होती थी कि तुम उसे पसन्द करोगे या नहीं। यदि तुम्हारे बदले मेरा विवाह किसी दूसरे पुरुष से हुआ होता तो उसके साथ भी मेरा यही व्यवहार होता। यह पत्नी और पुरुष का रिवाजी नाता है। पर अब मैं तुम्हें गोपियों के कृष्ण से भी न बदलूंगी। लेकिन तुम्हारे दिल मे अब भी चोर है। तुम अब भी मुझसे किसी-किसी बात मे पर्दा रखते हो।

रमा०—यह तुम्हारी केवल शका है जालपा। मैं दोस्तों से भी कोई दुराव नहीं करता। फिर तुम तो मेरी हृदयेश्वरी हो।

जालपा—मेरी तरफ़ देखकर बोलो, आँखे नीची करना मर्दों का काम नहीं है।

रमा के जी मे एक बार फिर आया, कि अपनी कठिनाइयों की कथा कह सुनाऊँ, लेकिन मिथ्या-गौरव ने फिर जबान बन्द कर दी।

जालपा जब उससे पूछती, सराफ़ों के रुपये देते जाते हो या नहीं, तो वह बराबर कहता, कुछ-न-कुछ हर महीने देता रहता हूँ। पर आज रमा की दुर्बलता ने जालपा के मन मे एक सदेह पैदा कर दिया था। वह उसी सदेह को मिटाना चाहती थी। जरा देर के बाद उसने पूछा —सराफ़ों के तो अभी सब रुपये अदा न हुए होंगे?

रमा०—अब थोडे ही बाकी है।

जालपा—कितने बाकी होंगे, कुछ हिसाब-किताब लिखते हो?

रमा०—हाँ, लिखता क्यों नहीं। सात सौ से कुछ कम ही होंगे।

जालपा—तब तो पूरी गठरी है। तुमने कहीं रतन के रुपये तो नहीं दे दिये?

रमा दिल मे काँप रहा था। कहीं जालपा यह प्रश्न न कर बैठे। आखिर उसने यह प्रश्न पूछ ही लिया। उस वक्त भी यदि रमा ने साहस करके सच्ची बात स्वीकार कर ली होती तो शायद उसके संकटों का अन्त हो जाता। जालपा एक मिनट तक अवश्य सन्नाटे मे आ जाती। संभव है, क्रोध और निराशा के आवेश मे दो-चार कटु शब्द मुँह से निकालती; लेकिन फिर शान्त हो जाती। दोनों मिलकर कोई-न-कोई युक्ति सोच निकालते। जालपा यदि रतन से यह रहस्य कह सुनाती, तो रतन अवश्य मान जाती। पर हाय रे आत्मगौरव! रमा ने यह बात सुनकर ऐसा मुंह बना लिया मानो जालपा ने उस पर कोई निष्ठुर प्रहार किया हो। बोला—रतन के रुपये क्यों देता। आज चाहूँ तो चार हजार का माल ला सकता हूँ। कारीगरों की आदत देर करने की होती है! सुनार की खटाई मशहूर है। बस, और कोई बात नहीं। दस दिन मे या तो तैयार ही लाऊँगा या रुपये वापस कर दूंगा, मगर यह शंका तुम्हे क्योंकर हुई? रकम भला मैं अपने खर्च मे कैसे लाता?

जालपा—कुछ नही, मैंने योंही पूछा था।

जालपा को थोड़ी देर मे नींद आ गयी, पर रमा फिर उसी उधेड़-बुन में पड़ा। कहाँ से रुपये लाये? अगर वह रमेश बाबू से साफ-साफ कह दे, तो वह किसी महाजन से दिला देंगे, लेकिन नहीं। वह उनसे किसी तरह न कह सकेगा। उसमे इतना साहस न था।

उसने प्रातःकाल नाश्ता करके दफ्तर की राह ली। शायद वहाँ कुछ प्रबंध हो जाय। कौन प्रबंध करेगा, इसका उसे ध्यान न था। जैसे रोगी वैद्य के पास जाकर सन्तुष्ट हो जाता है; पर यह नहीं जानता, मैं अच्छा हूँगा या नहीं! यही दशा इस समय रमा की थी। दफ्तर मे चपरासी के सिवा और कोई न था। रमा रजिस्टर खोल कर अंकों की जाँच करने लगा। कई दिनों से मीजान नहीं किया गया था; पर बडे बाबू के हस्ताक्षर मौजूद थे। अब मीजान किया, तो ढाई हजार निकले। एका-एक उसे एक नयी बात सूझी। क्यों न ढाई हजार की जगह मीजान मे

दो हजार लिख दूँ ? रसीद बही की जाँच कौन करता है। अगर चोरी पकड़ भी गई, तो कह दूँगा, मीजान लगाने मे गलती हो गई। मगर इस विचार को उसने मन मे टिकने न दिया। इस भय से कि कहीं चित्त चंचल न हो जाय, उसने पेंसिल के अंकों मे रोशनाई फेर दी, और रजिस्टर को दराज मे बन्द करके इधर-उधर घूमने लगा।

इक्की-दुक्की गाड़ियाँ आने लगीं। गाडीवानों ने देखा, बाबू साहब आज यहीं है, तो सोचा जल्दी चुंगी देकर छुट्टी पा जायं। रमा ने इस कृपा के लिए दस्तूरी की दूनी रकम वसूल की और गाडीवानों ने शौक से दी, क्योंकि यही मंडी का समय था और बारह-एक बजे तक चुंगीघर से फ़ुरसत पाने की दशा मे चौबीस घंटे का हर्ज होता था। मंडी दस-ग्यारह बजे के बाद बन्द हो जाती थी। दूसरे दिन का इन्तजार करना पड़ता था। अगर भाव रुपये मे आध पाव भी गिर गया, तो सैंकड़ों के मत्थे गयी। दस-पाँच रुपये का बल खा जाने में उन्हें क्या आपत्ति हो सकती थी। रमा को आज यह नयी बात मालूम हुई। सोचा, आखिर सुबह को मैं घर ही पर तो बैठा रहता हूँ। अगर यहाँ आकर बैठ जाऊँ तो रोज दस-पाँच रुपये हाथ आ जाये। फिर तो छः महीने मे यह सारा झगडा साफ हो जाय। मान लो रोज यह चाँदी न होगी, पन्द्रह न सही, दस मिलेंगे, पाँच मिलेंगे। अगर सुबह को रोज पाँच रुपये मिल जायें और इतने ही दिन भर मे और मिल जायँ; तो पाँच छः महीने में मैं ऋण से मुक्त हो जाऊँ। उसने दरवाजा खोलकर फिर रजिस्टर निकला। यह रजिस्टर निकाल लेने के बाद अब रजिस्टर मे हेर-फेर कर देना उसे इतना भयंकर न जान पड़ा। नया रंगरूट जो पहले बन्दूक की आवाज से चौंक पड़ता है, आगे चल कर गोलियों की वर्षा मे नहीं घबड़ाता।

रमा दफ्तर बन्द करके भोजन करने घर जाने ही वाला था कि एक बिसाती का ठेला आ पहुँचा। रमा ने कहा—लौटकर चुंगी लूँगा। बिसाती ने मिन्नत करनी शुरू की। उसे कोई बड़ा जरूरी काम था। आखिर दस रुपये मे मामला ठीक हुआ। रमा ने चुंगी ली, रुपये जेब मे रखे और घर चला। पच्चीस रुपये केवल दो-ढाई घंटों मे आ गये।

अगर एक महीने भी यह औसत रहे तो पल्ला पार है। उसे इतनी खुशी हुई कि वह भोजन करने घर न गया। बाजार से भी कुछ नहीं मँगवाया। रुपया भुनवाते हुए उसे एक रुपया कम हो जाने का ख्याल हुआ। वह शाम तक बैठा काम करता रहा, चार रुपये और वसूल हुए। चिराग जले वह घर चला, तो उसके मन पर से चिन्ता और निराशा का बहुत बोझ उतर चुका था। अगर दस दिन यही तेजी रही, तो रतन से मुँह चुराने की नौबत न आयेगी।

(१७)

नौ दिन गुजर गये। रमा रोज प्रातः दफ्तर जाता और चिराग जले लौटता। वह रोज यही आशा लेकर जाता कि आज कोई बडा शिकार फँस जायेगा, पर वह आशा न पूरी होती। इतनी ही नहीं। पहले दिन की तरह फिर कभी भाग्य का सूर्य न चमका। फिर भी उसके लिए कुछ कम श्रेय की बात नहीं थी कि नौ दिनों मे ही उसने सौ रुपये जमा कर लिये थे। उसने एक पैसा का पान भी न खाया था। जालपा ने कई बार कहा, चलो कहीं घूम आये, तो उसे भी उसने बातों ही मे टाला। बस, कल का दिन और था। कल आकर रतन कंगन माँगेगी, तो उसे वह क्या जवाब देगा? दफ्तर से आकर वह इसी सोच मे बैठा हुआ था। क्या वह एक महीना भर के लिए और न मान जायेगी? इतने दिन वह और न बोलती तो शायद उससे उऋण हो जाता। उसे विश्वास था कि मैं उससे चिकनी-चुपड़ी बाते करके राजी कर लूँगा। अगर उसने जिद की तो मैं उससे कह दूँगा, सराफ़ रुपये नहीं लौटाता।

सावन के दिन थे। अँधेरा हो चला था। रमा सोच रहा था, रमेश बाबू के पास चलकर दो-चार बाजियाँ खेल आऊँ; मगर बादलों को देख-देख रुक जाता था। इतने मे रतन आ पहुँची। वह प्रसन्न न थी। उसकी मुद्रा कठोर हो रही थी। आज वह लड़ने के लिए घर से तैयार होकर आयी है और मुरव्वत और मुलाहिजे की कल्पना को भी कोसों दूर रखना चाहती है।

जालपा ने कहा—तुम खूब आयीं। आज मैं भी जरा तुम्हारे साथ

घूम आऊँगी। इन्हें काम के बोझ से आजकल सिर उठाने की भी फुर्सत नहीं है।

रतन ने निष्ठुरता से कहा—मुझे आज बहुत जल्द घर लौट जाना है। बाबूजी को कल की याद दिलाने आयी हूँ।

रमा उसका लटका हुआ मुँह देखकर ही मन में सहम रहा था। किसी तरह उसे प्रसन्न करना चाहता था। बड़ी तत्परता से बोला—जी हाँ, खूब याद है। अभी सराफ़ की दूकान से चला आ रहा हूँ। रोज सुबह-शाम घंटे भर हाजिरी देता हूँ; मगर इन चीजों में समय बहुत लगता है। दाम तो कारीगरी के है। मालियत देखिए तो कुछ नहीं। दो आदमी लगे हुए हैं, पर शायद अभी एक महीने से कम में चीज तैयार न हो; पर होगी लाजवाब, जी खुश हो जायेगा।

पर रतन जरा भी न पिघली। तिनककर बोली—अच्छा! अभी महीना भर और लगेगा? ऐसी कारीगरी है कि तीन महीने मे भी पूरी न हुई! आप उससे कह दीजिएगा, मेरे रुपये वापस कर दे। आशा के कंगन देवियाँ पहनती होंगी, मेरे लिए जरूरत नहीं!

रमा०—एक महीना न लगेगा, मैं जल्दी बनवा दूँगा। एक महीना तो मैंने अन्दाजन कह दिया था। अब थोड़ी ही कसर रह गयी है। कई दिन तो नगीने तलाश करने में गये।

रतन—मुझे कंगन पहनना ही नहीं है भाई। आप मेरे रुपये लौटा दीजिए, बस। सुनार मैंने बहुत देखे हैं। आपकी दया से इस वक्त भी तीन जोड़े कंगन मेरे पास होंगे, ऐसी धाँधली कहीं नहीं देखी।

धाँधली के शब्द पर रमा तिलमिला उठा—धाँधली नहीं, मेरी हिमाक़त कहिये। मुझे क्या जरूरत थी कि अपनी जान संकट में डालता? मैंने तो पेशगी रुपये इसलिए दे दिए कि सुनार खुश होकर जल्दी से बना देगा। अब आप रुपये माँग रही हैं, सराफ़ रुपये नहीं लौटा सकता।

रतन ने तीव्र नेत्रों से देखकर कहा—क्यों, रुपये क्यो न लौटायेगा?

रमा०—इसलिए कि जो चीज आपके लिए बनायी है, उसे वह कहाँ बेचता फिरेगा? संभव है, साल छः महीने मे बिक सके। सबकी पसन्द एक-सी तो नहीं होती।

रतन ने त्योरियाँ चढ़ाकर कहा—मैं कुछ नहीं जानती, उसने देर की है, उसका दंड भोगे। मुझे कल या तो कंगन ला दीजिए या रुपये। आपसे यदि सराफ से दोस्ती है, आप मुलाहिजा और मुरव्वत के सबब से कुछ न कह सकते हों, तो मुझे उसकी दूकान दिखा दीजिए। नहीं आपको शर्म आती हो, तो उसका नाम बता दीजिए, मैं पता लगा लूंगी। वाह, अच्छी दिल्लगी है। दुकान नीलाम करा लूंगी। जेल भिजवा दूँगी। इन बदमाशों से लडाई के बगैर काम नहीं चलता।

रमा अप्रतिभ होकर जमीन की ओर ताकने लगा। वह कितनी मनहूस घडी थी, जब उसने रतन से रुपये लिये! बैठे-बिठाये विपत्ति मोल ली।

जालपा—सच तो है, इन्हे क्यो नही सराफ़ की दुकान पर ले जाते? चीज आँखों से देख इन्हे संतोष हो जायेगा।

रतन—मैं अब चीज लेना ही नहीं चाहती।

रमा ने काँपते हुए कहा—अच्छी बात है, आपको रुपये कल मिल जायेंगे।

रतन—कल किस वक्त?

रमा०—दफ्तर से लौटते वक्त लेता आऊँगा।

रतन—पूरे रुपये लूंगी। ऐसा न हो कि सौ-दो-सौ रुपये देकर टाल दें।

रमा०—कल आप अपने सब रुपये ले जाइएगा।

यह कहता हुआ रमा मरदाने कमरे मे आया, और रमेश बाबू के नाम एक रुक्का लिखकर गोपी से बोला—इसे रमेश बाबू के पास ले जाओ। जवाब लिखाते आना।

फिर उसने एक दूसरा रुक्का लिखकर विश्वम्भर को दिया, कि माणिकदास को दिखाकर जवाब लाये।

विश्वम्भर ने कहा—पानी आ रहा है।

रमा०—तो क्या सारी दुनिया बह जायेगी? दौड़ते हुए जाओ।

विश्वम्भर—और वह जो घर पर न मिलें?

रमा०—मिलेंगे। वह इस वक्त कहीं नहीं जाते।

आज जीवन मे पहला अवसर था, कि रमा ने दोस्तों से रुपये उधार माँगे। आग्रह और विनय के जितने शब्द उसे याद आये, उनका उपयोग किया। उसके लिए यह बिल्कुल नया अनुभव था। जैसे पत्र आज उसने लिखे; वैसे ही पत्र उसके पास कितनी बार आ चुके थे। उन पत्रों को पढ़कर उसका हृदय कितना द्रवित हो जाता था; पर विवश होकर उसे बहाने करने पड़ते थे। क्या रमेश बाबू भी बहाना कर जायेंगे? उनकी आमदनी ज्यादा है, खर्च कम। वह चाहे तो रुपये का इन्तजाम कर सकते है। क्या मेरे साथ इतना सलूक भी न करेंगे? अब तक दोनों लड़के नहीं आये। वह द्वार पर टहलने लगा। रतन की मोटर अभी तक खड़ी थी। इतने मे रतन बाहर आयी और उसे टहलते देखकर भी कुछ बोली नहीं। मोटर पर बैठी और चल दी।

दोनो कहाँ रह गये अब तक? कहीं खेलने लगे होंगे। शैतान तो हैं ही। जो कहीं रमेश रुपये दे दे, तो चाँदी है। मैंने दो सौ नाहक माँगे, शायद इतने रुपये उनके पास न हों। ससुराल वालों को नोच-खसोट से कुछ रहने भी तो नहीं पाता। माणिक चाहे तो हजार-पाँच सौ दे सकता है; लेकिन देखना चाहिए, आज परीक्षा हो जायेगी। अगर आज इन लोगों ने रुपये न दिए, तो फिर बात न पूछूंगा। किसी का नौकर नहीं कि जब शतरंज खेलने को बुलायें, तो दौड़ा चला जाऊँ। रमा किसी की आहट पाता, तो उसका दिल जोर से धड़कने लगता था। आखिर विश्वम्भर लौटा। माणिक ने लिखा था, आजकल बहुत तंग हूँ। मैं तो तुम्हीं से माँगने वाला था।

रमा ने पुर्जा फाड़कर फेंक दिया। मतलबी कहीं का! अगर सब-इंस्पेक्टर ने माँगा होता तो पुर्जा देखते ही रुपये लेकर दौड़े जाते। खैर, देखा जायेगा। चुगी के लिए माल तो आयेगा ही। इसकी कसर तब निकल जायेगी।

इतने मे गोपी भी लौटा। रमेश ने लिखा था—मैंने अपने जीवन मे दो-चार नियम बना लिये है, और बड़ी कठोरता से उनका पालन करता हूँ। उनमे से एक नियम यह है, कि मित्रों से लेन-देन का व्यवहार न करूँगा। अभी तुम्हे अनुभव नहीं हुआ है, लेकिन कुछ दिनों मे हो जायेगा।

मित्रों से जहाँ लेन-देन शुरू हुआ, वहाँ मनमुटाव होते देर नहीं लगती। तुम मेरे प्यारे दोस्त हो, तुमसे दुश्मनी नही करना चाहता, इसलिये मुझे क्षमा करो।

रमा ने इस पत्र को भी फाड़कर फेंक दिया और कुर्सी पर बैठकर दीपक की ओर टकटकी बाँधकर देखने लगा। दीपक उसे दिखायी देता था, इसमे सदेह है। इतनी ही एकाग्रता से वह कदाचित् आकाश की काली, अभेद्य मेघराशि की ओर ताकता।

मन की एक दशा वह भी होती है, जब आँखें खुली होती हैं, और कुछ नहीं सूझता; कान खुले रहते है, और कुछ सुनायी नहीं देता।

(१८)

संध्या हो गयी थी। म्युनिसिपैलिटी के अहाते मे सन्नाटा छा गया था। कर्मचारी एक-एक करके जा रहे थे। मेहतर कमरो मे झाड़ू लगा रहा था। चपरासियों ने जूते पहनना शुरू कर दिया। खोंचे वाले दिन भर की बिक्री के पैसे गिन रहे थे, पर रमानाथ अपनी कुर्सी पर बैठा रजिस्टर लिख रहा था।

आज भी वह प्रातः-काल आया था, पर आज भी कोई बड़ा शिकार न फँसा, वही दस रुपये मिलकर रह गये। अब अपनी आबरू बचाने का उसके पास और क्या उपाय था ? रमा ने रतन को झाँसा देने की ठान ली। वह खूब जानता था कि रतन की यह अधीरता केवल इसलिए है कि शायद उसके रुपये मैंने खर्च कर दिये। अगर उसे मालूम हो जाये कि उसके रुपये तत्काल मिल सकते है, तो वह शान्त हो जायेगी। रमा उसे रुपये से भरी हुई थैली दिखाकर उसका सदेह मिटा देना चाहता था। वह खजाची साहब के चले जाने की राह देख रहा था। उसने आज जान-बूझकर देर की थी। आज की आमदनी के आठ सौ रुपये उसके पास थे। इसे वह अपने घर ले जाना चाहता था। खजाची ठीक चार बजे उठा। उसे क्या गरज थी कि रमा से आज की आमदनी माँगता ? रुपये गिनने से ही छुट्टी मिली। दिन भर वही लिखते-लिखते और रुपये गिनते-गिनते बेचारे की कमर दुख रही थी। रमा को जब मालूम हो गया कि खजाँची साहब दूर निकल गये होंगे; तो उसने

रजिस्टर बन्द किया और चपरासी से बोला—थैली उठाओ ; चलकर जमा कर आयें।

चपरासी ने कहा—खजाँची बाबू तो चले गये।

रमा ने आँख फाड़कर कहा—खजाँची बाबू चले गये ? तुमने मुझसे कहा क्यों नहीं ? अभी कितनी दूर गये होंगे ?

चपरासी—सड़क के नुक्कड़ तक पहुँचे होंगे ?

रमा०—यह आमदनी कैसे जमा होगी ?

चपरासी—हुकुम हो तो बुला लाऊँ ?

रमा०—अजी जाओ भी, अब तक तो कहा नही, अब उन्हें रास्ते से बुलाने जाओगे। हो तुम भी निरे बछिया के ताऊ। आज ज्यादा छान गये थे ? खैर, रुपये इसी दराज़ में रहेंगे। तुम्हारी जिम्मेदारी रहेगी!

चपरासी—नहीं बाबू साहब मैं यहाँ रुपये नहीं रखने दूगा। सब घड़ी बराबर नहीं जाती। कहीं रुपये उठ जायें, तो मैं बेगुनाह मारा जाऊँ। सुभीते का ताला भी तो नहीं है यहाँ।

रमा०—तो फिर ये रुपये कहाँ रखूं ?

चपरासी—हुजूर अपने साथ लेते जायें।

रमा तो यह चाहता ही था। एक इक्का मँगवाया, उस पर रुपयों की थैली रखी और घर चला। सोचता था, कि अगर रतन भभकी में आ गयी, तो क्या पूछना ? कह दूंगा, दो-ही चार दिन की कसर है। रुपये सामने देखकर उसे तसल्ली हो जायेगी।

जालपा ने थैली देखकर पूछा—क्या कंगन न मिला ?

रमा०—अभी तैयार नहीं था। मैंने समझा, रुपया लेता चलूं जिससे उन्हे तस्कीन हो जाये।

जालपा—क्या कहा सराफ ने ?

रमा०—कहा क्या, आज-कल करता है। अभी रतनदेवी आयीं नहीं ?

जालपा—आती ही होगी, उसे चैन कहाँ ?

जब चिराग जले तक रतन न आयी, तो रमा ने समझा, अब न आयेगी। रुपये आलमारी में रख दिये और घूमने चल दिया। अभी

उसे गये दस मिनट भी न हुए होंगे कि रतन आ पहुँची और आते-ही-आते बोली—कंगन आ गये होंगे ?

जालपा—हाँ, आ गये हैं पहन लो ! बेचारे कई दफ़ा सराफ़ के पास गये। अभागा देता ही नही, हीले-हवाले करता है।

रतन—कैसा सराफ़ है कि इतने दिन से हीले हवाले कर रहा है ! मैं जानती कि रुपये झमेले मे पड जायँगे, तो देती ही क्यो। न रुपये मिलते, है न कगन मिलता हे।

रतन ने यह बात कुछ ऐसे अविश्वास के भाव से कही कि जालपा जल उठी। गर्व से बोली—आपके रुपये रखे हुए है, जब चाहिए ले जाइए। अपने बस की बात तो है नहीं। आखिर जब सराफ देगा, तभी तो आयेंगे ?

रतन—कुछ वादा करता है, कब तक देगा ?

जालपा—उसके वादों का क्या ठीक, सैकड़ों वादे तो कर चुका है।

रतन—तो इसके मानी यह है कि अब वह चीज न बनायेगा ?

जालपा—जो चाहे समझ लो।

रतन—तो मेरे रुपये ही दे दो, बाज आयी ऐसे कंगन से।

जालपा झमककर उठी, आलमारी से थैली निकाली और रतन के सामने पटककर बोली—ये आपके रुपये रखे है, ले जाइए।

वास्तव मे रतन की अधीरता का कारण वही था, जो रमा ने समझा था। उसे भ्रम हो रहा था कि इन लोगो ने मेरे रुपये खर्च कर डाले। इसलिए वह बार-बार कंगन का तकाजा करती थी। रुपये देखकर उसका भ्रम शान्त हो गया। कुछ लज्जित होकर बोली—अगर दो-चार दिन मे देने का वादा करता हो तो रुपये रहने दो।

जालपा—मुझे आशा नही है कि इतनी जल्द दे देगा। जब चीज तैयार हो जायेगी, तो रुपये माँग लिये जायेंगे।

रतन—क्या जाने उस वक्त मेरे पास रुपये रहें या न रहे। रुपये आते तो दिखायी देते है, जाते नही दिखायी देते। न जाने किस तरह उड़ जाते है। अपने ही पास रख लो तो क्या बुरा है ?

जालपा—तो यहाँ भी तो वही हाल है। फिर पराई रकम घर मे

रखना जोखिम की बात भी तो है। कोई गोलमाल हो जाये, तो व्यर्थ का दंड देना पडे। मेरे व्याह के चौथे ही दिन मेरे गहने चोरी चले गये। हम लोग जागते ही रहे; पर न जाने कब आँख लग गयी, और चोरों ने अपना काम कर लिया। दस हजार की चपत पड़ गयी। कहीं वही दुर्घटना फिर हो जाये, तो कहीं के न रहें।

रतन—अच्छी बात है, मैं रुपये लिये जाती हूँ, मगर देखना, निश्चिन्त न हो जाना। बाबूजी से कह देना सराफ़ का पिंड न छोड़ें।

रतन चली गयी। जालपा खुश थी कि सिर से बोझ टला। बहुधा हमारे जीवन पर उन्हीं के हाथों कठोरतम आघात होता है, जो हमारे सच्चे हितैषी होते है।

रमा कोई नौ बजे घूमकर लौटा, जालपा रसोई बना रही थी। उसे देखते ही बोली—रतन आयी थी, मैंने उसके सब रुपये दे दिये।'

रमा के पैरों के नीचे से मिट्टी खिसक गयी। आँखे फैलकर माथे पर जा पहुँची। घबराकर बोला—क्या कहा, रतन को रुपये दे दिये? तुमसे किसने कहा था कि उसे रुपये दे देना?

जालपा—उसी के रुपये तो तुमने लाकर रखे थे। तुम खुद उसका इंतजार करते रहे। तुम्हारे जाते ही वह आयी और कंगन माँगने लगी। मैंने झल्लाकर उसके रुपये फेंक दिये।

रमा ने सावधान होकर कहा—उसने रुपये माँगे तो न थे!

जालपा—माँगें क्यों नहीं? हाँ, जब मैंने दे दिये तो अलबत्ता कहने लगी, इसे क्यों लौटाती हो? अपने पास ही पड़ा रहने दो। मैंने कह दिया, ऐसे शक्की मिजाजवालों का रुपया मैं नहीं रखती।

रमा—ईश्वर के लिए तुम मुझसे बिना पूछे ऐसे काम मत किया करो!

जालपा—तो अभी क्या हुआ, उसके पास जाकर रुपये माँग लाओ; मगर अभी से रुपये घर मे लाकर अपने जी का जञ्जाल क्यों मोल लोगे?

रमा इतना निस्तेज हो गया कि जालपा पर बिगडने की भी शक्ति उसमें न रही। रुआँसा होकर नीचे चला गया और स्थिति पर विचार करने लगा। जालपा पर बिगड़ना अन्याय था। जब रमा ने साफ कह दिया कि ये रुपये रतन के हैं, और इसका संकेत तक न किया कि मुझसे

पूछे बगैर रतन को रुपये मत देना, तो जालपा का कोई अपराध नहीं।

उसने सोचा—इस समय झल्लाने और बिगड़ने से समस्या हल न होगी। शातचित्त होकर विचार करने की आवश्यकता थी। रतन से रुपये वापस लेना अनिवार्य था। जिस समय वह यहाँ आयी थी, अगर मैं खुद मौजूद होता, तो कितनी खूबसूरती से सारी मुश्किल आसान हो जाती। मुझको क्या शामत सवार थी कि घूमने निकला। एक दिन न घूमने जाता तो कौन मरा जाता था? कोई गुप्त शक्ति मेरा अनिष्ट करने पर उतारू हो गयी है। दस मिनट की अनुपस्थिति ने सारा खेल बिगाड दिया। वह कह रही थी कि रुपये रख लीजिए। जालपा ने जरा समझ से काम लिया होता तो यह नौबत काहे को आती; लेकिन फिर मैं बीती हुई बातें सोचने लगा। समस्या है, रतन से रुपये वापस कैसे लिये जायें! क्यों न चलकर कहूँ, मैंने सुना है, रुपये लौटाने से आप नाराज हो गयी है। असल मे मैं आपके लिए रुपये न लाया था। सराफ़ से इसलिए माँग लाया था, कि वह चीज बनवाकर दे दे। संभव है, वह खुद ही लज्जित होकर क्षमा माँगे और रुपये दे दे। बस, इसी वक्त वहाँ जाना चाहिए।

यह निश्चय करके उसने घडी पर नजर डाली। साढे आठ बजे थे। अधकार छाया हुआ था। ऐसे समय रतन घर से बाहर नहीं जा सकती। रमा ने साइकिल उठायी और रतन से मिलने चला।

रतन के बंगले पर आज बड़ी बहार थी। वहाँ नित्य ही कोई-न-कोई उत्सव, दावत, पार्टी होती रहती थी। रतन का एकान्त नीरव जीवन इन विषयों की ओर उस भाँति लपकता था, जैसे प्यासा पानी की ओर लपकता है। इस वक्त वहाँ बच्चों का जमघट था। एक आम के वृक्ष मे झूला पडा था, बिजली की बत्तियाँ जल रही थीं, बच्चे झूला झूल रहे थे और रतन खड़ी झुला रही थी। हू-हक मचा हुआ था। वकील साहब इस मौसम में भी ऊनी ओवरकोट पहने बरामदे में बैठे सिगार पी रहे थे। रमा की इच्छा हुई, कि झूले के पास जाकर रतन से बातें करे; पर वकील साहब को खडे देखकर वह सकोच के मारे उधर न जा सका। वकील साहब ने उसे देखते ही हाथ बढ़ा दिया और बोले—आओ रमा

बाबू, कहो, तुम्हारे म्युनिसिपल बोर्ड की क्या खबरें हैं ?

रमा ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा—कोई नयी बात तो नहीं हुई ।

वकील—आपके बोर्ड मे लड़कियों की अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव कब पास होगा ? और कई बोर्डों ने तो पास कर दिया । जब तक स्त्रियों की शिक्षा का काफी प्रचार न होगा, हमारा कभी उद्धार न होगा । आप तो योरोप न गये होंगे ? क्या आजादी है, क्या दौलत है, क्या जीवन है, क्या उत्साह है ! बस, मालूम होता है, यही स्वर्ग है ! और स्त्रियाँ भी सचमुच देवियाँ हैं ! इतनी हँसमुख, इतनी स्वच्छन्द ! यह सब स्त्री शिक्षा का प्रसाद है !

रमा ने समाचार-पत्रो मे इन देशों का जो थोड़ा बहुत हाल पढ़ा था, उसके आधार पर बोला—वहाँ स्त्रियों का आचरण तो बहुत अच्छा नहीं है ।

वकील—नान्सेंस ! अपने-अपने देश की प्रथा है । आप एक युवती को किसी युवक के साथ एकान्त मे विचरते देखकर दाँतों तले उँगली दबाते हैं; आपका अन्तःकरण इतना मलिन हो गया है कि स्त्री-पुरुष को एक जगह देखकर आप संदेह किये बिना रह ही नहीं सकते; पर जहाँ लड़के और लड़कियाँ एक साथ शिक्षा पाते हैं, वहाँ यह जाति-भेद बहुत महत्व की वस्तु नहीं रह जाता । आपस मे स्नेह सहानुभूति की इतनी बातें पैदा हो जाती हैं कि कामुकता का अंश बहुत थोड़ा रह जाता है । यह समझ लीजिए कि जिस देश मे स्त्रियों को जितनी अधिक स्वाधीनता है, वह देश उतना ही सभ्य है । स्त्रियों को कैद मे, परदे मे, या पुरुष से कोसों दूर रखने का तात्पर्य यही निकलता है कि आपके यहाँ जनता इतनी आचार-भ्रष्ट है कि स्त्रियों का अपमान करने मे जरा भी संकोच नहीं करती । युवकों के लिए राजनीति, धर्म, ललित कला, साहित्य, दर्शन, इतिहास विज्ञान और हजारों ही ऐसे विषय हैं, जिनके आधार पर वे युवतियों से गहरी दोस्ती पैदा कर सकते हैं । कामलिप्सा उन देशों के लिये आकर्षण का प्रधान विषय है, जहाँ लोगों की मनोवृत्तियाँ संकुचित रहती हैं । मैं साल भर योरोप और अमेरिका मे रह चुका हूँ । कितनी ही सुन्दरियों के साथ मेरी दोस्ती थी । उनके साथ खेला हूँ । नाचा भी

हूँ, पर कभी मुँह से ऐसा शब्द न निकलता था, जिसे सुनकर किसी युवती को लज्जा से सिर झुकाना पडे। और फिर अच्छे और बुरे कहाँ नहीं हैं?

रमा को इस समय इन बातो मे कोई आनन्द न आया। वह तो इस समय दूसरी ही चिन्ता मे मग्न था।

वकील साहब ने फिर कहा—जब तक हम स्त्री-पुरुषों को अबाध रूप से अपना-अपना मानसिक विकास न करने देंगे, हम अवनति की ओर खिसकते चले जायेंगे। बन्धनो से समाज का पैर न बाँधिए, उसके गले मे कैद की जजीर न डालिए। विधवा-विवाह का प्रचार कीजिए, खूब जोरों से कीजिए, लेकिन यह बात मेरी समझ मे नहीं आती कि जब कोई अधेड़ आदमी किसी युवती से व्याह कर लेता है, तो क्यो अखबारों मे इतना कुहराम मच जाता है? योरोप मे ८० बरस के बूढ़े युवतियों से ब्याह करते हैं, सत्तर वर्ष की वृद्धाएँ युवकों से ब्याह करती है। कोई कुछ नहीं कहता। किसी को कानो-कान खबर भी नही होती। हम बूढों को मरने के पहले ही मार डालना चाहते है। हालाँकि मनुष्य को कभी किसी सहगामिनी की जरूरत होती है तो बुढापे मे, जब उसे हरदम किसी अवलम्ब की इच्छा होती है, जब वह परमुखापेक्षी हो जाता है।

रमा का ध्यान झूले की ओर था। किसी तरह रतन से दो-दो बातें करने का अवसर मिले। इस समय उसकी सबसे बडी कामना यही थी। उसका वहाँ जाना शिष्टाचार के विरुद्ध था। आखिर उसने एक क्षण के बाद झूले की ओर देखकर कहा—ये इतने लडके किधर से आ गये?

वकील—रतन बाई को बाल-समाज से बड़ा स्नेह है। न जाने कहाँ से इतने लड़के जमा हो जाते हैं। अगर आपको बच्चों से प्यार हो, तो जाइए।

रमा तो यह चाहता ही था, झट झूले के पास जा पहुँचा। रतन उसे देखकर मुस्करायी और बोली—इन शैतानों ने मेरी नाक मे दम कर रखा है। झूले से इन सबो का पेट नहीं भरता। आइए, जरा आप भी बेगार कीजिए, मैं तो थक गयी। यह कहकर वह पक्के चबूतरे पर बैठ गयी। रमा झोंके देने लगा। बच्चों ने नया आदमी देखा, तो सब-के-सब अपनी बारी के लिए उतावले होने लगे। रतन के हाथों दो बारियाँ

आ चुकी थीं; पर यह कैसे हो सकता था कि कुछ लड़के तो तीसरी बार झूलें, और बाकी बैठे मुँह ताकें। दो उतरते तो चार झूले पर बैठ जाते। रमा को बच्चों से नाममात्र को भी प्रेम न था, पर इस वक्त फँस गया था, क्या करता?

आखिर आध घण्टे की बेगार के बाद उसका जी ऊब गया। घड़ी में साढ़े नौ बज रहे थे। मतलब की बात कैसे छेड़े। रतन तो झूले में इतनी मग्न थी मानो उसे रुपयों की सुध ही नहीं है।

सहसा रतन ने झूले के पास जाकर कहा—बाबूजी, मैं बैठती हूँ, मुझे झुलाइए; मगर नीचे से नहीं झूले पर खड़े होकर पेंग मारिए।

रमा बचपन ही से झूले पर बैठते डरता था। एक बार मित्रों ने जबरदस्ती झूले पर बैठा दिया तो उसे चक्कर आने लगा; पर इस अनुरोध ने उसे झूले पर आने के लिये मजबूर कर दिया। अपनी अयोग्यता कैसे प्रकट करे। रतन दो बच्चों को लेकर बैठ गयी, और यह गीत गाने लगी—

कदम की डरियाँ झूला पड़ गयो री,
राधा रानी झूलन आईं।

रमा झूले पर खड़ा होकर पेंग मारने लगा; लेकिन उसके पाँव काँप रहे थे और दिल बैठा जाता था। जब झूला ऊपर से गिरता था, तो ऐसा जान पड़ता था मानों कोई तरल वस्तु उसके वक्ष में चुभती चली जा रही है—और रतन लड़कियों के साथ गा रही थी—

कदम की डरियाँ झूला पड़ गयो री,
राधा रानी झूलन आईं।

एक क्षण के बाद रतन ने कहा—जरा और बढ़ाइए साहब, आपसे तो झूला बढ़ता ही नहीं।

रमा ने लज्जित होकर जोर लगाया; पर झूला न बढ़ा! रमा के सिर में चक्कर आने लगा।

रतन—आपको पेंग मारना नहीं आता; कभी झूला नहीं झूले?

रमा ने झिझकते हुए कहा—हाँ, इधर तो वर्षों से नहीं बैठा।

रतन—तो आप इन बच्चों को सँभालकर बैठिए, मैं आपको

झुलाऊँगी। अगर उस डाल से न छू ले तो कहिएगा। रमा के प्राण सूख गए। बोला—आज तो बहुत देर हो गयी है, फिर कभी आऊँगा।

रतन—अजी अभी क्या देर हो गयी है, दस भी नहीं बजे। घबराइए नही, अभी बहुत रात पडी है। खूब झूलकर जाइएगा। कल जालपा को लाइएगा, हम दोनों झूलेगी।

रमा झूले पर से उतरा तो उसका चेहरा सहमा हुआ था। मालूम होता था, अब गिरा। वह लडखड़ाता हुआ साइकिल की ओर चला और उसपर बैठ कर तुरन्त घर भागा।

कुछ दूर तक उसे होश न रहा। पाँव आप-ही-आप पैडल घुमाते जाते थे। आधी दूर जाने के बाद उसे होश आया। उसने सायकिल घुमा दी, कुछ दूर चला, फिर उतर कर सोचने लगा—आज सकोच में पडकर कैसी बाजी हाथ से खोयी। वहाँ से चुपचाप अपना-सा मुँह लिए लौट आया। क्यों उसके मुँह से आवाज नहीं निकली? रतन कुछ हौवा तो थी नहीं जा उसे खा जाती। सहसा उसे याद आया, थैली मे आठ सौ रुपये थे, जालपा ने झुंझलाकर थैली उसके हवाले कर दी। शायद उसने गिना नहीं, नही जरूर कहती। कहीं ऐसा न हो, थैली किसी को दे दे, या और रुपयों मे मिला दे। गजब ही हो जाय, कहीं का न रहूँ। क्यों न इसी वक्त चलकर बेशी रुपये माँग लाऊँ? लेकिन देर बहुत हो गयी है। सवेरे फिर आना पडेगा।

मगर यह दो सौ रुपये मिल भी गये, तब भी तो पाँच सौ रुपयों की कमी रहेगी। उसका क्या प्रबन्ध होगा? ईश्वर ही बेड़ा पार लगाये तो लग सकता है। सवेरे कुछ न प्रबन्ध हुआ तो क्या होगा? यह सोचकर वह काँप उठा।

जीवन मे ऐसे अवसर भी आते है, जब निराशा मे भी हमे आशा होती है। रमा ने सोचा, एक बार फिर गगू के पास चलू, शायद दूकान पर मिल जाये, उसके हाथ पाँव जोड़ूँ। सम्भव है, कुछ दया आ जाये। वह सराफे जा पहुँचा; मगर गगू की दूकान बन्द थी! वह लौटा ही था कि चरनदास आता हुआ दिखाई दिया। रमा को देखते ही बोला—

बाबूजी, आपने तो इधर का रास्ता ही छोड़ दिया। कहिए, रुपये कब तक मिलेंगे ?

रमा ने विनम्र भाव से कहा—अब बहुत जल्द मिलेंगे भाई, देर नहीं है। देखो गंगू के रुपये चुकाये हैं, अबकी तुम्हारी बारी है।

चरन०—वह सब किस्सा मालूम है। गंगू ने होशियारी से अपने रुपये न ले लिये होते, तो हमारी तरह टापा करता। साल भर हो रहा है। रुपये सैकडे का सूद रखिए तो ८४) होते हैं। कल आकर हिसाब कर जाइए, सब नहीं तो आधा-तिहाई कुछ तो दीजिए। लेते-देते रहने से मालिक को ढाढ़स रहता है। कान मे तेल डालकर बैठ रहने से तो शका होने लगती है कि इनकी नीयत बहुत खराब है। तो कल कब आइएगा ?

रमा—भई, कल मैं रुपये लेकर तो न आ सकूँगा, यों जब कहो तब आऊँ। क्या, इस वक्त अपने सेठ जी से चार-पाँच सौ रुपयो का बन्दोबस्त न करा दोगे ? तुम्हारी मुट्ठी भी गर्म कर दूँगा।

चरन०—कहाँ की बात लिये फिरते हो बाबूजी, सेठजी एक कौडी तो देंगे नहीं। उन्होंने यही बहुत सलूक किया कि नालिश नहीं कर दी। आपके पीछे मुझे बाते सुननी पड़ती है। क्या बडे मुंशीजी से कहना पड़ेगा।

रमा ने झल्लाकर कहा—तुम्हारा देनदार मैं हूँ, बड़े मुंशी नहीं है। मैं मर नही गया हूँ, घर छोडकर भागा नही जाता हूँ। इतने अधीर क्यों हुए जाते हो।

चरन०—साल भर हुआ एक कौडी नही मिली। अधीर न हों तो क्या हों। कल कम-से-कम दो सौ की फिकर कर रखिएगा।

रमा०—मैंने कह दिया, मेरे पास अभी रुपये नहीं है।

चरन०—रोज गठरी काट-काटकर रखते हो, उस पर कहते हो रुपये नहीं है। कल रुपये जुटा रखना। कल आदमी जायेगा जरूर।

रमा ने उसका कोई जवाब न दिया, आगे बढ़ा। इधर आया था कि कुछ काम निकलेगा, उलटे तकाजा सहना पडा। कही दुष्ट सचमुच बाबूजी के पास तकाजा न भेज दे। आग ही हो जायेगे। जालपा भी समझेगी, कैसा लबाड़िया आदमी है।

इस समय रमा की आँखों से आँसू तो न निकलते थे; पर उसका एक-एक रोआँ रो रहा था। जालपा से अपनी असली हालत छिपाकर उसने कितनी भारी भूल की ! वह समझदार औरत है, अगर उसे मालूम हो जाता कि मेरे घर मे भूंजी भाँग नही है, तो वह मुझे कभी उधार गहने न लेने देती। उसने तो कभी अपने मुँह से कुछ नहीं कहा। मैं ही अपनी शान जमाने के लिए मरा जा रहा था। इतना बडा बोझ सिर पर लेकर भी मैंने क्यों किफायत से काम नहीं लिया। मुझे एक-एक पैसा दाँतों से पकड़ना चाहिए था। साल भर मे मेरी आमदनी सब मिलाकर एक हजार से कम न हुई होगी। अगर किफायत से चलता तो इन दोनों महाजनों के आधे-आधे रुपये जरूर अदा हो जाते; मगर यहाँ तो सिर पर शामत सवार थी। इसकी क्या जरूरत थी कि जालपा मुहल्ले भर की औरतों को जमा करके रोज सैर को जाती ? सैकडों रुपयों तो ताँगा वाला ले गया होगा; मगर यह तो उस पर रोब जमाने की पड़ी हुई थी ! सारा बाजार जान जाये कि लाला निरे लफंगे है पर अपनी स्त्री न जानने पाये ! वाह री बुद्धि ! दरवाजे के लिये परदों की क्या जरूरत थी ? दो लैम्प क्यों लाया, नयी निवाड़ लेकर चारपाइयाँ क्यों बुनवायी ? उसने रास्ते ही मे उन सारे खर्चों का हिसाब तैयार कर लिया जिन्हे उसकी हैसियत के आदमी को टालना चाहिए। आदमी जब तक स्वस्थ रहता है, उसे इसकी चिन्ता नहीं रहती कि वह क्या खाता है, कितना खाता है, लेकिन जब कोई विकार उत्पन्न हो जाता है तो उसे याद आती है कि कल मैंने पकौडियाँ खायी थीं। विजय बहिर्मुखी होती है, पराजय अन्तर्मुखी।

जालपा ने पूछा—कहाँ चले गये थे, बड़ी देर लगा दी ?

रमा०—तुम्हारे कारण रतन के बँगले पर जाना पड़ा। तुमने सब रुपये उठाकर दे दिये; उसमें दो सौ मेरे भी थे।

जालपा—तो मुझे क्या मालूम था। तुमने कहा भी तो न था। मगर उनके पास से रुपये कही जा नहीं सकते, वह आप ही भेज देंगी।

रमा०—माना; पर सरकारी रकम तो कल दाखिल करनी पड़ेगी।

जालपा—कल मुझसे दो सौ रुपये ले लेना, मेरे पास है।

रमा को विश्वास न आया। बोला—कहीं हों न तुम्हारे पास ! इतने रुपये कहाँ से आये ?

जालपा—तुम्हे इससे क्या मतलब, मैं तो दो सौ रुपये देने को कहती हूँ।

रमा का चेहरा खिल उठा। कुछ-कुछ आशा बँधी। दो सौ रुपये यह दे दे, दो-सौ रतन से ले लूँगा, सौ रुपये मेरे पास हैं ही, तो कुल तीन सौ की कमी रह जायेगी; मगर यह तीन सौ रुपये कहाँ से आयेंगे। ऐसा कोई नजर न आता था, जिससे इतने रुपये मिलने की आशा की जा सके। हाँ, अगर रतन सब रुपये दे दे तो बिगडी बात बन जाये। आशा का यही एक आधार रह गया था।

जब वह खाना खाकर लेटा, तो जालपा ने कहा—आज किस सोच मे पडे हो ?

रमा—सोच किस बात का ? क्या मैं उदास हूँ ?

जालपा—हाँ, किसी चिन्ता मे पडे हुए हो; मगर मुझसे बताते नहीं हो।

रमा—ऐसी कोई बात होती तो तुमसे छिपाता ?

जालपा—वाह, तुम अपने दिल की बात मुझसे क्यों कहोगे ? ऋषियों की आज्ञा नहीं है।

रमा—मैं उन ऋषियो के भक्तों मे नहीं हूँ।

जालपा—वह तो तब मालूम होता, जब मैं तुम्हारे हृदय मे पैठकर देखती।

रमा—वहाँ तुम अपनी ही प्रतिमा देखतीं।

रात को जालपा ने एक भयंकर स्वप्न देखा, वह चिल्ला पडी। रमा ने चौंककर पूछा—क्या है जालपा, क्या स्वप्न देख रही हो ?

जालपा ने इधर-उधर घबड़ाई हुई आँखों से देखकर कहा—बड़े संकट मे जान पड़ी थी ! न जाने कैसा सपना देख रही थी।

रमा—क्या देखा ?

जालपा—क्या बताऊँ, कुछ कहा नहीं जाता। देखती थी, कि तुम्हे कई सिपाही पकड़े लिये जा रहे हैं। कितना भयंकर रूप था उनका।

रमा का खून सूख गया। दो-चार दिन पहले, इस स्वप्न को उसने

हँसी मे उड़ा दिया होता; इस समय वह अपने को सशंकित होने से न रोक सका, पर बाहर से हँसकर बोला—तुमने सिपाहियों से पूछा नहीं, इन्हें क्यों पकड़े लिए जाते हो ?

जालपा—तुम्हे हँसी सूझ रही है, मेरा हृदय काँप रहा है।

थोड़ी देर बाद रमा ने नींद मे बकना शुरू किया—अम्मा कहे देता हूँ, फिर मेरा मुँह न देखोगी, मैं डूब मरूँगा।

जालपा को अभी तक नींद न आयी थी। भयभीत होकर उसने रमा को जोर से हिलाया और बोली—मुझे तो हँसते थे, और खुद बकने लगे। सुनकर रोएँ खडे हो गये। स्वप्न देखते थे क्या ?

रमा ने लज्जित होकर का—हाँ जी, न जाने क्या देख रहा था। कुछ याद नहीं।

जालपा ने पूछा—अम्माजी को क्यों धमका रहे थे ? सच बताओ, क्या देखते थे ?

रमा ने सिर खुजलाते हुए कहा—कुछ याद नहीं आता, योंही बकने लगा हूँगा ?

जालपा—अच्छा तो करवट सोना। चित सोने से आदमी बकने लगता है।

रमा करवट लेट गया; पर ऐसा जान पड़ता था मानो चिन्ता और शंका दोनों आँखों मे बैठी निद्रा के आक्रमण से उनकी रक्षा कर रही हैं। जागते हुए दो बज गये। सहसा जालपा उठ बैठी, और सुराही से पानी उँडेलती हुई बोली—बड़ी प्यास लगी थी, क्या तुम अभी तक जाग ही रहे हो ?

रमा—हाँ जी; नींद उचट गयी है। मैं सोच रहा था, तुम्हारे पास दो सौ रुपये कहाँ से आ गये ? मुझे इसका आश्चर्य है।

जालपा—ये रुपये मैं मायके से लायी थी, कुछ बिदाई मे मिले थे, कुछ पहले से रखे थे।

रमा०—तब तो तुम रुपये जमा करने मे बड़ी कुशल हो। यहाँ क्यों नहीं कुछ जमा किया ?

जालपा ने मुसकराकर कहा—तुम्हे पाकर अब रुपये की परवा नहीं रही।

रमा०—अपने भाग्य को कोसती होगी ?

जालपा—भाग्य को क्यों कोसूं ? भाग्य को वह औरतें रोएँ जिनका पति निखट्टू हो, शराबी हो, दुराचारी हो, रोगी हो, तानों से स्त्री को छेदता रहे, बात-बात पर बिगडे । पुरुष मन का हो तो स्त्री उसके साथ उपवास करके भी प्रसन्न रहेगी ।

रमा ने विनोद के भाव से कहा—तो मैं तुम्हारे मन का हूँ ?

जालपा ने प्रेम-पूर्ण भाव से कहा—मेरी जो आशा थी, उससे तुम कहीं बढ़कर निकले । मेरी तीन सहेलियाँ है । एक का भी पति ऐसा नहीं । एक एम० ए० है, पर सदा रोगी । दूसरा विद्वान भी है और धनी भी; पर वेंश्यागामी । तीसरा घर घुस्सू है और बिलकुल निखट्टू ।

रमा का हृदय गद्‌गद् हो उठा । ऐसी प्रेम की मूर्ति और दया की देवी के साथ उसने कितना बड़ा विश्वासघात किया । इतना दुराव रखने पर भी जब इसे मुझसे इतना प्रेम है, तो मैं अगर निष्कपट होकर रहता तो मेरा जीवन कितना आनन्दमय होता !

(१६)

प्रातःकाल रमा ने रतन के पास अपना आदमी भेजा । खत मे लिखा, मुझे बड़ा खेद है कि कल जालपा ने आपके साथ ऐसा व्यवहार किया, जो उसे न करना चाहिए था । मेरा विचार यह कदापि न था कि रुपये आपको लौटा दूँ, मैंने सराफ़ को ताकीद करने के लिए उससे रुपये ले लिये थे । कंगन दो-चार रोज में अवश्य मिल जायेंगे । आप रुपये भेज दें । उस थैली मे दो सौ रुपये मेरे भी थे । वह भी भेजिएगा । अपने सम्मान की रक्षा करते हुए जितनी विनम्रता उससे हो सकती थी, उसमे कोई कसर नहीं रखी । जब तक आदमी लौटकर न आया, वह बड़ी व्यग्रता से उसकी राह देखता रहा । कभी सोचता कहीं बहाना कर दे, या घर पर मिले ही नहीं, या दो-चार दिन के बाद देने का वादा करे । सारा दारोमदार रतन के रुपये पर था । अगर रतन ने साफ जवाब दे दिया, तो फिर सर्वनाश ! उसकी कल्पना से ही रमा के प्राण सूखे जा रहे थे । आखिर नौ बजे आदमी लौटा । रतन ने दो सौ रुपये तो दिए थे, मगर खत का कोई जवाब न दिया था ।

रमा ने निराश आँखों से आकाश की ओर देखा। सोचने लगा, रतन ने खत का जवाब क्यो नहीं दिया ? मामूली शिष्टाचार भी नहीं जानती ? कितनी मक्कार औरत है ! रात को ऐसा मालूम होता था कि साधुता और सज्जनता की प्रतिमा ही है, पर दिल मे यह गुबार भरा हुआ था ! शेष रुपयों की चिन्ता मे रमा को नहाने-खाने की भी सुध न रही।

कहार अन्दर गया तो जालपा ने पूछा—तुम्हें कुछ काम-धन्धे की भी खबर है कि मटरगश्ती ही करते रहोगे ? दस बज रहे हैं, और अभी तक तरकारी-भाजी का कहीं पता नहीं।

कहार ने त्योरियाँ बदल कर कहा—तो का चार हाथ-गोड़ कर लेई, कामे से तो गया रहिन ! बाबू मेम साहब के तीर रुपये लेबै का भेजिन रहा।

जालपा—कौन मेम साहब ?

कहार—जौन मोटर पर चढ़कर आवत हैं।

जालपा—तो लाये रुपये ?

कहार—लाये काहे नहीं। पिरथी के छोर पर तो रहत हैं, दौरत-दौरत गोड़ पिराय लाग !

जालपा—अच्छा, चटपट जाकर तरकारी लाओ।

कहार तो उधर गया। रमा रुपये लिए हुए अन्दर पहुँचा तो जालपा ने कहा—तुमने अपने रुपये रतन के पास से मँगवा लिये न ? अब तो मुझसे न लोगे।

रमा ने उदासीन भाव से कहा—मत दो।

जालपा—मैंने तो कह दिया था, रुपये दे दूँगी। तुम्हें इतनी जल्दी माँगने की क्यों सूझी। समझी होगी, इन्हे मेरा इतना विश्वास भी नहीं।

रमा ने हताश होकर कहा—मैंने रुपये नही माँगे थे। केवल इतना लिख दिया था कि थैली मे दो सौ रुपये ज्यादा हैं। उसने आप ही आप भेज दिए।

जालपा ने हँसकर कहा—मेरे रुपये बडे भाग्यवान हैं, दिखाऊँ ?

चुन-चुनकर नए रुपये रखे हैं। सब इसी साल के है, चमाचम ! देखो तो आँखे ठण्डी हो जाये !

इतने मे किसी ने आवाज दी—बाबूजी, सेठ ने रुपये के लिए भेजा है।

दयानाथ स्नान करने अन्दर आ रहे थे, सेठ के प्यादे को देखकर पूछा—कौन सेठ, कैसे रुपये ? मेरे यहाँ किसी के रुपये नहीं आते ?

प्यादा—छोटे बाबू ने कुछ माल लिया था। साल भर हो गये, अभी तक एक पैसा नहीं दिया। सेठजी ने कहा है, बात बिगड़ने पर रुपये दिए तो क्या दिए। आज कुछ जरूर दिलवा दीजिए।

दयानाथ ने रमा को पुकारा; और बोले—देखो, किस सेठ का आदमी आया है ? उसका कुछ हिसाब बाकी है, साफ क्यों नहीं कर देते ? कितना बाकी है इसका ?

रमा कुछ जवाब न देने पाया था, कि प्यादा बोल उठा—पूरे सात सौ है बाबूजी !

दयानाथ की आँखे फैलकर मस्तक तक पहुँच गयीं—सात सौ ! क्यों जी, यह तो सात सौ कहता है !

रमा ने टालने के इरादे से कहा—मुझे ठीक मालूम नह

प्यादा—मालूम क्यों नहीं, पुरजा मेरे पास है। तब कुछ दिया ही नहीं, कम कहाँ से हो गये ?

रमा ने प्यादा को पुकार कर कहा—चलो तुम दुकान पर, मैं खुद आता हूँ।

प्यादा—हम बिना कुछ लिये न जायेंगे साहब। आप यो ही टाल दिया करते हैं, और बाते हमको सुननी पडती है।

रमा सारी दुनिया के सामने जलील बन सकता था, किन्तु पिता के सामने जलील बनना उसके लिए मौत से कम न था। जिस आदमी ने अपने जीवन मे कभी हराम का पैसा न छुआ हो, जिसे किसी से उधार लेकर भोजन करने के बदले भूखों रहना मंजूर हो, उसका लडका इतना बेशर्म और बेगैरत हो ! रमा, पिता की आत्मा का यह घोर अपमान न कता था। वह उनपर यह बात प्रकट न होने देना चाहता था कि

उनका पुत्र उनके नाम को बट्टा लगा रहा है। कर्कश स्वर मे प्यादे से बोला—तुम अभी यहीं खडे हो ? हट जाओ; नही धक्के देकर निकाल दिये जाओगे।

प्यादा—हमारे रुपये दिलाइये,हम चले जावे। हमे क्या आपके द्वार पर मिठाई मिलती है ?

रमा०—तुम न जाओगे ? जाओ लाला से कह देना नालिश कर दे।

दयानाथ ने डाँटकर कहा—क्यो बेशर्मी की बात करते हो जी ! जब गिरह मे रुपये न थे, तो चीज लाये ही क्यो ? और जब लाये, तो जैसे बने वैसे रुपये अदा करो। कह दिया, नालिश कर दो। नालिश कर देगा तो कितनी आबरू रह जायेगी। इसका भी कुछ ख्याल है ? सारे शहर मे उँगलियाँ उठेगी; मगर तुम्हे इसकी क्या परवा ! तुमको यह सूझी क्या, कि एकबारगी इतनी बड़ी गठरी सिर पर लाद ली ? कोई शादी-ब्याह का अवसर होता, तो एक बात भी थी और वह औरत कैसी है जो पति को बेहूदगी करते देखती है और मना नहीं करती। आखिर तुमने क्या सोचकर कर्ज लिया ? तुम्हारी ऐसी कुछ बडी आमदनी भी तो नहीं है।

रमा को पिता की यह डाँट बहुत बुरी लग रही थी। उसके विचार मे पिता को इस विषय मे कुछ बोलने का अधिकार ही न था। निःसंकोच होकर बोला—आप नाहक इतना बिगड़ रहे हैं, आपसे रुपये माँगने जाऊँ तो कहिएगा। मैं अपने वेतन से थोडा-थोड़ा करके सब चुका दूँगा।

अपने मन मे उसने कहा—वह तो अपनी ही करनी का फल है। आप ही के पाप का प्रायश्चित्त कर रहा हूँ।

प्यादे ने पिता और पुत्र मे वाद-विवाद होते देखा तो चुपके से अपनी राह ली। मुंशी जी भुनभुनाते हुए स्नान करने चले गये। रमा ऊपर गया तो उसके मुख पर लज्जा-ग्लानि की फटकार बरस रही थी। जिस अपमान से बचने के लिए डाल-डाल, पात-पात, भागता फिरता था; वह हो ही गया। इस अपमान के सामने सरकारी रुपयों की फिक्र भी गायब हो गयी। कर्ज लेने वाले बला के हिम्मती होते हैं। साधारण

बुद्धि वाला ऐसी परिस्थितियों मे पड़कर घबड़ा उठता है; पर बैठकबाजों के माथे पर बल नहीं पड़ता। रमा अभी इस कला मे दक्ष नहीं हुआ था। इस समय यमदूत उसके प्राण हरने आता तो वह आँखों से दौड़ कर उसका स्वागत करता। कैसे क्या होगा यह शब्द उसके एक-एक रोम से निकल रहा था। कैसे क्या होगा! इससे अधिक वह इस समस्या की और व्याख्या न कर सकता था। यही प्रश्न एक सर्वव्यापी पिशाच की भाँति उसे घूरता दिखायी देता था, कैसे क्या होगा! ये ही शब्द अगणित बगूलों की भाँति चारों ओर उठते नजर आते थे। वह इस पर विचार न कर सकता था। केवल उसकी ओर से आँखे न बन्द कर सकता था। उसका चित्त इतना खिन्न हुआ, कि आँखे सजल हो गयीं।

जालपा ने कहा—तुमने तो कहा था, इसके अब थोड़े ही रुपये बाकी हैं।

रमा ने सिर झुकाकर कहा—यह दुष्ट झूठ बोल रहा था, मैंने रुपये दिये हैं।

जालपा—दिये होते, तो कोई रुपयों का तकाजा क्यों करता? जब तुम्हारी आमदनी इतनी कम थी तो गहने लिये ही क्यो? मैंने तो कभी जिद न की थी और मान लो, मैं दो-चार बार कहती भी, तो तुम्हे समझ-बूझकर काम करना चाहिए था। अपने साथ मुझे भी चार बाते सुनवा दीं। आदमी सारी दुनिया से परदा रखता है; लेकिन अपनी स्त्री से परदा नहीं रखता। तुम मुझसे परदा रखते हो। अगर मैं जानती, तुम्हारी आमदनी इतनी थोडी है, तो मुझे क्या ऐसा शौक चर्राया था कि मुहल्ले भर की स्त्रियो को ताँगे पर बैठा-बैठाकर सैर कराने ले जाती। अधिक-से अधिक यही तो होता कि कभी-कभी चित्त दुखी हो जाता; पर यह तकाजे न सहने पडते। कहीं नालिश कर दे तो सात सौ का एक हजार हो जाये। मैं क्या जानती थी कि तुम मुझसे यह छल कर रहे हो; कोई वेश्या तो थी नहीं कि तुम्हे नोच-खसोटकर अपना घर भरना मेरा काम होता। मैं तो भले-बुरे दोनों ही की साथिन हूँ। भले मे तुम चाहे मेरी बात मत पूछो, लेकिन बुरे मे तो मैं तुम्हारे गले पड़ूँगी ही।

रमा के मुख से एक शब्द न निकला। दफ्तर का समय आ गया

था। भोजन करने का अवकाश न था। रमा ने कपडे पहने, और दफ्तर चला। रामेश्वरी ने कहा—क्या बिना भोजन किये ही चले जाओगे?

रमा ने उसका कोई जवाब न दिया, और घर से निकला ही चाहता था, कि जालपा झपटकर आई और उसे पुकारकर बोली—मेरे पास जो दो सौ रुपये हैं. उन्हे क्यों नही सराफ़ को दे देते?

रमा ने चलते वक्त जान-बूझकर जालपा से रुपये न माँगे थे। वह जानता था, जालपा माँगते ही दे देगी· लेकिन इतनी बातें सुनने के बाद अब रुपये के लिये उसके सामने हाथ फैलाते उसे संकोच ही नहीं, भय होता था। कहीं वह फिर न उपदेश देने बैठ जाय—इसकी अपेक्षा आनेवाली विपत्तियाँ कहीं हलकी थीं! मगर जालपा ने पुकारा तो कुछ आशा बँधी। ठिठक गया और बोला—अच्छी बात है, लाओ दे दो।

वह बाहर के कमरे मे बैठ गया। जालपा दौडकर ऊपर से रुपये लायी और गिन-गिनकर उसकी थैली मे डाल दिये। उसने समझा था, रमा रुपये पाकर फूला न समायेगा; पर उसकी आशा पूरी न हुई। अभी तीन सौ रुपये की फिक्र करनी थी। वह कहाँ से आयेंगे? भूखा आदमी इच्छा-पूर्ण भोजन चाहता है, दो चार फुलकों से उसकी तुष्टि नहीं होती।

सड़क पर आकर रमा ने एक ताँगा किया और उसे जार्ज-टाउन चलने को कहा—शायद रतन में भेट हो जाये। वह चाहे तो तीन सौ रुपये का बडी आसानी से प्रबन्ध कर सकती है। रास्ते मे वह सोचता जाता था, आज बिलकुल संकोच न करूँगा। जरा देर मे जार्ज-टाउन आ गया। रतन का बगला भी आया। वह बरामदे मे बैठी थी। रमा ने उसे देखकर हाथ उठाया। उसने भी हाथ उठाया। पर वहाँ उसका सारा संयम टूट गया। वह बंगले मे न जा सका, ताँगा सामने से निकल गया। रतन बुलाती तो वह चला जाता। वह बरामदे मे न बैठी होती तब भी शायद वह अन्दर जाता; पर उसे सामने बैठे देखकर वह सकोच मे डूब गया।

जब ताँगा गवर्नमेंट हाउस के पास पहुँचा, तो रमा ने चौंककर कहा—चलो चुगी के दफ्तर। ताँगेवाले ने घोडा फेर दिया।

ग्यारह बजते-बजते रमा दफ्तर पहुँचा। उसका चेहरा उतरा हुआ

था। छाती धड़क रही थी। बड़े बाबू ने जरूर पूछा होगा। जाते ही बुलायेंगे। दफ्तर मे जरा भी रियायत नहीं करते। तांगे से उतरते ही उसने पहले अपने कमरे की तरफ निगाह डाली। देखा, कई आदमी खड़े उसकी राह देख रहे हैं, वह उधर न जाकर रमेश बाबू की ओर गया।

रमेश बाबू ने पूछा—तुम अब तक कहाँ थे जी, खजाची साहब तुम्हे खोजते फिरते हैं। चपरासी मिला था? रमा ने अटकते हुए कहा—मैं घर पर न था। जरा वकील साहब की तरफ चला गया था। एक बड़ी मुसीबत मे फँस गया हूँ।

रमेश—कैसी मुसीबत, घर पर तो कुशल है?

रमा—जी हाँ, घर पर तो कुशल है। कल शाम को यहाँ का काम बहुत था, मैं उसमे ऐसा फँसा कि वक्त की कुछ खबर ही नहीं। जब काम खत्म करके उठा तो खजाची साहब चले गये थे। मेरे पास आमदनी के आठ सौ रुपये थे। सोचने लगा कहाँ रखूँ। मेरे कमरे मे तो कोई सन्दूक है नहीं। यह निश्चय किया साथ लेता जाऊँ। पाँच सौ रुपये नगद थे, वह तो मैंने थैली मे रखे, तीन सौ रुपये के नोट जेब मे रख लिये और घर चला। चौक मे दो एक चीजे लेनी थी। उधर से होता हुआ घर पहुँचा तो नोट गायब थे।

रमेश बाबू ने आँखे फाड़कर कहा—तीन सौ के नोट गायब हो गये?

रमा—जी हाँ, कोट के ऊपर की जेब मे थे। किसी ने निकाल लिये।

रमेश—और तुमको मार कर थैली नही छीन ली?

रमा—क्या बताऊँ बाबूजी, तब से चित्त की जो दशा हो रही है, वह बयान नहीं कर सकता। तब से अब तक यानी इसी फिक्र मे दौड़ रहा हूँ। कोई बन्दोबस्त न हो सका।

रमेश—अपने पिता से तो तुमने कहा ही न होगा?

रमा०—उनका स्वभाव तो आप जानते है। रुपये तो न देते, उलटी डाँट सुनाते।

रमेश—तो फिर क्या फिक्र करोगे?

रमा०—आज शाम तक कोई-न-कोई फिक्र करूँगा ही।

रमेश ने कठोर भाव धारण करके कहा—तो फिर करो न! इतनी

लापरवाही तुमसे कैसे हुई, यह मेरी समझ में नहीं आता। मेरी जेब से तो आज तक एक पैसा न गिरा। आँखे बन्द करके रास्ते मे चलते हो या नशे मे थे! मुझे तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं आता। सच बतला दो, कहीं अनाप-शनाप तो नहीं खर्च कर डाले? उस दिन तुमने मुझसे क्यों रुपये माँगे थे।

रमा का चेहरा पीला पड गया। कहीं कलई न खुल जाये। बात बनाकर बोला—क्या सरकारी रुपये खर्च कर डालूँगा? उस दिन तो आपसे रुपये इसलिए माँगे थे कि बाबूजी को एक जरूरत आ पड़ी थी। घर मे रुपये न थे। आपका खत उन्हें सुना दिया था।। बहुत हँसे, दूसरा इतजाम कर लिया। इन नोटों के गायब होने का तो मुझे खुद ही आश्चर्य है।

रमेश—तुम्हे अपने पिता जी से माँगते सकोच होता हो तो मैं खत लिखकर मँगवा लूँ।

रमा ने कानों पर हाथ रखकर कहा—नहीं बाबूजी, ईश्वर के लिए ऐसा न कीजिएगा। ऐसी ही इच्छा हो, तो मुझे गोली मार दीजिए।

रमेश ने एक क्षण तक सोचकर कहा—तुम्हे विश्वास है, शाम तक रुपये मिल जायेगे?

रमा०—हाँ, आशा तो है।

रमेश—तो इस थैली के रुपये जमा कर दो, मगर देखो भाई, साफ-साफ कहे देता हूँ, अगर कल दस बजे रुपये न लाये तो मेरा दोष नहीं। कायदा तो यही कहता है कि मैं इसी वक्त तुम्हे पुलिस के हवाले करूँ; मगर तुम अभी लड़के हो, इसलिये क्षमा करता हूँ। वरना तुम्हे मालूम है, मैं सरकारी काम मे किसी प्रकार की मुरौवत नही करता? अगर तुम्हारी जगह मेरा भाई या बेटा होता तो, मैं उसके साथ भी यह सलूक करता, बल्कि शायद इससे सख्त। तुम्हारे साथ तो फिर भी बड़ी नर्मी कर रहा हूँ। मेरे पास रुपये होते तो तुम्हें दे देता, लेकिन मेरी हालत तुम जानते हो। हाँ, किसी का कर्ज नहीं रखता। न किसी को कर्ज देता हूँ न किसी से लेता हूँ। कल रुपये न पाये तो बुरा होगा। मेरी दोस्ती भी तुम्हे पुलिस के पंजे से न बचा सकेगी। मेरी दोस्ती ने आज अपना हक अदा कर

दिया, वरना इस वक्त तुम्हारे हाथों मे हथकड़ियाँ होतीं।

हथकड़ियाँ! यह शब्द तीर की भाँति रमा की छाती में लगा। वह सिर से पाँव तक काँप उठा। उस विपत्ति की कल्पना करके उसकी आँखें डबडबा आयीं। वह धीरे-धीरे सिर झुकाये सजा पाये हुए कैदी की भाँति जाकर अपनी कुरसी पर बैठ गया; पर वह भयकर शब्द बीच-बीच मे उसके हृदय मे गूँज जाता था।

आकाश पर काली घटाएँ छायी थीं। सूर्य का कहीं पता न था, क्या वह भी उस घटा रूपी कारागार मे बंद है। क्या उसके हाथों मे भी हथकड़ियाँ हैं?

(२०)

रमा शाम को दफ्तर से चलने लगा, तो रमेश बाबू दौड़े हुए आये और कल रुपये लाने की ताकीद की। रमा मन मे झुंझला उठा। आप बड़े ईमानदार की दुम बने है? ढोंगिया कहीं का! अगर अपनी जरूरत आ पड़े तो दूसरों के तलवे सहलाते फिरेंगे; पर मेरा काम है तो आप आदर्शवादी बन बैठे। यह सब दिखाने के दाँत हैं, मरते समय इसके प्राण भी जल्दी नहीं निकलेंगे!

कुछ दूर चलकर उसने सोचा, एक बार फिर रतन के पास चलूँ। और ऐसा कोई न था जिससे रुपये मिलने की आशा होती। वह जब उसके बँगले पर पहुँचा, तो वह अपने बँगले मे गोल चबूतरे पर बैठी हुई थी। उसके पास ही एक गुजराती जौहरी बैठा सन्दूक से सुन्दर आभूषण निकालकर दिखा रहा था। रमा को देखकर वह बहुत खुश हुई। आइए बाबू साहब, देखिए, सेठजी कैसी अच्छी-अच्छी चीजें लाये हैं। देखिए, हार कितना सुन्दर है, इसके दाम बारह सौ रुपये बताते हैं।

रमा ने हार को हाथ मे लेकर देखा, और कहा—हाँ चीज तो अच्छी मालूम होती है।

रतन—दाम बहुत कहते है।

जौहरी—बाई जी, ऐसा अगर कोई दो हजार मे ला दे तो जो जुरमाना कहिए, दूँ। बारह सौ मेरी लागत बैठ गयी है।

रमा ने मुस्कराकर कहा—ऐसा न कहिए सेठजी, जुरमाना देना पड़ जायेगा।

जौहरी—बाबूसाहब, हार तो सौ रुपये मे भी आ जायेगा, और बिल्कुल ऐसा ही, बल्कि चमक-दमक मे इससे भी बढ़कर; मगर माल परखाना चाहिए। मैंने खुद ही आपसे मोल-तोल की बात नहीं की, मोल-तोल अनाडियो से किया जाता है। आपसे क्या मोल-तोल। हम लोग निरे रोजगारी नही है बाबू साहब, आदमी का मिजाज देखते है। श्रीमती जी ने क्या अमीराना मिज़ाज दिखाया है कि वाह!

रतन ने हार को लुब्ध नेत्रों से देखकर कहा—कुछ तो कम कीजिए सेठजी, आपने तो जैसे कसम खा ली।

जौहरी—कभी नाम न लीजिए हुजूर! यह चीज आपकी भेंट है।

रतन—अच्छा, अब एक बात बतला दीजिए। कम-से-कम आप क्या लेंगे?

जौहरी ने कुछ क्षुब्ध होकर कहा—बारह सौ रुपये और बारह कौडियाँ होंगी, हुजूर। आपसे कसम खाकर कहता हूँ, इसी शहर मे पन्द्रह सौ की बेचूँगा, और आपसे कह जाऊँगा, किसने लिया।

यह कहते हुए जौहरी ने हार रखने का केस निकाला। रतन को विश्वास हो गया, यह कुछ कम न करेगा। बालको की भाँति अधीर होकर बोली—आप तो ऐसा समेटे लेते है कि हार को नजर लग जायेगी!

जौहरी—क्या करूँ हुजूर! जब ऐसे दरबार मे चीज की कदर नहीं होती, तो दुःख होता ही है।

रतन ने कमरे मे जाकर रमा को बुलाया और बोली—आप समझते है यह कुछ नही उतरेगा?

रमा०—मेरी समझ मे तो चीज एक हजार से ज्यादा की नहीं है।

रतन—उँह, होगा। मेरे पास तो छः सौ रुपये है। आप चार सौ रुपये का प्रबन्ध कर दे तो ले लूँ। वह इसी गाड़ी से काशी जा रहा है। उधार न मानेगा। वकील साहब किसी जलसे मे गये है; नौ-दस बजे के पहले न लौटेंगे। मै आपको कल रुपये लौटा दूँगी।

रमा ने बड़े संकोच के साथ कहा—विश्वास मानिये, मैं बिलकुल

खाली हाथ हूँ। मैं तो आपसे रुपये माँगने आया था। मुझे भी सख्त जरूरत है। यह रुपये मुझे दे दीजिए, मैं आपके लिए कोई अच्छा-सा हार यहीं से ला दूँगा। मुझे विश्वास है, ऐसा हार सात-आठ सौ में मिल जायगा।

रतन—चलिए, मैं आपकी बातों में नहीं आती। छः महीने में एक कंगन तो बनवा न सके, अब हार क्या लायेंगे? मैं यहाँ कई दूकानें देख चुकी हूँ। ऐसी चीज शायद ही कहीं निकले और निकले भी तो उसके ड्योढ़े दाम देने पड़ेंगे।

रमा०—तो इसे कल क्यों न बुलाइए, इसे सौदा बेचने की गरज होगी तो आज जरूर ठहरेगा।

रतन—अच्छा कहिए, देखिए क्या कहता है।

दोनों कमरे के बाहर निकले। रमा ने जौहरी से कहा—तुम कल आठ बजे क्यों नहीं आते?

जौहरी—नहीं हुजूर, कल काशी में दो-चार बड़े रईसों से मिलना है। आज न जाने से बड़ी हानि हो जायेगी।

रतन—मेरे पास इस वक्त छः सौ रुपये हैं, आप हार दे जाइए; बाकी के रुपये काशी से लौटकर ले जाइयेगा।

जौहरी—रुपये का तो कोई हर्ज न था, महीने-दो-महीने में लेता; लेकिन हम परदेशी लोगों का क्या ठिकाना, आज यहाँ हैं, कल वहाँ हैं, कौन जाने यहाँ फिर कब आना हो? आप इस वक्त एक हजार दे दें, दो सौ फिर दे दीजिगा।

रमा०—तो सौदा न होगा।

जौहरी—इसका अख्तियार आपको है, मगर इतना कहे देता हूँ कि ऐसा सौदा फिर न पाइयेगा।

रमा०—रुपये होंगे तो माल बहुत मिल जायेगा।

जौहरी—कभी-कभी दाम रहने पर भी अच्छा माल नहीं मिलता।

यह कहकर जौहरी ने फिर हार को केस में रखा और इस तरह सन्दूक को समेटने लगा, मानो वह एक क्षण भी न रुकेगा।

रतन का रोआँ-रोआँ कान बना हुआ था, मानों कोई कैदी अपनी

किस्मत का फैसला सुनने को खड़ा हो। उसके हृदय की सारी ममता, ममता का सारा अनुराग, अनुराग की सारी अधीरता, उत्कंठा और चेष्टा उसी हार पर केन्द्रित हो रही थी, मानों उसके प्राण उसी हार के दानों मे जा छिपे थे, मानों उसके जन्म-जन्मान्तरों की संचित अभिलाषा-सी हार पर मँडरा रही थी। जौहरी को सन्दूक बन्द करते देखकर वह जल-विहीन मछली की भाँति तड़पने लगी। कभी वह सन्दूक खोलती; कभी वह दराज खोलती, पर रुपये कही न मिले।

सहसा मोटर की आवाज सुनकर रतन ने फाटक की ओर देखा। वकील साहब चले आ रहे थे। वकील साहब ने मोटर बरामदे के सामने रोक दी और चबूतरे के नीचे उतरकर कहा—आप तो नौ बजे आने को कह गये थे?

वकील—वहाँ कोरम ही पूरा न हुआ, बैठकर क्या करता? कोई दिल से तो काम करना नहीं चाहता, सब मुफ्त मे नाम कमाना चाहते है। यह क्या कोई जौहरी है?

जौहरी ने उठकर सलाम किया।

वकील साहब रतन से बोले—क्यों, तुमने कोई चीज पसन्द की?

रतन—हाँ, एक हार पसन्द किया है, बारह सौ रुपये माँगता है।

वकील—बस! और कोई चीज पसन्द करो। तुम्हारे पास सिर की कोई अच्छी चीज नहीं है।

रतन—इस वक्त मैं यही हार लूँगी। आजकल सिर की चीजें कौन पहनता है।

वकील—लेकर रख लो, पास रहेगी, तो कभी पहन भी लोगी; नहीं तो कभी दूसरों को पहने देख लिया, तो कहोगी मेरे पास होता, तो मैं भी पहनती।

वकील साहब को रतन से पति का-सा प्रेम नहीं, पिता का-सा स्नेह था। जैसे कोई स्नेही पिता मेले मे लड़कों से पूछ-पूछकर खिलौने लेता है, वह भी रतन से पूछ-पूछकर खिलौने लेते थे, उसके कहने-भर की देरी थी। उनके पास उसे प्रसन्न करने के लिए धन के सिवा और चीज ही क्या थी? उन्हें अपने जीवन मे एक आधार की जरूरत थी—सदेह

आधार की, जिसके सहारे वह इस जीर्ण दशा में भी जीवन-संग्राम में खड़े रह सके, जैसे किसी उपासक को प्रतिमा की जरूरत होती है। बिना प्रतिमा के वह किस पर फूल चढ़ाये, किसे गंगा जल से नहलाये, किसे स्वादिष्ट चीजों का भोग लगाये। इसी भाँति वकील साहब को भी पत्नी की जरूरत थी। रतन उनके लिए सदेह कल्पना मात्र थी जिससे उनकी आत्मिक पिपासा शान्त होती थी। कदाचित् रतन के बिना उनका जीवन उतना ही सूना होता, जितना आँखों के बिना मुख।

रतन ने केस से हार निकालकर वकील साहब को दिखाया और बोली—इसके बारह सौ रुपये माँगते हैं।

वकील साहब की निगाह में रुपये का मूल्य उसकी आनन्ददायिनी शक्ति थी। अगर हार रतन को पसन्द है, तो उन्हें इसकी परवा न थी कि इसके क्या दाम पड़ेंगे। उन्होंने चेक निकालकर जौहरी की तरफ देखा और पूछा—सच-सच बोलो, कितना लिखूँ? अगर फर्क पड़ा तो तुम जानो।

जौहरी ने हार को उलट-पलटकर देखा और हिचकते हुए बोला—साढ़े ग्यारह सौ कर दीजिये। वकील साहब ने चेक लिखकर उसको दिया, और वह सलाम करके चलता हुआ।

रतन का मुख इस समय वसन्त की प्राकृतिक शोभा की भाँति विकसित था। ऐसा गर्व, ऐसा उल्लास उसके मुख पर कभी भी न दिखायी दिया था। मानों उसे इस समय संसार की सम्पत्ति मिल गयी है।

हार को गले में लटकाये वह अन्दर चली गयी। वकील साहब के आचार-विचार में नयी और पुरानी प्रथाओं का विचित्र मेल था। भोजन वह अभी तक किसी ब्राह्मण के हाथ का भी न खाते थे। आज रतन उनके लिए अच्छी-अच्छी चीजें बनाने लगी। अपनी कृतज्ञता को वह कैसे जाहिर करे?

रमा कुछ देर तक तो बैठा वकील साहब का योरप-गौरव-गान सुनता रहा, अन्त में निराश होकर चल दिया।

(२१)

अगर इस समय किसी को संसार में सबसे दुःखी, जीवन से निराश,

चिन्ताग्नि में जलते हुए प्राणी की मूर्ति देखनी हो तो उस युवक को देखे, जो साइकिल पर बैठा हुआ अलफ्रेड-पार्क के सामने चला जा रहा है। इस वक्त अगर कोई काला साँप नजर आये, तो वह दोनों हाथ फैलाकर उसका स्वागत करेगा और उसके विष को सुधा की तरह पियेगा। उसकी रक्षा सुधा से नहीं; अब विष ही से हो सकती है। मौत ही अब उसकी चिन्ताओं का अन्त कर सकती है। लेकिन क्या मौत उसे बदनामी से भी बचा सकती है? सवेरा होते ही यह बात घर-घर फैल जायेगी—सरकारी रुपया खा गया और जब पकड़ा गया, तब आत्म-हत्या कर ली। कुल मे कलंक लगाकर मरने के बाद भी अपनी हँसी कराके चिन्ताओं से मुक्त हुआ तो क्या, लेकिन दूसरा उपाय ही क्या है?

अगर वह इस समय जालपा से सारी स्थिति कह सुनाये, तो वह उसके साथ अवश्य सहानुभूति दिखायेगी। जालपा को चाहे कितना ही दुःख हो, पर अपने गहने निकालकर देने मे एक क्षण का भी विलम्ब न करेगी। गहनों को गिरवी रखकर वह सरकारी रुपये अदा कर सकता है। उसे अपना परदा खोलना पड़ेगा। इसके सिवा और कोई उपाय नहीं।

मन मे निश्चय करके रमा घर की ओर चला। पर उसकी चाल मे वह तेजी न थी जो मानसिक स्फूर्ति का लक्षण है।

लेकिन घर पहुँचकर उसने सोचा—जब यही करना है तो जल्दी क्या है, जब चाहूँगा, माँग लूंगा। कुछ देर गपशप करता रहा, फिर खाना खाकर लेटा। सहसा उसके जी मे आया क्यों न चुपके से कोई चीज उठा ले जाऊँ? कुल-मर्यादा की रक्षा करने के लिए एक बार उसने ऐसा किया भी था। उसी उपाय से क्या वह प्राणों की रक्षा नहीं कर सकता? अपनी जबान से तो शायद वह कभी अपनी विपत्ति का हाल न कह सकेगा। इसी प्रकार आगे-पीछे मे पड़े हुए सबेरा हो जायगा। और तब उसे कुछ कहने का अवसर ही न मिलेगा।

मगर उसे फिर शंका हुई, कहीं जालपा की आँख न खुल जाये? फिर तो उसके लिए त्रिवेणी के सिवा और कोई स्थान ही न रह जायेगा। जो कुछ भी हो, एक बार तो यह उद्योग करना ही पडेगा। उसने धीरे से

जालपा का हाथ अपनी छाती पर से हटाया, और नीचे खड़ा हो गया। उसे ऐसा खयाल हुआ कि जालपा हाथ हटाते ही चौंकी और मालूम हुआ कि यह भ्रम-मात्र था। उसे अब जालपा के सलूके की जेब से तालियो का गुच्छा निकालना था। देर करने का अवसर न था। नींद मे भी निम्न चेतना अपना काम करती रहती है। बालक कितना ही गाफिल सोया हो, माता के चारपाई से उठते ही जाग पड़ता है; लेकिन जब चाबी निकालने के लिए झुका, तो उसे जान पडा की जालपा मुसकरा रही है। उसने झट हाथ खींच लिया और लैम्प के क्षीण प्रकाश मे जालपा के मुख की ओर देखा, जो कोई सुखद स्वप्न देख रही थी। हाँ, इस सरला के साथ मैं ऐसा विश्वासघात करूँ! जिसके लिए मैं अपने प्राणों को भेंट कर सकता हूँ उसी के साथ यह कपट? जालपा का निष्कपट स्नेह-पूर्ण हृदय मानों उसके मुख-मंडल पर अंकित हो रहा था। आह! जिस समय इसे ज्ञात होगा, गहने फिर चोरी हो गये, इसकी क्या दशा होगी? पछाड़ खायेगी, सिर के बाल नोचेगी। वह किन आँखों से उसका वह क्लेश देखेगा। उसने सोचा—मैंने इसे आराम ही कौन-सा पहुँचाया है? किसी दूसरे से विवाह होता, तो अब तक वह रत्नों से लद जाती। दुर्भाग्यवश इस घर मे आयी, जहाँ कोई सुख नहीं। उलटे और रोना पड़ा।

रमा फिर चारपाई पर लेट रहा। उसी वक्त जालपा की आँखें खुल गयीं। उसके मुख की ओर देखकर बोली—तुम कहाँ गये थे? बड़ा अच्छा सपना देख रही थी। बड़ा बाग है, और हम-तुम दोनों उसमे टहल रहे हैं। इतने में न जाने तुम कहाँ चले जाते हो और एक साधु आकर मेरे सामने खड़ा हो जाता है। बिल्कुल देवताओं का-सा उसका स्वरूप है। वह मुझसे कहता है—बेटी, तुझे वर देने आया हूँ! माँग, क्या माँगती है? मैं तुम्हे इधर-उधर खोज रही हूँ कि तुमसे पूछूं, क्या माँगूं! और तुम कहीं दिखायी नहीं देते। मैं सारा बाग छान आयी, पेड़ों पर झाँककर देखा, तुम न जाने कहाँ चले गये हो। इतने मे नींद खुल गयी, वरदान न माँगने पाई!

रमा ने मुसकराते हुए कहा—क्या वरदान माँगती?

'माँगती जो जी मे आता, तुम्हें क्यों बता दूँ ?'

'नहीं बताओ, शायद तुम बहुत-सा धन माँगतीं।'

'धन को तुम बहुत बड़ी चीज समझते होगे। मैं तो कुछ नहीं समझती।'

'हाँ, मैं तो समझता हूँ। निर्धन रहकर जीना मरने से भी बदतर है। मैं अगर किसी देवता को पकड़ पाऊँ, तो बिना काफी रुपये लिये न मानूं। मैं सोने की दीवार नहीं खड़ा करना चाहता, न राकफेलर और कारनेगी बनने की मेरी इच्छा है; मैं केवल इतना धन चाहता हूँ कि जरूरत की मामूली चीजों के लिए तरसना न पडे। बस, कोई देवता मुझे पाँच लाख दे दे, तो मैं फिर उससे कुछ न माँगूगा। हमारे ही गरीब मुल्क में ऐसे कितने ही रईस, सेठ, ताल्लुकेदार है जो पाँच लाख एक साल मे खर्च करते है। बल्कि कितनो ही का तो माहवार खर्च पाँच लाख होगा। मैं तो इसमे सात जीवन काटने को तैयार हूँ; मगर मुझे कोई इतना भी नहीं देता। तुम क्या माँगतीं ? अच्छे-अच्छे गहने ?'

जालपा ने त्योरियाँ चढ़ाकर कहा—क्यों चिढ़ाते हो मुझे, क्या मैं गहनों पर और स्त्रियों से ज्यादा जान देती हूँ ? मैंने तो तुमसे कभी आग्रह नहीं किया। तुम्हे जरूरत हो तो, आज उन्हें उठा ले जाओ, मैं खुशी से दे दूँगी।

रमा ने मुसकरा कर कहा—तो फिर बतलाती क्यों नहीं ?

जालपा—मैं यही माँगती, कि मेरा स्वामी सदा मुझसे प्रेम करता रहे, उसका मन कभी मुझसे न फिरे।

रमा ने हँसकर कहा—क्या तुम्हे इसकी भी शंका है।

'तुम देवता भी होते, तो शंका होती, तुम तो आदमी हो। मुझे तो ऐसी कोई स्त्री न मिली जिसने अपनी पति की निष्ठुरता का दुखड़ा न रोया हो। साल-दो-साल तो वह खूब प्रेम करते हैं; फिर न जाने क्यों उन्हें स्त्री से अरुचि-सी हो जाती है। मन चंचल होने लगता है। औरत के लिए इससे बड़ी विपत्ति नहीं। उस विपत्ति से बचने के सिवा मैं और क्या वरदान माँगती ?—यह कहते हुए जालपा ने पति के गले मे बाहे डाल दीं और प्रणय-सचित नेत्रों से देखती हुई बोली—सच बताना, तुम अब

भी मुझे वैसे ही चाहते हो जैसे पहले चाहते थे ? देखो, सच कहना, बोलो।

रमा ने जालपा के गले से चिमटकर कहा—उससे कहीं अधिक, लाख गुना !

जालपा ने हँसकर कहा—झूठ ! बिल्कुल झूठ ! सोलहों आना झूठ !

रमा०—यह तुम्हारी जबरदस्ती है। आखिर ऐसा तुम्हें कैसे जान पड़ा ?

जालपा—आँखों से देखती हूँ, और कैसे जान पड़ा ? तुमने मेरे पास बैठने की कसम खा ली है। देखो, तुम गुम सुम रहते हो। मुझसे प्रेम होता तो मुझपर विश्वास भी होता। बिना विश्वास के प्रेम हो ही कैसे सकता है ? जिससे तुम अपनी बुरी-से-बुरी बात न कह सको, उस तुमसे प्रेम नहीं कर सकते। हाँ, उसके साथ विहार कर सकते हो, उसी तरह जैसे कोई वेश्या के पास जाता है। वेश्या के पास लोग आनन्द उठाने ही जाते हैं, कोई उससे मन की बात कहने नहीं जाता। हमारी भी वही दशा है। बोलो, है या नहीं ? आँखें क्यों छिपाते हो ? क्या मैं देखती नहीं कि तुम बाहर से घबड़ाये हुए आते हो ? बातें करते समय देखती हूँ, तुम्हारा मन किसी और तरफ रहता है। भोजन मे भी देखती हूँ, तुम्हें कोई आनन्द नहीं आता। दाल गाढ़ी है या पतली, शाक कम है या ज्यादा, चावल मे कमी है या पक गये हैं, इस तरफ तुम्हारी निगाह नहीं जाती। बेगार की तरह भोजन करते हो और जल्दी से भागते हो। मैं यह सब क्या नहीं देखती ? मुझे देखना न चाहिए ! मैं विलासिनी हूँ, इस रूप मे तुम मुझे देखते हो। मेरा काम है—विहार करना, विलास करना, आनन्द करना। मुझे तुम्हारी चिन्ताओं से मतलब ? मगर ईश्वर ने वैसा हृदय नहीं दिया। क्या करूँ। मैं समझती हूँ जब मुझे जीवन ही व्यतीत करना है, जब मैं केवल तुम्हारे मनोरंजन की ही वस्तु हूँ, तो क्यों अपनी जान विपत्ति मे डालूं ?

जालपा से रमा ने कभी दिल खोलकर बात न की थी। वह इतनी विचारशील है, उसने अनुमान ही न किया था। वह उसे वास्तव में रमणी ही समझता था। अन्य पुरुषों की भाँति वह भी पत्नी को इसी रूप मे देखता था। वह उसके यौवन पर मुग्ध था। उसकी आत्मा का स्वरूप

देखने की चेष्टा कभी न की। शायद वह समझता था, इसमे आत्मा है ही नहीं। अगर यह रूप-लावण्य की राशि न होती, तो कदाचित् वह उससे बोलना भी पसन्द न करता। उसका सारा आकर्षण, उसकी सारी आसक्ति केवल उसके रूह पर थी। वह समझता था, जालपा इसी मे प्रसन्न है। अपनी चिन्ताओं के बोझ से वह उसे दबाना नहीं चाहता था, पर आज उसे ज्ञात हुआ जालपा उतनी ही चिन्तनशील है, जितना वह खुद था। इस वक्त उसे अपनी मनोव्यथा कह डालने का बहुत ही अच्छा अवसर मिला था पर हाय संकोच! इसने फिर उसकी जबान बन्द कर दी। जो बाते वह इतने दिनों तक छिपाये रहा, वह अब कैसे कहे? क्या ऐसा करना जालपा के आरोपित आक्षेपों को स्वीकार करना न होगा? हाँ, उसकी आँखों से आज भ्रम का परदा उठ गया; उसे ज्ञात हुआ कि विलास पर प्रेम का निर्माण करने की चेष्टा करना उसका अज्ञान था।

रमा इन्हीं विचारों मे पडा-पड़ा सो गया। उस समय आधी रात के ऊपर गुजर गयी थी। सोया तो इसी सबब से था कि बहुत सवेरे उठ जाऊँगा, पर नीद खुली तो कमरे मे धूप की किरणे आ आकर जगा रही थीं। वह चटपट उठा और बिना मुँह हाथ धोये कपडे पहनकर जाने को तैयार हो गया। वह रमेश बाबू के पास जाना चाहता था। आज उनसे यह कथा कहनी पडेगी। स्थिति का पूरा ज्ञान हो जाने पर कुछ-न-कुछ सहायता करने पर तैयार हो जायेंगे।

जालपा उस समय भोजन बनाने की तैयारी कर रही थी। रमा को इस भाँति जाते देखकर प्रश्न-सूचक नेत्रों से देखा। रमा के चेहरे पर चिन्ता, भय, चंचलता और हिंसा मानों बैठी घूर रही थीं। एक क्षण के लिए वह बेसुध-सी हो गयी। एक हाथ मे छुरी और दूसरे मे एक करेला लिए हुए वह द्वार की ओर ताकती रहीं। यह बात क्या है, उसे कुछ बताते क्यों नहीं? वह और कुछ न कर सके, हमदर्दी तो कर ही सकती है। उसके जी मे आया, पुकारकर पूछूँ क्या बात है। उठकर द्वार तक आयी भी, पर रमा सड़क पर दूर निकल गया था। उसने देखा, वह बड़ी तेजी से चला जा रहा है, जैसे सनक गया हो। न दाहिनी ओर ताकता है, न बायीं ओर। केवल सिर झुकाये, पथिकों से टकराता, पैर गाड़ियों

की परवा न करता हुआ भागा चला जा रहा था। आखिर वह लौटकर फिर तरकारी काटने लगी; पर उसका मन उसी ओर लगा हुआ था। क्यों मुझसे इतना छिपाते हैं।

रमा रमेश के घर पहुँचा तो आठ बज गये थे। बाबू साहब चौकी पर बैठे सन्ध्या कर रहे थे। इन्हे देखकर इशारे से बैठने को कहा। कोई आध घण्टे मे सन्ध्या समाप्त हुई। बोले—क्या अभी मुँह-हाथ भी नहीं धोया? यही लीचड़पन मुझे नापसन्द है। तुम कुछ करो या न करो, बदन की सफाई तो करते रहो। क्या हुआ, रुपये का कुछ प्रबन्ध हुआ?

रमा०—इसी फिक्र मे तो आपके पास आया हूँ।

रमेश—तुम भी अजीब आदमी हो, अपने बाप से कहते हुए तुम्हे क्यों शर्म आती है? यही न होगा, तुम्हे ताने देंगे; लेकिन इस संकट से तो छूट जाओगे। उनसे सारी बाते साफ़-साफ़ कह दो। ऐसी दुर्घटनाएँ अक्सर हो जाया करती हैं। इसमें डर की क्या बात है। नहीं कहो, मैं चलकर कह दूँ।

रमा०—उनसे कहना होता, तो अब तक कभी कह चुका होता। क्या आप कुछ बन्दोबस्त नहीं कर सकते?

रमेश०—कर क्यो नहीं सकता; पर करना नहीं चाहता। ऐसे आदमी के साथ मुझे कोई हमदर्दी नहीं हो सकती। तुम जो बात मुझसे कह सकते हो, क्या उनसे नहीं कह सकते? मेरी सलाह मानो। उनसे जाकर कह दो। अगर वह रुपया न दे, तब मेरे पास आना।

रमा को अब और कुछ कहने का साहस न हुआ। लोग इतनी घनिष्ठता होने पर भी इतने कठोर हो सकते हैं। वह यहाँ से उठा; पर उसे कुछ सुझाई न देता था। चौबैया मे आकाश से गिरते हुए जल-बिन्दुओं की जो दशा होती है, वही इस समय रमा की हुई। दस कदम तेजी से आगे चलता, तो फिर सोचकर रुक जाता और दस-पाँच कदम पीछे लौट जाता। कभी इस गली मे घुस जाता; कभी उस गली मे।

सहसा उसे एक बात सूझी। क्यों न जालपा को एक पत्र लिखकर अपनी सारी कठिनाइयाँ कह सुनाऊँ? मुँह से तो वह कुछ कह न सकता था; पर कलम से लिखने में उसे कोई मुश्किल मालूम नहीं होती थी।

पत्र लिखकर जालपा को दे दूँगा, और बाहर के कमरे मे आ बैठूंगा। इससे सरल और क्या हो सकता है ? वह भागा हुआ घर आया, तुरन्त यह पत्र लिखा—

'प्रिये, क्या कहूँ, किस विपत्ति मे फँसा हुआ हूँ। अगर एक घण्टे के अन्दर तीन सौ रुपये का प्रबन्ध न हो गया, तो हाथों मे हथकड़ियाँ पड जायेंगी। मैंने बहुत कोशिश की, किसी से उधार ले लूं; किन्तु कहीं न मिल सके। अगर तुम अपने दो एक जेवर दे दो, तो मैं गिरवी रखकर काम चला लूं। ज्योंही रुपये हाथ मे आ जायेंगे, छुडा दूँगा। अगर मजबूरी न आ पडती, तो तुम्हे कष्ट न देता। ईश्वर के लिए रुष्ट न होना। मैं बहुत जल्द छुड़ा दूँगा .'

अभी यह पत्र समाप्त न हुआ था कि रमेश बाबू मुस्कराते हुए आकर बैठ गये और बोले—कहा उनसे तुमने ?

रमा ने सिर झुकाकर कहा—अभी तो मौका नही मिला।

रमेश०—तो क्या दो-चार दिन मे मौका मिलेगा ? मैं डरता हूँ कि कहीं आज तुम यों ही खाली हाथ न चले जाओ। नहीं तो गजब ही हो जाये !

रमा०—जब उनसे माँगने का निश्चय कर लिया तो अब क्या चिन्ता ?

रमेश—आज मौका मिले तो जरा रतन के पास चले जाना। उस दिन मैंने कितना जोर देकर कहा था; लेकिन मालूम होता है, तुम भूल गए ?

रमा०—भूल तो नहीं गया; लेकिन उससे कहते शर्म आती है।

रमेश०—अपने बाप से कहते शर्म आती है, रतन से कहते भी शर्म आती है ? अगर अपने लोगों मे यह सकोच न होता, तो आज हमारी यह दशा क्यों होती ?

रमेश बाबू चले गये, तो रमा ने पत्र उठाकर जेब मे डाला और उसे जालपा को देने का निश्चय करके घर मे गया। जालपा आज किसी महिला के घर जाने को तैयार थी। थोड़ी देर हुई, बुलावा आया था। उसने अपनी सबसे सुन्दर साड़ी पहनी थी। हाथों मे जड़ाऊ कंगन शोभा

दे रहे थे, गले में चन्द्रहार। आईना सामने रखे हुए कानों में झूमक पहन रही थी। रमा को देखकर बोली—आज सबेरे-सबेरे कहाँ चले गये थे? हाथ-मुँह तक न धोया। दिन-भर तो बाहर रहते ही हो, शाम-सवेरे तो घर पर रहा करो। तुम नहीं रहते तो घर सूना-सूना लगता है। मैं अभी सोच रही थी, मुझे मैके जाना पड़े, तो जाऊँ या न जाऊँ? मेरा जी तो वहाँ बिल्कुल न लगे।

रमा०—तुम तो कहीं जाने को तैयार बैठी हो।

जालपा—सेठानी जी ने बुला भेजा है, दोपहर तक चली आऊँगी। रमा की दशा इस समय उस शिकारी की-सी थी, जो हिरनी को अपने शावकों के साथ किलोल करते देखकर तनी हुई बन्दूक कंधे पर रख लेता है, और वात्सल्य और प्रेम की क्रीड़ा देखने मे तल्लीन हो जाता है।

उसे अपनी ओर टकटकी लगाये देखकर जालपा ने मुसकराकर कहा—देखो, मुझे नजर न लगा देना। मै तुम्हारी आँखों से बहुत डरती हूँ।

रमा एक ही उड़ान मे वास्तविक संसार से कल्पना और कवित्व के संसार मे जा पहुँचा। ऐसे अवसर पर जब जालपा का रोम-रोम आनन्द से नाच रहा है, क्या वह अपना पत्र देकर उसकी सुखद कल्पनाओं को दलित कर देगा? वह कौन हृदयहीन व्याध है, जो चहकती हुई चिड़िया की गर्दन पर छुरी चला देगा? वह कौन अरसिक आदमी है, जो किसी प्रभात-कुसुम को तोड़कर पैरों से कुचल डालेगा? रमा इतना हृदयहीन, इतना अरसिक नहीं है। वह जालपा पर इतना बड़ा आघात नहीं कर सकता। उसके सिर पर कैसी ही विपत्ति क्यों न पड़ जाय, उसकी कितनी ही बदनामी हो, उसका जीवन ही क्यों न कुचल दिया जाय; पर वह इतना निष्ठुर नहीं हो सकता। उसने अनुरक्त होकर कहा—नजर तो न लगाऊँगा, हाँ हृदय से लगा लूगा। इसी एक वाक्य से उसकी सारी चिन्तायें, सारी बाधाएँ विसर्जित हो गयीं। स्नेह-संकोच की वेदी पर उसने अपने को भेंट कर दिया। इस अपमान के सामने जीवन के और सारे क्लेश तुच्छ थे। इस समय उसकी दशा उस बालक की-सी थी, जो फोड़े पर नश्तर की क्षणिक पीड़ा न सहकर उसके फूटने,

नासूर, पड़ने, वर्षों खाट पर पड़े रहने और कदाचित् प्राणान्त हो जाने के भय को भी भूल जाता है।

जालपा नीचे जाने लगी तो रमा ने कातर होकर उसे गले से लगा लिया और इस तरह भेंच-भेंचकर उससे आलिंगन करने लगा, मानों यह सौभाग्य उसे फिर न मिलेगा। कौन जानता है, यही उसका अन्तिम आलिंगन हो। उसके कर-पाश मानों रेशम के सहस्रो तारों से संगठित होकर जालपा से चिमट गये थे। मानों कोई मरणासन्न कृपण अपने कोष की कुञ्जी को मुट्ठी में बन्द किये हो, और प्रतिक्षण मुट्ठी कठोर पड़ती जाती हो। क्या मुट्ठी को बलपूर्वक खोल देने से ही उसके प्राण न निकल जायँगे?

सहसा जालपा बोली—मुझे कुछ रुपये तो दे दो, शायद वहाँ कुछ जरूरत पड़े।

रमा ने चौंककर कहा—रुपये! रुपये तो इस वक्त नहीं है।

जालपा—हैं, है, मुझसे बहाना कर रहे हो। बस, मुझे दो रुपये दे दो, और ज्यादा नहीं चाहती।

यह कहकर उसने रमा के जेब मे हाथ डाल दिया, और कुछ पैसे के साथ वह पत्र भी निकाल लिया।

रमा ने हाथ बढाकर पत्र को जालपा के हाथ से छीनने की चेष्टा करते हुए कहा—कागज मुझे दे दो, सरकारी कागज है।

जालपा—किसका खत है, बता दो।

जालपा ने तह किए पुरजे को खोलकर कहा—यह सरकारी कागज है? झूठे कहीं के। तुम्हारा ही लिखा

रमा०—दे दो, क्यों परेशान करती हो?

रमा ने फिर कागज छीनना चाहा; पर जालपा ने हाथ पीछे फेरकर कहा—मैं बिना पढे न दूँगी। कह दिया, ज्यादा जिद करोगे, तो फाड़ डालूंगी।

रमा०—अच्छा फाड़ डालो।

जालपा—तब मैं जरूर पढूँगी।

उसने दो कदम पीछे हटकर फिर खत को खोला, और पढ़ने लगी।

रमा ने फिर उसके हाथ से कागज छीनने की कोशिश नहीं की। उसे जान पड़ा, आसमान फट पडा है, मानों कोई भयंकर जंतु उसे निगलने के लिए बढ़ा चला आता है। वह धड़-धड़ करता हुआ ऊपर से उतरा और घर के बाहर निकल गया। कहाँ अपना मुंह छिपा ले? कहाँ छिप जाय कि कोई उसे देख न सके। उसकी दशा वही थी जो किसी नंगे आदमी की होती है। वह सिर से पाँव तक कपडे पहने हुए भी नगा था। आह! सारा परदा खुल गया! उसकी सारी कपट-लीला खुल गयी! जिन बातों को छिपाने को उसने इतने दिनों चेष्टा की, जिनको गुप्त रखने के लिए उसने कौन-कौन सी कठिनाइयाँ झेलीं, उन सबों ने आज मानों उसके पर कालिख पोत दी। वह अपनी आँखों से नहीं देख सकता। जालपा की सिसकियाँ, पिता की झिड़कियाँ, पड़ोसियों की कानाफूसियाँ सुनने की अपेक्षा मर जाना कहीं आसान होगा। जब वह संसार मे न रहेगा, तो उसे इसकी क्या परवा होगी, कोई उसे क्या कह रहा है। हाय! केवल तीन सौ रुपयों के लिए उसका सर्वनाश हुआ जा रहा है; लेकिन ईश्वर की इच्छा है तो वह क्या कर सकता है। प्रियजनों की नजरों से गिरकर जिये तो क्या जिये।

जालपा उसे कितना नीच, कितना कपटी, कितना धूर्त, कितना गपोड़िया समझ रही होगी। क्या वह अपना मुंह उसे दिखा सकता है। क्या ससार मे कोई ऐसी जगह नहीं है, जहाँ वह नये जीवन का सूत्रपात कर सके, जहाँ वह संसार से अलग-अलग सबसे मुंह मोडकर अपना जीवन काट सके, जहाँ वह इस तरह छिप जाय, कि पुलिस उसका पता न पा सके? गंगा की गोद के सिवा ऐसी जगह और कहाँ थी? अगर जीवित रहा तो महीने-दो-महीने मे अवश्य पकड़ लिया जायगा। उस समय क्या दशा होगी—वह हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ पहने अदालत मे खडा होगा! सिपाहियों का एक दल उसके ऊपर सवार होगा। सारे शहर के लोग उसका तमाशा देखने जायेंगे। जालपा भी जायगी। रतन भी जायगी। उसके पिता, सम्बन्धी, मित्र अपने पराये सभी भिन्न-भिन्न भावों से उसकी दुर्दशा का तमाशा देखेंगे। नहीं, वह अपनी मिट्टी यों न खराब करेगा, न करेगा। इससे कहीं अच्छा है, डूब मरे।

मगर फिर खयाल आया कि जालपा किसकी होकर रहेगी ? हाय, मैं अपने साथ उसे भी ले डूबा ! बाबूजी और अम्माँजी तो रो-धोकर सब्र कर लेंगे ; पर उसकी रक्षा कौन करेगा ? क्या वह छिपकर नहीं रह सकता ? क्या शहर से दूर किसी छोटे-से गाँव मे वह अज्ञातवास नही कर सकता ? संभव है, कभी जालपा को उसपर दया आये, उसके अपराधों को क्षमा कर दे । सम्भव है, उसके पास धन भी हो जाय; पर यह असम्भव है कि वह उसके सामने आँखे सीधी कर सके । न जाने इस समय उसकी क्या दशा होगी ? शायद मेरे पत्र का आशय समझ गई हो । शायद परिस्थिति का उसे कुछ ज्ञान हो गया हो । शायद उसने अम्मा को मेरा पत्र दिखाया हो और घबराई हुई मुझे खोज रही हो । शायद पिताजी को बुलाने के लिए लडकों को भेजा गया हो । चारों तरफ़ मेरी तलाश हो रही होगी । कहीं कोई इधर भी न आता हो । कदाचित् मौत को देखकर भी वह इस समय इतना भयभीत न होता, जितना किसी परिचित को देखकर । आगे-पीछे चौकन्नी आँखों से ताकता हुआ, वह उस जलती हुई धूप मे चला जा रहा था—कुछ खबर न थी, किधर । सहसा रेल की सीटी सुनकर वह चौक पडा । अरे ! मैं इतनी दूर निकल आया ! रेलगाड़ी सामने खड़ी थी । उसे उस पर बैठ जाने की प्रबल इच्छा हुई, मानों उसमे बैठते ही वह सारी बाधाओं से मुक्त हो जायगा । मगर जेब मे रुपये न थे । उँगली मे अँगूठी पडी हुई थी । उसने कुलियों के जमादार को बुलाकर कहा—कहीं यह अँगूठी बिकवा सकते हो ? एक रुपया तुम्हे दूँगा । मुझे गाड़ी मे जाना है । रुपये लेकर घर से चला था, पर मालूम होता है, कहीं गिर गये । फिर लौटकर जाने मे गाड़ी न मिलेगी और बड़ा भारी नुकसान हो जायेगा ।

जमादार ने सिर से पाँव तक देखा, अँगूठी ली, और स्टेशन के अन्दर चला गया । रमा टिकट घर के सामने टहलने लगा । आँखे उसी ओर लगी हुई थीं । दस मिनट गुजर गये और जमादार का कही पता नही । अँगूठी लेकर कहीं गायब तो नहीं हो जायगा ? स्टेशन के अन्दर जाकर उसे खोजने लगा । एक कुली से पूछा । उसने पूछा—जमादार का नाम क्या है ? रमा ने जबान दाँतों से काट ली । नाम तो पूछा ही नहीं ।

बतलाये क्या ? इतने में गाडी ने सीटी दी, रमा अधीर हो उठा। समझ गया, जमादार ने चरका दिया। बिना टिकट लिये ही गाड़ी में जा बैठा। मन मे निश्चय कर लिया, साफ कह दूँगा मेरे पास टिकट नहीं है। अगर उतरना भी पडा, तो यहाँ से दस-पाँच कोस तो चला ही जाऊँगा।

गाड़ी चल दी, तो उस वक्त रमा को अपनी दशा पर रोना आ गया। हाय, न जाने उसे कभी लौटना नसीब भी हो या नहीं। फिर ये सुख के दिन कहाँ मिलेंगे ? यह दिन तो गये, हमेशा के लिये गये। इसी तरह सारी दुनिया से मुंह छिपाये, वह एक दिन मर जायगा। कोई उसकी लाश पर आँसू बहाने वाला भी न रहेगा। घर वाले भी रो-धोकर चुप हो रहेंगे। केवल थोड़े से संकोच के कारण उसकी यह दशा हुई। उसने शुरू ही से जालपा से अपनी सच्ची हालत कह दी होती, तो आज उसे मुंह मे कालिख लगाकर क्यों भागना पडता, मगर कहता कैसे, वह अपने को अभागिनी न समझने लगती। कुछ न सही; कुछ दिन तो उसने जालपा को सुखी रखा। उसकी लालसाओं की हत्या तो न होने दी। रमा के संतोष के लिए अब इतना ही काफी था।

अभी गड़ी को चले दस मिनट भी न बीते होंगे। गाड़ी का दरवाजा खुला, और टिकट बाबू अन्दर आये। रमा के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। एक क्षण मे वह उसके पास आ जायगा। इतने आदमियों के सामने उसे लज्जित होना पड़ेगा। उसका कलेजा धक-धक करने लगा। ज्यों-ज्यों टिकट बाबू उसके समीप आता था, उसकी नाड़ी की गति तीव्र होती जाती थी। आखिर बला सिर पर आ ही गयी। टिकट बाबू ने पूछा—आपका टिकट ?

रमा ने जरा सावधान होकर कहा—मेरा टिकट तो कुलियों के जमादार के पास ही रह गया। उसे टिकट लाने के लिये रुपये दिये थे। न जाने किधर निकल गया।

टिकट बाबू को यकीन न आया, बोला—मैं कुछ नहीं जानता। अगले स्टेशन पर उतरना होगा। आप कहाँ जा रहे हैं ?

रमा०—सफर तो बड़ी दूर का है; कलकत्ते तक जाना है।

टिकट बाबू—आगे के स्टेशन पर टिकट ले लीजियेगा।

रमा०—यही तो मुश्किल है। मेरे पास पच्चीस के नोट थे। खिडकी पर बडी भीड थी। मैंने नोट उस जमादार को टिकट लाने के लिए दिए; पर वह ऐसा गयाब हुआ कि लौटा ही नही। शायद आप उसे पहचानते है। लम्बा-लम्बा चेचकरू आदमी है।

टिकट बाबू—इस विषय मे आप लिखा-पढ़ी कर सकते हैं, मगर बिला टिकट के जा नहीं सकते।

रमा ने विनती के भाव से कहा—भाई साहब, आपसे क्या छिपाऊं। मेरे पास और रुपये नहीं हैं। आप जैसा मुनासिब समझें, करें।

टिकट बाबू—मुझे अफसोस है बाबू साहब, कायदे से मजबूर हूँ।

कमरे के सारे मुसाफिर आपस मे कानाफूसी करने लगे। तीसरा दरजा था, अधिकाश मजदूर बैठे हुए थे, जो मजूरी की टोह मे पूरब जा रहे थे। वे एक बाबू जाति के प्राणी को इस भाँति अपमानित होते देखकर आनन्द पा रहे थे। शायद टिकटबाबू ने रमा को धक्के देकर उतार दिया होता तो और भी खुश होते। रमा को जीवन मे कभी इतनी झेंप न हुई थी। चुपचाप सिर झुकाये खड़ा था। अभी तो जीवन की इस नयी यात्रा का आरम्भ हुआ है। न जाने आगे क्या-क्या विपत्तियाँ झेलनी पड़ेगी, किस-किस के हाथों धोखा खाना पडेगा। उसके जी मे आया—गाड़ी से कूद पड़ूँ, इस छीछालेदर से तो मर जाना ही अच्छा। उसकी आँखे भर आयी, उसने खिडकी से सिर बाहर निकाल लिया और रोने लगा।

सहसा एक बूढ़े आदमी ने, जो उसके पास ही बैठा हुआ था, पूछा —कलकत्ते मे कहाँ जाओगे बाबूजी?

रमा ने समझा यह गँवार मुझे बना रहा है, झुंझलाकर बोला—तुमसे मतलब, मैं कहीं जाऊँगा।

बूढे ने इस उपेक्षा पर कुछ ध्यान भी न दिया बोला—मैं भी वहीं चलूंगा। हमारा तुम्हारा साथ हो जाएगा। फिर धीरे से बोला—किराए के रुपये मुझसे ले लो, वहाँ दे देना।

अब रमा ने उसकी ओर ध्यान से देखा। कोई ६०-७० साल का बूढ़ा घुला हुआ आदमी था। मास तो क्या हड्डियाँ तक गल गयी थीं।

मूंछ और सिर के बाल मुडे हुए थे। एक छोटी-सी बकुची के सिवा उसके पास और कोई असबाब भी न था।

रमा को अपनी ओर ताकते देखकर वह फिर बोला—आप हवड़े ही उतरेंगे या और कही जायँगे ?

रमा ने एहसान के भार से दबकर कहा—बाबा आगे मैं उतर पड़ूँगा। रुपये का कोई बन्दोबस्त करके फिर आऊँगा।

बूढ़ा—तुम्हे कितने रुपये चाहिए, मैं भी तो वहीं चल रहा हूँ। जब चाहे दे देना। क्या मेरे दस-पॉच रुपये लेकर भाग जाओगे ? कहाँ घर है ?

रमा०—यहीं प्रयाग ही मे रहता हूँ।

बूढे ने भक्ति के भाव से कहा—धन्य है प्रयाग ! धन्य है ! मैं भी त्रिवेणी का स्नान करके आ रहा हूँ, सचमुच देवताओं की पुरी है। तो कै रुपये निकालूं ?

रमा ने सकुचाते हुए कहा—मैं चलते-ही-चलते रुपया न दे सकूंगा, यह समझ लो।

बूढ़े ने सरल भाव से कहा—अरे बाबूजी, मेरे दस-पाँच रुपये लेकर तुम भाग थोड़े ही जाओगे। मैंने तो देखा, प्रयाग के पण्डे यात्रियों को बिना लिखाये-पढ़ाये रुपये दे देते है। दस रुपये से तुम्हारा काम चल जायगा ?

रमा ने सिर झुकाकर कहा—हाँ, बहुत है।

टिकट बाबू को किराया देकर रमा सोचने लागा—यह बूढ़ा कितना सरल, कितना परोपकारी, कितना निष्कपट जीव है। जो लोग सभ्य कहलाते है, उसमे कितने आदमी ऐसे निकलेंगे, जो बिना जान-पहचान किसी यात्री को उबार लें। गाड़ी के और मुसाफिर भी बूढे को श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे।

रमा को बूढ़े की बातों से मालूम हुआ कि वह जाति का खटिक है, कलकत्ते में उसकी शाक-भाजी की दूकान है। रहने वाला तो बिहार का है, पर चालीस साल से कलकत्ते ही मे रोजगार कर रहा है। देवीदीन नाम है, बहुत दिनों से तीर्थयात्रा की इच्छा थी, बद्रीनाथ की यात्रा करके लौटा जा रहा है।

रमा ने आश्चर्य से पूछा—तुम बद्रीनाथ की यात्रा कर आये ? वहाँ तो पहाड़ों की बड़ी-बड़ी चढ़ाइयाँ हैं।

देवी०—भगवान् की दया होती है तो सब कुछ हो जाता है, बाबू जी ! उनकी दया चाहिए।

रमा—तुम्हारे बाल-बच्चे कलकत्ते मे होंगे।

देवीदीन ने रूखी हँसी हँसकर कहा—बाल-बच्चे तो सब भगवान् के घर गये। चार बेटे थे। दो का ब्याह हो गया था। सब चल दिये। मैं बैठा हुआ हूँ। मुझी से तो सब पैदा हुए थे। अपने बोये हुए बीज को किसान ही तो काटता है।

यह कहकर वह फिर हँसा। जरा देर बाद बोला—बुढ़िया अभी जीती है। देखें, हम दोनों मे पहले कौन चलता है। वह कहती है, पहले मैं जाऊँगी, मैं कहता हूँ पहले मैं जाऊँगा। देखो, किसकी टेक रहती है। बन पड़ा तो तुम्हे दिखलाऊँगा। अब भी गहने पहती है। सोने की बालियाँ और सोने की हँसली पहने दूकान पर बैठी रहती है। जब कहा कि चल तीर्थ कर आवें, तो बोली—तुम्हारे तीर्थ के लिए दूकान मिट्टी मे मिला दूँ ? यह है जिन्दगानी का हाल। आज मरे कल मरे; मगर दूकान न छोड़ेगी। न कोई आगे न कोई पीछे, न रोने वाला, न कोई हँसने वाला; मगर माया बनी हुई है। अज भी एक-न-एक गहना बनवाती ही रहती है। जाने कब उसका पेट भरेगा। सब घरों का यही हाल है। जहाँ देखो—हाय गहने ! गहने के पीछे जान दे दे; घर के आदमियों को भूखों मारे; घर की चीजें बेचे। और कहाँ तक कहूँ, अपनी आबरू तक बेच दे। छोटे-बड़े अमीर-गरीब सबको यही रोगा लगा हुआ है। कलकत्ते मे कहाँ काम करते हो भैया ?

रमा०—अभी तो जा रहा हूँ। देखूं कोई नौकरी-चाकरी मिलती है या नहीं ?

देवी०—तो फिर मेरे ही घर ठहरना। दो कोठरियाँ हैं, सामने दालान है, एक कोठरी ऊपर है। आज बेचूँ तो दस हजार मिलें। एक कोठरी तुम्हे दे दूँगा। जब कहीं काम मिल जाय तो अपना घर ले लेना। पचास साल हुए घर से भाग कर हबड़े गया था, तब से सुख भी देखे और दुःख

भी देखे। अब मना रहा हूँ, भगवान ले चलो। हां बुढ़िया को अमर कर दो, नहीं उसकी दूकान कौन लेगा, घर कौन लेगा और गहने कौन लेगा!

यह कहकर देवीदीन फिर हँसा। वह इतना हँसोड़, प्रसन्न-चित्त था कि रमा को आश्चर्य हो रहा था। बेबात की बात पर हँसता था। जिस बात पर और लोग रोते है उसपर उसे हँसी आती थी। किसी जवान को भी रमा ने यों हँसते न देखा था। इतनी ही देर मे उसने अपनी सारी जीवन-कथा कह सुनायी। कितने ही लतीफे याद थे। मालूम होता था, रमा से वर्षों की मुलाकात है। रमा को भी अपने विषय मे एक मनगढ़न्त कथा कहनी पडी।

देवीदीन—तो तुम भी घर से भाग आये हो? समझ गया। घर मे झगड़ा हुआ होगा। बहू कहती होगी—मेरे पास गहने नहीं, मेरा नसीब जल गया। सास-बहू मे पटती न होगी। उनका कलह सुन-सुन जी और खट्टा हो गया होगा।

रमा०—हाँ बाबा, बात यही है; तुम कैसे जान गये?

देवीदीन हँसकर बोला—यह बडा भारी मन्त्र है भैया। इसे तेली की खोपड़ी पर जगाया जाता है। अभी लड़के-बाले तो नहीं हैं न?

रमा०—नहीं अभी तो नहीं है।

देवी०—छोटे भाई भी होंगे?

रमा चकित होकर बोला—हाँ दादा, ठीक कहते हो। तुमने कैसे जाना?

देवीदीन फिर ठट्ठा मारकर बोला—यह सब मन्त्रों का खेल है। ससुराल धनी होगी, क्यों?

रमा०—हाँ, दादा, है तो।

देवी०—मगर हिम्मत न होगी।

रमा०—बहुत ठीक कहते हो दादा। बडे कम हिम्मती हैं। जब से विवाह हुआ, अपनी लड़की को तो बुलाया नही।

देवी०—समझ गया भैया, यही दुनिया का दस्तूर है। बेटे के लिए कहो चोरी करे, भीख मागें, बेटी के लिए घर मे कुछ है ही नहीं।

तीन दिन से रमा को नींद न आयी थी। दिन-भर रुपये के लिये

मारा-मारा फिरता, रात-भर चिन्ता मे पड़ा रहता। इस वक्त बातें करते-करते उसे नींद आ गयी। गरदन झुकाकर झपकी लेने लगा। देवीदीन ने तुरन्त अपनी गठरी खोली, उसमे से एक दरी निकाली, और तख्त पर बिछाकर बोला—तुम यहाँ आकर लेट रहो भैया, मैं तुम्हारी जगह पर बैठ जाता हूँ।

रमा लेट रहा। देवीदीन बार-बार उसे स्नेह-भरी आँखों से देखता था, मानो उसका पुत्र कहीं परदेश से लौटा हो।

(२२)

जब रमा कोठे से धम्-धम् नीचे उतर रहा था, उस वक्त जालपा को इसकी जरा भी शंका नहीं हुई कि वह घर से भागा जा रहा है। पत्र तो उसने पढ़ लिया था। जी ऐसा झुंझला रहा था कि चलकर रमा को खूब खरी-खरी सुनाऊँ। मुझसे यह छल-कपट! पर एक ही क्षण मे उसके भाव बदल गये। कहीं ऐसा तो नही हुआ, सरकारी रुपये खर्च कर डाले हों। यही बात है। रतन के रुपये सराफ़ को दिये होंगे। उस दिन रतन को देने के लिये शायद वे सरकारी रुपये उठा लाये थे। यह सोचकर उसे फिर क्रोध आया—यह मुझसे इतना परदा क्यों करते हैं। क्यों मुझसे बढ़-बढ़कर बातें करते थे? क्या मैं इतना भी नहीं जानती कि संसार मे अमीर-गरीब दोनों ही होते है? क्या सभी स्त्रियाँ गहनों से लदी रहती हैं? गहने न पहनना क्या कोई पाप है? जब और जरूरी कामों से रुपये बचते हैं, तो गहने भी बन जाते हैं। पेट और तन काटकर, चोरी या बेईमानी करके तो गहने नहीं पहने जाते! क्या उन्होंने मुझे ऐसी गयी-गुजरी समझ लिया?

उसने सोचा रमा अपने कमरे मे होगा, चलकर पूछूँ, कौन-कौन से गहने चाहते हैं। परिस्थिति की भयकरता का अनुमान करके क्रोध की जगह उसके मन मे भय का संचार हुआ। वह बड़ी तेजी से नीचे उतरी। उसे विश्वास था, वह नीचे बैठे हुए इन्तजार कर रहे होंगे। कमरे में आयी, तो उनका पता न था। साइकिल रखी हुई थी। तुरन्त दरवाजे से झाँका। सड़क पर भी पता न था। कहाँ चले गये? लड़के दोनों स्कूल गये थे, किसको भेजे कि जाकर उन्हे बुला लाये। उसके हृदय मे एक

अज्ञात संशय अंकुरित हुआ। फौरन ऊपर गयी; गले का हार और हाथ का कंगन उतार कर रूमाल मे बाँधा, फिर नीचे उतरी, सड़क पर आकर एक ताँगा किया, और कोचवान से बोली—चुङ्गी कचहरी चलो। वह पछता रही थी कि मैं इतनी देर बैठी क्यों रही। क्यों न गहने उतार कर तुरन्त दे दिये?

रास्ते मे वह दोनों तरफ बड़े ध्यान से देखती जाती थी। क्या इतनी जल्दी इतनी दूर निकल आये? शायद देर हो जाने के कारण वह भी आज ताँगे ही पर गये हैं, नहीं तो अब तक जरूर मिल गये होते। ताँगे वाले से बोली—क्यों जी, अभी तुमने किसी बाबूजी को ताँगे पर देखा?

ताँगेवाले ने कहा—हाँ माईजी, एक बाबू अभी तो इधर ही से गए हैं।

जालपा को कुछ ढाढ़स हुआ, रमा के पहुँचते-पहुँचते वह भी पहुँच जायगी। कोचवान से बार-बार घोड़ा तेज करने को कहती। जब वह दफ्तर पहुँची तो ग्यारह बज गये थे, कचहरी मे सैकड़ों आदमी इधर-उधर दौड रहे थे। किससे पूछे? न जाने वह कहाँ बैठते हैं।

सहसा एक चपरासी दिखलायी दिया। जालपा ने उसे बुलाकर कहा—सुनो जी, जरा बाबू रमानाथ को बुला लाओ।

चपरासी बोला—उन्हीं को बुलाने तो जा रहा हूँ। बड़े बाबू ने भेजा है। क्या आप उनके घर ही से आयी हैं?

जालपा—हाँ, मैं तो घर ही से आ रही हूँ। अभी दस मिनट हुए वह घर से चले हैं।

चपरासी—यहाँ तो नहीं आये।

जालपा बड़े असमंजस में पड़ी। वह यहाँ भी नहीं आये, रास्ते में भी नहीं मिले, तो फिर गए कहाँ? उसका दिल बाँसों उछलने लगा। आँखे भर-भर आने लगीं। वहाँ बडे बाबू के सिवा वह और किसी को न जानती थी। उनसे बोलने का अवसर कभी न पड़ा था, पर इस समय उसका संकोच गायब हो गया। भय के सामने मन के और सभी भाव दब जाते हैं। चपरासी से बोली—जरा बड़े बाबू से कह दो....नहीं चलो मैं ही चलती हूँ। बाबू से कुछ बात करनी है।

जालपा का ठाट-बाट और रंग-ढंग देख कर चपरासी रोब में आ गया ; उलटे पाँव बाबू के कमरे की ओर चला। जालपा उसके पीछे-पीछे हो ली। बड़े बाबू खबर पाते ही तुरन्त बाहर निकल आये।

जालपा ने कदम आगे बढाकर कहा—क्षमा कीजिये बाबू साहब, आपको कष्ट हुआ। वह पन्द्रह-बीस मिनट हुए घर से चले, क्या अभी तक यहाँ नहीं आये ?

रमेश०—अच्छा, आप मिसेज रमानाथ हैं ? अभी तो यहाँ नहीं आये। मगर दफ्तर के वक्त सैर-सपाटे करने की तो उसको आदत न थी।

जालपा ने चपरासी की ओर ताकते हुए कहा—मैं आपसे कुछ अर्ज करना चाहती हूँ।

रमेश०—तो चलो अन्दर बैठो, यहाँ कब तक खड़ी रहोगी ? मुझे आश्चर्य है कि वह गये कहाँ। कहीं बैठे शतरंज खेल रहे होंगे।

जालपा—नहीं बाबूजी, मुझे ऐसा भय हो रहा है कि वह कहीं और न चले गये हो। अभी दस मिनट हुए, उन्होंने मेरे नाम एक पुरजा लिखा था। (जेब मे टटोलकर) जी हाँ, देखिए, यह पुरजा मौजूद है। आप उन पर कृपा रखते हैं, आपसे तो कोई परदा नहीं ! उनके जिम्मे कुछ सरकारी रुपये तो नहीं निकलते ?

रमेश ने चकित होकर कहा—क्यों, उन्होंने तुमसे कुछ नहीं कहा ?

जालपा—कुछ नहीं। इस विषय मे कभी एक शब्द भी नहीं कहा।

रमेश०—कुछ समझ मे नहीं आता। आज उन्हें तीन सौ रुपये जमा करना है। परसों की आमदनी उन्होंने जमा नहीं की थी। नोट थे, जेब मे डालकर चल दिये। बाजार मे किसी ने नोट निकाल लिये। (मुसकराकर) किसी और देवी की पूजा तो नहीं करते ?

जालपा का मुख लज्जा से नत हो गया। बोली—अगर यह ऐब होता, तो आप भी उस इलजाम से न बचते। जेब से किसी ने निकाल लिए होगें। मारे शर्म के मुझसे न कहा होगा। मुझसे जरा भी कहा होता तो तुरन्त रुपये निकालकर दे देती, इसमे बात ही क्या थी।

रमेश बाबू ने अविश्वास के भाव से पूछा—क्या घर में रुपये है ?

जालपा ने निःशंक होकर कहा—तीन सौ चाहिये न; मैं अभी लिए आती हूँ।

रमेश०—अगर वह घर पर आ गये हों तो भेज देना।

जालपा आकर ताँगे पर बैठी और कोचवान से चौक चलने को कहा। उसने अपना हार बेच डालने का निश्चय कर लिया। यों उसकी कई सहेलियाँ थीं, जिनसे उसे रुपये मिल सकते थे। स्त्रियों मे बड़ा स्नेह होता है। पुरुषों की भाँति उनकी मित्रता केवल पान-पत्ते तक ही समाप्त नहीं हो जाती; मगर अवसर नहीं था। सराफे पहुँचकर मन मे वह सोचने लगी, किस दूकान पर जाऊँ। भय हो रहा था कि कहीं ठगी न जाऊँ। इस सिरे से उस सिरे तक कई चक्कर लगा आयी, किसी दूकान पर जाने की हिम्मत न पड़ी। उधर वक्त भी निकलता जाता था, आखिर एक दूकान पर एक बूढ़े सराफ को देखकर उसका संकोच कुछ कम हुआ। सराफ़ बड़ा घाघ था, जालपा की झिझक और हिचक देखकर समझ गया, अच्छा शिकार फँसा।

जालपा ने हार दिखाकर कहा—आप इसे ले सकते है?

सराफ़ ने हार इधर-उधर देखकर कहा—मुझे चार पैसे की गुंजाइश होगी, तो क्यों न ले लूँगा। माल चोखा नहीं है।

जालपा—तुम्हें लेना है, इसलिए माल चोखा नही है, बेचना होता तो चोखा होता। कितने मे लोगे?

सराफ—आप ही न कह दीजिए।

सराफ़ ने साढ़े तीन सौ दाम लगाये, और बढ़ते-बढ़ते चार सौ तक पहुँचा। जालपा को देर हो रही थी, रुपये लिए और चल खड़ी हुई। जिस हार को उसने इतने चाव से खरीदा था, जिसकी लालसा उसे बाल्यकाल ही मे उत्पन्न हो गयी थी, उसे आज आधे दामों मे बेचकर उसे जरा भी दुःख नहीं हुआ; बल्कि गर्वमय हर्ष का अनुभव हो रहा था। जिस वक्त रमा को मालूम होगा कि उसने रुपये दे दिये हैं, उन्हे कितना आनन्द होगा। कहीं दफ्तर पहुँच गये हों तो बड़ा मजा हो। सोचती हुई वह दफ्तर पहुँची। रमेश बाबू उसे देखते ही बोले—क्या हुआ, घर पर मिले?

जालपा—क्या अभी तक यहाँ नहीं आये? घर तो नहीं गये। यह कहते हुए उसने नोटों का पुलिन्दा रमेश बाबू की तरफ बढ़ा दिया।

रमेश बाबू नोटो को गिनकर बोले—ठीक है, मगर वह अब तक कहाँ है। अगर न आना था तो एक खत लिख देते। मैं तो बडे सकट में पडा हुआ था। तुम बडे वक्त से आ गयीं। इस वक्त तुम्हारी सूझ-बूझ देखकर जी खुश हो गया। यही सच्ची देवियों का धर्म है।

जालपा फिर ताँगे पर बैठकर घर चली, तो उसे मालूम हो रहा था मैं कुछ ऊँची हो गयी हूँ। शरीर मे एक विचित्र स्फूर्ति दौड़ रही थी। उसे विश्वास था, वह आकर चिन्तित बैठे होंगे। वह जाकर पहले उन्हे खूब आडे हाथों लेगी और खूब लज्जित करने के बाद यह हाल कहेगी। जब घर पहुँची तो रमानाथ का कहीं पता न था।

रामेश्वरी ने पूछा—कहाँ चली गयी थी इस धूप मे?

जालपा—ऐसे ही काम से चली गयी थी। आज उन्होंने भोजन भी नहीं किया, न जाने कहाँ चले गये।

रामेश्वरी—दफ्तर गये होंगे।

जालपा—नहीं दफ्तर नहीं गये। वहाँ से एक चपरासी पूछने आया था।

यह कहती हुई वह ऊपर चली गयी। बचे हुए रुपये सन्दूक मे रखे और पखा झलने लगी। मारे गरमी के देह फुकी जा रही थी; लेकिन कान द्वार की ओर लगे थे। अभी तक उसे इसकी जरा भी शंका न थी कि रमा ने विदेश की राह ली है।

चार बजे तक तो जालपा को विशेष चिन्ता न हुई, लेकिन ज्यों-ज्यों दिन ढलने लगा, उसकी चिन्ता बढने लगी। आखिर वह सबसे ऊँची छत पर चढ़ गयी, हालाकि उसके जीर्ण होने के कारण कोई ऊपर नहीं आता था, और वहाँ चारों तरफ नजर दौड़ायी, लेकिन रमा किसी तरफ से आता दिखायी न दिया।

जब सन्ध्या हो गयी, और रमा घर न आया तो जालपा का जी घबड़ाने लगा। कहाँ चले गये? वह दफ्तर से बिना घर आये कहीं बाहर न जाते थे। अगर किसी मित्र के घर होते, तो क्या अब तक न लौटते?

मालूम नहीं, जेब मे कुछ है भी या नहीं। बेचारे दिन भर से न मालूम कहाँ भटक रहे होंगे। वह फिर पछताने लगी कि उनका पत्र पढ़ते ही उसने क्यों न हार निकालकर दे दिया? क्यों दुविधे मे पड़ने गयी? बेचारे शर्म के मारे घर न आते होंगे। कहाँ जाय! किससे पूछे।

चिराग जल गये, तो उससे न रहा गया। सोचा, शायद रतन से कुछ पता चले। उसके बँगले पर गयी तो मालूम हुआ, आज तो वह इधर आये ही नही।

जालपा ने उन सभी पार्कों और मैदानों को छान डाला, जहाँ रमा के साथ यह बहुधा घूमने आया करती थी, और नौ बजते-बजते निराश लौट आयी। अब तक उसने अपने आँसुओं को रोका था; लेकिन घर मे कदम रखते ही जब उसको मालूम हो गया, कि अब तक वह नहीं आये, तो वह हताश होकर बैठ गयी। उसकी यह शंका अब दृढ़ हो गयी कि वह जरूर कहीं चले गये। फिर भी कुछ आशा थी कि शायद मेरे पीछे आये हों और चले गये हों। जाकर रामेश्वरी से पूछा—वह घर आये थे, अम्मा जी?

रामेश्वरी—यार-दोस्तों मे बैठे कहीं गप-शप कर रहे होंगे। घर तो सराय है। दस बजे घर से निकले थे, अभी तक पता नहीं।

जालपा—दफ्तर से घर आकर तब कहीं जाते थे। आज तो आये ही नहीं। कहिए तो गोपी बाबू को भेज दूं, जाकर देखें, कहाँ रह गये।

रामेश्वरी—लड़के इस वक्त कहाँ देखने जायेंगे। उनका क्या ठीक है। थोड़ी देर और देख लो, फिर खाना उठा कर रख देना। कोई कहाँ तक इन्जार करे!

जालपा ने इसका कुछ जवाब न दिया। दफ्तर की कोई बात उसने न कही। रामेश्वरी सुनकर घबड़ा जाती और उसी वक्त रोना-पीटना मच जाता। वह ऊपर जाकर लेट गयी, और अपने भाग पर रोने लगी। रह-रहकर चित्त विकल होने लगा, मानो कलेजे मे शूल उठ रहा हो। बार-बार सोचती, अगर रात-भर न आये, तो कल क्या करना होगा। जब तक कुछ पता न चले कि वह किधर गये, तब तक कोई जाय तो कहाँ जाय। आज उसके मन ने पहली बार स्वीकार किया कि यह सब उसी की

करनी का फल है। यह सच है कि उसने कभी आभूषणों के लिए आग्रह नहीं किया; लेकिन उसने कभी स्पष्ट रूप से मना भी तो नहीं किया। अगर गहने चोरी हो जाने के बाद वह इतनी अधीर न हो गई होती, तो आज यह दिन क्यों आता! मन की इस दुर्बल अवस्था मे जालपा अपने भार से अधिक भाग अपने ऊपर लेने लगी। वह जानती थी रमा रिश्वत लेता है, नोच-खसोटकर रुपये लाता है। फिर भी कभी उसने मना नहीं किया। उसने खुद क्यो अपनी कमली के बाहर पॉव फैलाया? क्यों उसे रोज सैर-सपाटे की सूझती थी? उपहारों को ले-लेकर वह क्यों फूली-समाती थी? इस जिम्मेदारी को भी इस वक्त जालपा अपने ही ऊपर ले रही थी? रमानाथ प्रेम के वश होकर, उसे प्रसन्न करने के लिए ही तो सब कुछ करते थे। युवकों का यही स्वभाव है। फिर उसने उनकी रक्षा के लिए क्या किया? क्यों उसे यह समझ न आयी कि आमदनी से ज्यादा खर्च करने का दड एक दिन भोगना पड़ेगा? अब उसे ऐसी कितनी ही बाते याद आ रही थीं; जिनमे रमा के मन की विकलता का परिचय पा जाना चाहिये था; पर उसने कभी उन बातों की ओर ध्यान न दिया।

जालपा इन्हीं चिन्ताओं मे डूबी हुई न जाने कब तक बैठी रही। जब चौकीदारों की सीटियों की आवाज उसके कानों मे आयी, तो वह नीचे जाकर रामेश्वरी से बोली— वह तो अब तक नहीं आये। आप चलकर भोजन कर लीजिए।

रामेश्वरी बैठी-बैठी झपकियॉ ले रही थी। चौककर बोली—कहाँ चले गये थे?

रामेश्वरी—अब तक नहीं आये! आधी रात हो गयी होगी। जाते वक्त तुमसे कुछ कहा भी नही?

जालपा—कुछ भी नही।

रामेश्वरी—तुमने तो कुछ नहीं कहा?

जालपा—मैं भला क्या कहती!

रामेश्वरी—तो मैं लालाजी को जगाऊँ?

जालपा—इस वक्त जगाकर क्या कीजिएगा? आप चलकर कुछ खा लीजिए न।

रामेश्वरी—मुझसे अब कुछ न खाया जायगा। ऐसा मनमौजी लडका है कि कुछ कहा न सुना न जाने कहाँ जाकर बैठ रहा! कम-से-कम कहला तो देता कि मैं इस वक्त न आऊँगा।

रामेश्वरी फिर लेट रही, मगर जालपा उसी तरह बैठी रही। यहाँ तक कि सारी रात गुजर गयी—पहाड़-सी रात जिसका एक-एक पल एक-एक वर्ष के समान कट रहा था।

(२३)

एक सप्ताह हो गया; रमा का कहीं पता नहीं। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ। बेचारे रमेश बाबू दिन मे कई-कई बार आकर पूछ जाते हैं। तरह-तरह के अनुमान हो रहे है। केवल इतना ही पता चलता है कि रमानाथ ग्यारह बजे रेलवे स्टेशन की ओर गये थे। मुंशी दयानाथ का ख्याल है, यद्यपि वे इसे स्पष्ट रूपसे प्रकट नहीं करते, कि रमा ने आत्म-हत्या कर ली। ऐसी दशा मे यही होता है। इसकी कई मिसालें उन्होंने खुद आँखों से देखी हैं। सास और ससुर दोनों ही जालपा पर सारा इलजाम थोप रहे हैं। साफ-साफ कह रहे है कि इसी के कारण उसके प्राण गये। उसने उसका नाको दम कर दिया। पूछो, थोड़ी-सी तो आपकी आमदनी फिर तुम्हे रोज सैर-सपाटे और दावत-तवाजे की क्यो सूझती थी। जालपा पर किसी को दया नहीं आती। कोई उसके आँसू नहीं पोंछता। केवल रमेश बाबू उसकी तत्परता और सद्बुद्धि की प्रशसा करते हैं, लेकिन मुंशी दयानाथ की आँखों मे उस कृत्य का कुछ मूल्य नहीं। आग लगाकर पानी लेकर दौडने से कोई निर्दोष नहीं हो जाता।

एक दिन दयानाथ वाचनालय से लौटे तो मुंह लटका हुआ था। एक तो उनकी सूरत यों ही मुहर्रमी थी, उसपर मुंह लटका लेते थे तो कोई बच्चा भी कह सकता था कि इनका मिजाज बिगडा हुआ है।

रामेश्वरी ने पूछा—क्या है, किसी से कहीं बहस हो गयी क्या?

दयानाथ—नहीं जी, इन तकाजों के मारे हैरान हो गया। जिधर जाओ उधर लोग नोचने दौडते है। न जाने कितना कर्ज ले रखा है। आज तो मैंने साफ कह दिया, मैं कुछ नहीं जानता। मैं किसी का देन-

दार नहीं हूँ। जाकर मेमसाहब से माँगो।

इसी वक्त जालपा आ पडी। ये शब्द उसके कानों मे पड़ गये। इन सात दिनों मे उसकी सूरत ऐसी बदल गयी थी कि पहचानी न जाती थी। रोते-रोते आँखे सूज आयी थीं। ससुर के ये कठोर शब्द सुनकर तिलमिला उठी, बोली—जी हाँ! आप उन्हे सीधे मेरे पास भेज दीजिए; मैं उन्हे या तो समझा दूँगी, या उनके दाम दूँगी।

दयानाथ ने तीखे होकर कहा—क्या दे दोगी तुम, हजारों का हिसाब है। सात सौ एक ही सराफ के हैं। अभी कै पैसे दिये हैं तुमने?

जालपा—उसके गहने मौजूद है, केवल दो-चार बार पहने गये हैं। वह आये तो मेरे पास भेज दीजिए। मैं उसकी चीजे वापस कर दूँगी। बहुत होगा, दस-पाँच रुपये तावान के ले लेगा!

यह कहती हुई ऊपर जा रही थी कि रतन आ गयी, और उसे गले से लगाती हुई बोली—क्या अब तक कुछ पता नहीं चला?

जालपा को इन शब्दों मे स्नेह और सहानुभूति का एक सागर उमडता हुआ जान पड़ा। यह गैर होकर इतनी चिन्तित है, और यह अपने ही सास और ससुर हाथ धोकर पीछे पडे हुए है। अपनों से गैर ही अच्छे। आँखों मे आँसू भरकर बोली—अभी तो कुछ पता नहीं चला, बहन।

रतन—यह बात क्या हुई, कुछ तुमसे तो कहा-सुनी नहीं हुई।

जालपा—जरा भी नहीं, कसम खाती हूँ। उन्होंने नोंटो के खो जाने का मुझसे जिक्र ही नही किया। अगर इशारा भी कर देते तो मैं रुपये दे देती। जब वह दोपहर तक नही आये और मैं उन्हे खोजती हुई दफ्तर गयी तब मुझे मालूम हुआ, कुछ नोट खो गये हैं। उसी वक्त जाकर मैंने रुपये जमा कर दिये।

रतन—मैं तो समझती हूँ किसी से आँखें लड़ गयीं। दस-पाँच दिन मे आप पता लग जायगा। यह बात सच न निकले, तो जो कहो, जुर्माना दूँ।

जालपा ने हकबकाकर पूछा—क्या तुमने कुछ सुना है?

रतन—नहीं, सुना तो नहीं, पर मेरा अनुमान है।

जालपा—नहीं रतन, मैं इस पर जरा भी विश्वास नहीं करती। यह बुराई उनमें नहीं है, और चाहे जितनी बुराइयाँ हों। मुझे उन पर संदेह

करने का कोई कारण नहीं है।

रतन ने हंसकर कहा—इस कला मे ये लोग निपुण होते हैं। तुम बेचारी क्या जानो।

जालपा दृढ़ता से बोली—अगर वह इस कला मे निपुण होते हैं, तो हम भी हृदय को परखने मे कम निपुण नहीं होतीं। मैं इसे नहीं मान सकती। अगर वह मेरे स्वामी थे, तो मैं उनकी स्वामिनी थी।

रतन—अच्छा चलो, कहीं घूमने चलती हो? चलो, तुम्हे कहीं घुमा लावें।

जालपा—नहीं, इस वक्त तो मुझे फ़ुरसत नहीं है। फिर घरवाले यों ही प्राण लेने पर तुले हुए है, तब तो जीता ही न छोड़ेंगे। किधर जाने का विचार है?

रतन—कहीं नहीं, जरा बाजार तक जाना था।

जालपा—क्या लेना है?

रतन—जौहरियों की दूकान पर दो-एक चीज देखूगी। बस, मैं तुम्हारे जैसा कंगन चाहती हूँ। बाबूजी ने भी कई महीने के बाद रुपये लौटा दिये। अब खुद तलाश करूँगी!

जालपा—मेरे कंगन में ऐसे कौन से रूप लगे हैं। बाजार मे उससे बहुत अच्छे मिल सकते है।

रतन—मैं तो उसी नमूने का चाहती हूँ।

जालपा—उस नमूने का बना-बनायां मुश्किल से मिलेगा, और बनवाने में महीनों का झंझट। अगर सब्र न आता हो तो मेरा ही कंगन ले लो मैं फिर बनवा लूंगी।

रतन ने उछलकर कहा—वाह, तुम अपना कंगन दे दो तो क्या कहना है! मूसलों ढोल बजाऊँ! छः सौ का था न?

जालपा—हाँ, था तो छः सौ का, मगर महीनों सराफ़ की दूकान की खाक छाननी पड़ी थी। जुडाई तो खुद बैठकर करवायी थी! तुम्हारी खातिर दे दूँगी।

जालपा ने कंगन निकालकर रतन के हाथों मे पहना दिये। रतन के मुख पर एक विचित्र गौरव का आभास हुआ, मानों किसी कंगाल को

पारस मिल गया हो। यही आत्मिक आनन्द की चरम सीमा है। कृतज्ञता से भरे हुए स्वर मे बोली—तुम जितना कहो, उतना देने को तैयार हूँ। तुम्हे दबाना नहीं चाहती। तुम्हारे लिए यही क्या कम है कि तुमने इसे मुझे दे दिया। मगर एक बात है। अभी मैं सब रुपये न दे सकूगी, अगर दो सौ रुपये फिर दे दूँ तो कुछ हरज है?

जालपा ने साहसपूर्वक कहा—कोई हरज नहीं, जी चाहे कुछ भी मत दो।

रतन—नहीं, इस वक्त मेरे पास चार सौ रुपये है। ये मैं दिये जाती हूँ। मेरे पास रहेगे तो फिर किसी दूसरी जगह खर्च हो जायेंगे। मेरे हाथ मे तो रुपये टिकते ही नही, करूँ क्या। जब तक खर्च न हो जाय, मुझे एक चिन्ता-सी लगी रहती है, जैसे सिर पर कोई बोझ सवार हो।

जालपा ने कंगन की डिबिया उसे देने के लिए निकाली तो उसका दिल मसोस उठा। उसकी कलाई पर यह कंगन देखकर रमा कितना खुश होता था! आज वह होता तो क्या यह चीज इस तरह जालपा के हाथ से निकल जाती! फिर कौन जाने कंगन पहनना उसे नसीब भी होगा या नहीं। उसने बहुत जब्त किया, पर आँसू निकल ही आये।

रतन उसके आँसू देखकर बोली—इस वक्त रहने दो बहन, फिर ले लूंगी, जल्दी ही क्या है।

जालपा ने उसकी ओर बक्स बढ़ाकर कहा—क्यों, क्या मेरे आँसू देखकर? तुम्हारी खातिर से दे रही हूँ। नही यह मुझे प्राणों से भी प्रिय था। तुम्हारे पास इसे देखूंगी तो मुझे तस्कीन होती रहेगी। किसी दूसरे को मत देना, इतनी दया करना।

रतन—किसी दूसरे को क्यों देने लगी। इसे तुम्हारी निशानी समझूंगी। आज बहुत दिन के बाद मेरे मन की अभिलाषा पूरी हुई। केवल दुःख इतना ही है कि बाबूजी अब नहीं हैं। मेरा मन कहता है कि वह जल्दी ही आयेंगे। वह मारे शर्म के चले गये हैं और कोई बात नहीं। वकील साहब को भी यह सुनकर दुःख हुआ। लोग कहते हैं—वकीलों का हृदय कठोर होता है, मगर इनको तो मैं देखती हूँ, जरा भी किसी की विपत्ति सुनी और तड़प उठे।

जालपा ने मुसकराकर कहा—बहन, एक बात पूछूं, बुरा तो न मानोगी ? वकील साहब से तुम्हारा दिल तो न मिलता होगा ?

रतन का विनोद-रजित, प्रसन्न मुख एक क्षण के लिए मलिन हो उठा। मानों किसी ने उस चिर-स्नेह की याद दिला दी हो, जिसके नाम को वह बहुत पहले रो चुकी थी। बोली—मुझे तो कभी यह ख्याल भी नहीं आया बहन, कि मैं युवती और वे बूढ़े हैं। मेरे हृदय मे जितना प्रेम, जितना अनुराग है वह सब मैंने उनके ऊपर अर्पण कर दिया। अनुराग यौवन या रूप या धन से नहीं उत्पन्न होता है। अनुराग अनुराग से उत्पन्न होता है। मेरे ही कारण तो वे इस अवस्था मे इतना परिश्रम कर रहे हैं। और दूसरा है ही कौन ! क्या यह छोटी बात है ? कल कहीं चलोगी ? कहो तो शाम को आऊँ ?

जालपा—जाऊँगी तो मैं कहीं नहीं। मगर तुम आना जरूर। दो घड़ी दिल बहलेगा। कुछ अच्छा नहीं लगता। मन डाल-डाल दौडता फिरता है। समझ मे नही आता, मुझसे इतना सकोच क्यों किया। यह भी मेरा ही दोष है। मुझमे जरूर कोई ऐसी बात देखी होगी जिसके कारण मुझसे परदा करना उन्हे जरूरी मालूम हुआ। मुझे यही दुःख है कि उनका सच्चा स्नेह न पा सकी। जिससे प्रेम होता है, उससे हम कोई भेद नहीं रखते।

रतन उठकर चली, तो जालपा ने देखा, कंगन का बक्स मेज पर पडा हुआ है। बोली—इसे लेती जाओ बहन, यहाँ क्यों छोड़े जाती हो ?

रतन—ले जाऊँगी, अभी क्या जल्दी पड़ी है। अभी पूरे रुपये भी तो नहीं दिये।

जालपा—नहीं लेती जाओ। मैं न मानूंगी।

मगर रतन सीढ़ी से नीचे उतर गयी। जालपा हाथ मे कगन लिए खडी रही। थोड़ी देर बाद जालपा ने संदूक से ५००) रु० निकाले और दयानाथ के पास जाकर बोली—ये रुपये लीजिए, नारायण दास के पास भिजवा दीजिए। बाकी रुपये भी जल्दी ही दे दूगी। दयानाथ ने झेंपकर कहा—रुपये कहाँ मिल गये ?

जालपा ने निःसंकोच होकर कहा—रतन के हाथ कंगन बेच दिया।
दयानाथ उसका मुह ताकने लगे।

(२४)

एक महीना गुजर गया। प्रयाग के सबसे अधिक छपनेवाले दैनिक पत्र मे एक नोटिस निकल रहा है, जिसमे रमानाथ के घर लौट आने की प्रेरणा की गयी है, और उनका पता लगा लेने वाले आदमी को पाँच सौ रुपये इनाम देने का वचन दिया गया है; मगर अभी तक कोई खबर नही आयी, जालपा चिन्ता और दुःख से घुलती चली जाती है। उसकी दशा देखकर दयानाथ को भी उस पर दया आने लगी। आखिर एक दिन उन्होंने दीनदयाल को लिखा—आप आकर बहू को कुछ दिनों के लिए ले जाइये। दीनदयाल यह समाचार पाते ही घबड़ाये हुए आये; पर जालपा ने मैके जाने से इनकार कर दिया।

दीनदयाल ने विस्मित होकर कहा—क्या यहाँ पडे-पडे प्राण देने का विचार है?

जालपा ने गभीर स्वर मे कहा—अगर प्राणो को इसी भाँति जाना होगा, तो कौन रोक सकता है। मैं अभी नहीं मरने की दादाजी, सच मानिए। अभागिनों के लिए वहाँ भी जगह नहीं।

दीनदयाल—आखिर चलने मे हरज ही क्या है। शहजादी और बसन्ती दोनों आयी हुई हैं। उनके साथ हँस-बोलकर जी बहलता रहेगा।

जालपा—यहाँ लाला और अम्माजी को अकेली छोड़ जाने को मेरा जी नहीं चाहता। जब रोना ही लिखा है, तो रोऊँगी।

दीनदयाल—यह बात क्या हुई? सुनते हैं, कुछ कर्ज हो गया था। कोई कहता है—सरकारी रकम खा गये थे।

जालपा—जिसने आप से यह कहा, उसने सरासर झूठ कहा।

दीनदयाल—तो फिर क्यों चले गये?

जालपा—यह मैं बिल्कुल नही जानती। मुझे बार-बार खुद यही शका होती है।

दीनदयाल—लाला दयानाथ से तो झगड़ा नहीं हुआ?

जालपा—लालाजी के सामने तो वह सिर तक नहीं उठाते, पान तक

नहीं खाते, भला झगडा क्या करेंगे। उन्हें घूमने का शौक था। सोचा होगा—यों तो कोई जाने न देगा चलो भाग चलें।

दीनदयाल—शायद ऐसा ही हो। कुछ लोगों को इधर-उधर भटकने की सनक होती है। तुम्हे यहाँ जो तकलीफ हो, मुझसे साफ-साफ कह दो। खरच के लिए भेज दिया करूँ?

जालपा ने गर्व से कहा—मुझे कोई तकलीफ नहीं है, दादाजी। आपकी दया से किसी चीज की कमी नहीं है।

दयानाथ और रामेश्वरी, दोनों ने जालपा को समझाया; पर वह जाने पर राजी न हुई। तब दयानाथ झुंझलाकर बोले—यहाँ दिन भर पढ़े-पडे रोने से तो अच्छा है!

जालपा—क्या वह कोई दूसरी दुनिया है? क्या मैं वहाँ जाकर कुछ और हो जाऊँगी? और फिर रोने से क्यों डरूँ? जब हँसना था, तब हँसती थी; जब रोना है, तब रोऊँगी। वह काले कोसो चले गये हों, पर मुझे तो हरदम यहीं बैठे दिखायी देते है। यहाँ वे स्वयं नहीं हैं; पर घर की एक-एक चीज में बसे हुए हैं; यहाँ से जाकर तो मैं निराशा से पागल हो जाऊँगी।

दीनदयाल समझ गये; यह अभिमानिनी अपनी टेक न छोड़ेगी। उठकर बाहर चले गये। संध्या समय चलते वक्त, उन्होंने पचास रुपये का एक नोट जालपा की तरफ बढ़ाकर कहा—इसे रख लो, शायद कोई जरूरत पडे।

जालपा ने सिर हिलाकर कहा—मुझे इसकी बिल्कुल जरूरत नहीं है, दादाजी। हाँ इतना चाहती हूँ कि आप मुझे आशीर्वाद दे। संभव है, आपके आशीर्वाद से मेरा कल्याण हो।

दीनदयाल की आँखो मे आँसू भर आये, नोट वहीं चारपाई पर रखकर बाहर चले आये।

क्वार का महीना लग चुका था। मेघ के जल-शून्य टुकडे कभी-कभी आकाश मे दौड़ते नजर आ जाते थे। जालपा छत पर लेटी हुई उन मेघ-खंडों की किलोलें देखा करती। चिन्ता-व्यथित प्राणियों के लिये इससे अधिक मनोरंजन की वस्तु ही कौन है? बादल के टुकड़े भाँति-भाँति के

रंग बदलते, भाँति-भाँति के रूप भरते। कभी आपस मे प्रेम से मिल जाते, कभी रूठकर अलग-अलग हो जाते; कभी दौडने लगते, कभी ठिठक जाते। जालपा सोचती रमानाथ भी कही बैठे यही मेघक्रीडा देखते होंगे। इस कल्पना मे विचित्र आनन्द मिलता। किसी माली को अपने लगाये पौधों से, किसी बालक को अपने बनाये घरौदो से जितनी आत्मीयता होती है, कुछ वैसा ही अनुराग उसे उन आकाशगामी जीवों से होता था। विपत्ति मे हमारा मन अन्तर्मुखी हो जाता है। जालपा को अब यही शका होती थी, कि ईश्वर ने मेरे पापों का दण्ड दिया है। आखिर रमानाथ दूसरो का गला दबाकर ही तो रोज रुपये लाते थे। कोई खुशी से तो न देता था! यह रुपये देखकर वह कितनी खुश होती थी। इन्हीं रुपयों से तो नित्य शौक-शृंगार की चीजे आती रहती थीं। उन वस्तुओं को देखकर अब उसका जी जलता था। यही सारे दुखों का मूल है। इन्हीं के लिए तो उसके पति को विदेश जाना पडा। वे चीजे उसकी आँखों मे अब काँटों की तरह गड़ती थीं, उसके हृदय मे शूल की तरह चुभती थीं।

आखिर एक दिन उसने इन सब चीजों को जमा किया—मखमली स्लीपर, रेशमी मोजे, तरह-तरह की बेले, फीते, पिन कंघियाँ, आइने कोई कहाँ तक गिनाये। अच्छा, खासा एक ढेर हो गया। वह इस ढेर को गंगाजी मे डुबा देगी, और अबसे एक नए जीवन का सूत्रपात करेगी। इन्हीं वस्तुओं के पीछे आज उसकी यह गति हो रही है। आज वह इस माया-जाल को नष्ट कर डालेगी। उसमे कितनी ही चीजे ऐसी सुन्दर थीं कि उन्हे फेकते मोह आता था, मगर ग्लानि की उस प्रचड ज्वाला को पानी के छींटे क्या बुझाते। आधी रात तक वह चीजों को उठा-उठाकर अलग रखती रही, मानों किसी यात्रा की तैयारी कर रही हो। हाँ, यह वास्तव मे यात्रा ही थी—अँधेरे से उजाले को, मिथ्या से सत्य को। मन मे सोच रही थी, अब यदि ईश्वर की दया हुई, और वह फिर लौटकर आये, तो वह इस तरह घर रखेगी कि थोडे-से-थोडे मे निर्वाह हो जाय। एक पैसा भी व्यर्थ खर्च न करेगी। अपनी मजदूरी के उपर एक कौडी भी घर न आने देगी। आज उसके नये जीवन का आरभ होगा।

ज्यो ही चार बजे, सड़क पर लोगों के आने जाने की आहट मिलने

लगी, जालपा ने बेग उठा लिया, और गंगा स्नान करने चली। बेग बहुत भारी था, हाथ में उसे लटकाकर दस कदम भी चलना कठिन हो गया। बार-बार हाथ बदलती थी। यह भय भी लगा हुआ था कि कोई देख न ले। बोझ लेकर चलने का उसे कभी अवसर न पड़ा था। इक्केवाले पुकारते थे; पर वह उधर कान न देती थी। यहाँ तक कि हाथ बेकाम हो गये, तो उसने बेग को पीठ पर रख लिया, और कदम बढ़ाकर चलने लगी। लम्बा घूँघट निकाल लिया था कि कोई पहचान न सके।

वह घाट के समीप पहुँची तो प्रकाश हो गया था। सहसा उसने रतन को अपनी मोटर पर आते देखा। उसने चाहा, सिर झुकाकर मुँह छिपा ले, पर रतन ने दूर से पहचान लिया। मोटर रोककर बोली—कहाँ जा रही हो बहन, यह पीठ पर बेग कैसा है?

जालपा ने घूँघट हटा लिया; और निशंक होकर बोली—गंगा स्नान करने जा रही हूँ।

रतन—मैं तो स्नान करके लौट आयी। लेकिन चलो, तुम्हारे साथ चलती हूँ। तुम्हें घर पहुँचाकर लौट आऊँगी। बेग रख दो।

जालपा—नहीं-नहीं, यह भारी नहीं है। तुम जाओ, तुम्हें देर होगी। मैं चली जाऊँगी।

मगर रतन ने न माना, कार से उतरकर उसके हाथ से बेग ले ही लिया और कार मे रखती हुई बोली—क्या भरा है तुमने इसमे, बहुत भारी है। खोलकर देखूँ?

जालपा—इसमें तुम्हारे देखने लायक कोई चीज नहीं है।

बेग मे ताला न लगा था। रतन ने खोलकर देखा, तो विस्मित होकर बोली—इन चीजों को कहाँ लिए जाती हो?

जालपा ने कार पर बैठते हुए कहा—इन्हे गंगाजी मे बहा दूँगी।

रतन ने और भी विस्मय मे पड़कर कहा—गंगा मे! कुछ पागल तो नही हो गयीं? चलो, घर लौट चलो। बेग रखकर फिर आ जाना।

जालपा ने दृढ़ता से कहा—नही रतन, मैं इन चीजों को डुबाकर ही जाऊँगी।

रतन—आखिर क्यों?

जालपा—पहले कार को बढ़ाओ, फिर बताऊँ।

रतन—नही, पहले बता दो !

जालपा—नहीं यह न होगा। पहले कार को बढ़ाओ।

रतन ने हारकर कार को बढ़ाया और बोली—अच्छा अब तो बताओगी ?

जालपा ने उलाहने के भाव से कहा—इतनी बात तो तुम्हे खुद ही समझ लेनी चाहिए थी। मुझसे क्या पूछती हो। अब वे चीजें मेरे किस काम की है। इन्हे देखकर मुझे दुःख होता है। अब देखनेवाला ही न रहा, तो इन्हे रखकर क्या करूँ।

रतन ने एक लम्बी साँस खींची, और जालपा का हाथ पकड़कर काँपते हुए स्वर मे बोली—बाबूजी के साथ तुम यह बड़ा अन्याय कर रही हो बहन ! वह कितनी उमग से इन्हे लाये होगे। तुम्हारे अंगों पर इनकी शोभा देखकर कितने प्रसन्न हुए होगे। एक-एक चीज उनके प्रेम की एक-एक स्मृति है। उन्हे गगा मे बहाकर तुम उस प्रेम का घोर अनादर कर रही हो !

जालपा विचार मे डूब गयी; मन मे सकल्प-विकल्प होने लगा; किन्तु एक ही क्षण मे वह फिर संभल गयी। बोली—यह बात नहीं है बहन, जब तक ये चीजे मेरी आँखों से दूर न हो जायंगी, मेरा चित्त शान्त न होगा। इसी विलासिता ने मेरी यह दुर्गति की है। यह मेरे विपत्ति की गठरी है, प्रेम की स्मृति नहीं। प्रेम तो मेरे हृदय पर अंकित है।

रतन—तुम्हारा हृदय बड़ा कठोर है जालपा, मैं तो शायद ऐसा न कर सकती।

जालपा—लेकिन—मैं तो उन्हे अपनी विपत्ति का मूल समझती हूँ।

एक क्षण चुप रहने के बाद वह फिर बोली—उन्होंने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया है, बहन ! जो पुरुष अपनी स्त्री से कोई परदा रखता है, मैं समझती हूँ, वह उससे प्रेम नहीं करता। मैं उनकी जगह पर होती तो यो तिलाजलि देकर न भागती। अपने मन की सारी व्यथा कह सुनाती, और जो कुछ करती, उनकी सलाह से करती। स्त्री और पुरुष मे दुराव कैसा ?

रतन ने गंभीर मुस्कान के साथ कहा—ऐसे पुरुष तो बहुत कम होंगे

जो स्त्री से अपना दिल खोलते हों। जब तुम स्वयं दिल में चोर रखती हो तो उनसे क्यों आशा रखती हो कि वे तुमसे परदा न रखें। तुम ईमान से कह सकती हो कि तुमने उनसे परदा नहीं रखा?

जालपा ने मुसकाते हुए कहा—मैंने तो अपने मन में परदा नहीं रखा।

रतन ने जोर देकर कहा—झूठ बोलती हो, बिल्कुल झूठ! अगर तुमने विश्वास किया होता, तो वे भी खुलते।

जालपा इस आक्षेप को अपने सिर से न टाल सकी। उसे आज ज्ञात हुआ कि कपट का आरंभ पहले उसी की ओर से हुआ।

गंगा का तट आ पहुँचा। कार रुक गयी। जालपा उतरी और बेग को उठाने लगी; किन्तु रतन ने उसका हाथ हटाकर कहा—नहीं, मैं इसे न ले जाने दूँगी। समझ लो कि डूब गये।

जालपा—ऐसा कैसे समझ लूँ?

रतन—मुझ पर इतनी दया करो, बहन के नाते।

जालपा—बहन के नाते तुम्हारे पैर धो सकती हूँ, मगर इन काँटों को हृदय में नहीं रख सकती।

रतन ने भवें सिकोड़कर कहा—किसी तरह न मानोगी?

जालपा ने स्थिर भाव से कहा—हाँ, किसी तरह नहीं!

रतन ने विरक्त होकर मुंह फेर लिया। जालपा ने बेग उठा लिया, और तेजी से घाट से उतरकर जल-तट तक पहुँच गयी; फिर बेग को उठाकर पानी में फेंक दिया। अपनी निर्बलता पर विजय पाकर उसका मुख प्रदीप्त हो गया। आज उसे जितना गर्व और आनन्द हुआ, उतना इन चीजों को पाकर भी न हुआ था। उन असंख्य प्राणियों में जो इस समय स्नान-ध्यान कर रहे थे, कदाचित् किसी को अपने अन्तःकरण में प्रकाश का ऐसा अनुभव न हुआ होगा। मानों प्रभात की सुनहरी ज्योति उनके रोम-रोम में व्याप्त हो रही है। जब वह स्नान करके ऊपर आयी, तो रतन ने पूछा—डुबा दिया?

जालपा—हाँ।

रतन—बड़ी निष्ठुर हो!

जालपा—यही निष्ठुरता मन पर विजय पाती है। अगर कुछ दिन

पहले निष्ठुर हो जाती तो यह दिन क्यों आता !

कार चल पडी।

(२५)

रमानाथ को कलकत्ते आये हुए दो महीने के ऊपर हो गये हैं। वह अभी तक देवीदीन के घर पड़ा हुआ है। उसे हमेशा यही धुन सवार रहती है कि रुपये कहाँ से आयें, तरह-तरह के मनसूबे बाँधता है, भाँति-भाँति की कल्पनाएँ करता है; पर घर के बाहर नहीं निकलता। हाँ, जब खूब अँधेरा हो जाता है तो वह एक बार मुहल्ले के वाचनालय मे जरूर जाता है। अपने नगर और प्रान्त के समाचारों के लिए उसका मन सदैव उत्सुक रहता है। उसने वह नोटिस देखी, जो दयानाथ ने पत्रों में छपायी थी; पर उस पर विश्वास न आया। कौन जाने, पुलिस ने उसे गिरफ्तार करने के लिये माया रची हो। रुपये भला किसने चुकाये होंगे? असम्भव !

एक दिन उसी पत्र मे रमानाथ को जालपा का एक खत छपा मिला। जालपा ने आग्रह और याचना से भरे शब्दों मे उसे घर लौट आने की प्रेरणा की थी। उसने लिखा था— तुम्हारे जिम्मे किसी का कुछ बाकी नहीं है, कोई तुमसे कुछ न कहेगा। रमानाथ का मन चंचल हो उठा; लेकिन तुरन्त ही ख्याल आया—यह भी पुलिस की शरारत होगी। जालपा ने यह पत्र लिखा, इसका क्या प्रमाण है। अगर यह भी मान लिया जाय कि रुपये घरवालो ने अदा कर दिये होंगे, तो क्या इस दशा मे भी वह घर जा सकता है? शहर भर में उसकी बदनामी हो ही गयी होगी, पुलिस मे इत्तला की ही जा चुकी होगी, उसने निश्चय किया कि मैं नहीं जाऊँगा। जब तक कम-से-कम पाँच हजार रुपये हाथ मे न हो जायेंगे, घर जाने का नाम न लूँगा। और अगर रुपये नही दिये गये, पुलिस मेरी खोज मे है, तो कभी घर न जाऊँगा; कभी नहीं।

देवीदीन के घर मे दो कोठरियाँ थीं और सामने एक बरामदा था। बरामदे मे दूकान थी, एक कोठरी में खाना बनता था, दूसरी कोठरी में बरतन-भाडे रखे हुए थे। ऊपर एक कोठरी थी और छोटी-सी खुली हुई छत। रमा इसी ऊपर के हिस्से मे रहता था। देवीदीन के रहने, सोने,

बैठने का कोई विशेष स्थान न था। रात को दूकान बढ़ाने के बाद वही बरामदा शयन-गृह बन जाता था। दोनों वहीं पडे रहते थे। देवीदीन का काम चिलम पीना और दिन भर गप्पे लडाना था, दूकान का सारा काम तो बुढ़िया करती थी। मंडी जाकर माल लाना, स्टेशन माल भेजना या लेना, यह सब भी वही कर लेती थी। देवीदीन ग्राहकों को पहचानता तक न था। थोडी-सी हिन्दी जानता था। बैठा-बैठा रामायण, तोता मैना, रासलीला या माता मरियम की कहानी पढा करता था। जब से रमा आ गया है, बुड्ढे को अंगरेजी पढ़ने का शौक हो गया है। सवेरे ही ग्राइ-मर लेकर बैठ जाता है और नौ-दस बजे तक अक्षर पढ़ता रहता है। बीच-बीच मे लतीफे भी होते जाते है, जिनका देवीदीन के पास अक्षय भंडार है। मगर जग्गी को रमा का आसन जमाना अच्छा नही लगता। वह उसे अपना मुनीम तो बनाये हुए है—हिसाब-किताब उसी से लिखवाती है; पर इतने से काम के लिए वह एक आदमी रखना व्यर्थ समझती है। यह काम तो वह ग्राहकों से यों ही करा लेती थी। उसे रमा का रहना खलता था ; पर वह इतना नम्र, इतना सेवा-तत्पर, इतना धर्म-निष्ठ है कि वह स्पष्ट रूप से कोई आपत्ति नहीं कर सकती। हॉ, दूसरों पर रखकर, श्लेषरूप से उसे सुना-सुनकर दिल का गुबार निकालती रहती है। रमा ने अपने को ब्राह्मण कह रखा है और उसी धर्म का पालन करता है। ब्राह्मण और धर्मनिष्ठ बनकर वह दोनों प्राणियों का श्रद्धा-पात्र बन सकता है। बुढ़िया के भाव और व्यवहार को वह खूब समझता है ; पर करे क्या ? बेहयाई करने पर मजबूर ! परिस्थिति ने उसके आत्म-सम्मान का अपहरण कर डाला है।

एक दिन रमानाथ वाचनालय मे बैठा हुआ पत्र पढ़ रहा था कि एकाएक उसे रतन दिखायी पड़ गयी। उसके अन्दाज से मालूम होता था कि वह किसी को खोज रही है। बीसों आदमी बैठे पुस्तके और पत्र पढ़ रहे थे। रमा की छाती धक्-धक् करने लगी। वह रतन की आँखे बचाकर सर झुकाये हुए कमरे से निकल गया और पीछे के अँधेरे बरा-मदे में, जहाँ पुराने टूटे-फूटे सन्दूक और कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं, छिपा खड़ा रहा। रतन से मिलने और घर के समाचार पूछने के लिये उसकी

आत्मा तडप रही थी; पर मारे सकोच के सामने न आ सकता था। आह! कितनी बातें पूछने को थीं! पर उनमे मुख्य यही थी कि जालपा के विचार उसके विषय मे क्या है। उसकी निष्ठुरता पर रोती तो नही है? उसकी उद्दंडता पर क्षुब्ध तो नहीं है? उसे धूर्त और बेईमान तो नहीं समझ रही है? दुबली तो नहीं हो गयी है? और लोगों के क्या भाव है? क्या घर की तलाशी हुई? मुकद्दमा चला? ऐसी हजारों बातें जानने के लिए वह विकल हो रहा था; पर मुंह कैसे दिखाये? वह झॉक-झॉककर देखता रहा। जब रतन चली गयी—मोटर चल दी, तब उसकी जान-मे-जान आयी। उस दिन से एक सप्ताह तक वह वाचनालय न गया। घर से निकला तक नहीं।

कभी-कभी पडे-पडे रमा का जी ऐसा घबराता कि पुलिस मे जाकर सारी कथा कह सुनाये। जो कुछ होना है, हो जाय। साल-दो-साल की कैद इस आजीवन कारावास से तो अच्छी ही है। फिर वह नये सिरे से जीवन-संग्राम मे प्रवेश करेगा, हाथ-पॉव बचाकर काम करेगा, अपनी चादर के बाहर जौ भर भी पॉव न फैलायेगा, लेकिन एक क्षण मे हिम्मत टूट जाती।

इस प्रकार दो महीने और बीत गये। पूस का महीना आया। रमा के पास जाड़ों का कोई कपडा न था। घर से तो वह कोई चीज लाया ही न था, यहाँ भी कोई चीज न बनवा सका था। अब तक तो उसने धोती ओढ़कर किसी तरह रातें काटीं, पर पूस के कड़कड़ाते जाडे लिहाफ या कम्बल के बगैर कैसे कटते। बेचारा रात-भर गठरी बना पड़ा रहता। जब बहुत सर्दी लगती तो बिछावन ओढ लेता। देवीदीन ने उसे एक पुरानी दरी बिछाने को दे दी थी। उसके घर मे शायद यही सबसे अच्छा बिछावन था। इस श्रेणी के लोग चाहे दस हजार के गहने पहन लें, शादी ब्याह मे दस हजार खर्च कर दें, पर बिछावन गूदड़ा ही रखेंगे। इस सड़ी हुई दरी से जाड़ा भला क्या जाता, पर कुछ न होने से अच्छा ही था। रमा सकोचवश देवीदीन से कुछ कह न सकता था और देवीदीन भी शायद इतना बडा खर्च न उठाना चाहता था। या सभव है, इधर उसकी निगाह ही न जाती हो। जब दिन ढलने लगता, तो रमा

रात के कष्ट की कल्पना से भयभीत हो उठता था, मानो काली बला दौड़ती चली आती हो । रात को बार-बार खिड़की खोलकर देखता कि सवेरा होने मे कितनी कसर है ।

एक दिन शाम को वह वाचनालय मे जा रहा था कि उसने देखा, एक बड़ी कोठी के सामने हजारों कंगले जमा हैं । उसने सोचा—यह क्या बात है, क्यों इतने आदमी जमा हैं ? भीड़ के अन्दर घुसकर देखा तो मालूम हुआ सेठजी कम्बलों का दान कर रहे हैं । कम्बल बहुत घटिया थे, पतले और हल्के, पर जनता एक-पर-एक टूटी पडती थी । रमा के मन मे आया, एक कम्बल ले लूं । यहाँ मुझे कौन जानता है ? अगर कोई जान भी जाय तो क्या हरज ? गरीब ब्राह्मण अगर दान का अधिकारी नही तो और कौन है ; लेकिन एक ही क्षण मे उसका आत्म-सम्मान जाग उठा । वह कुछ देर वहाँ खड़ा ताकता रहा, फिर आगे बढ़ा । उसके माथे पर तिलक देखकर मुनीमजी ने समझ लिया, यह ब्राह्मण है । इतने सारे कंगलों मे ब्राह्मणो की संख्या बहुत कम थी । ब्राह्मणों को दान देने का पुण्य कुछ और ही है । मुनीम मन मे प्रसन्न था कि एक ब्राह्मण देवता दिखायी तो दिये । इसलिए जब उसने रमा को जाते देखा तो बोला—पंडितजी, कहाँ चले, कम्बल तो लेते जाइए ! रमा मारे संकोच के गड़ गया । उसके मुँह से केवल इतना ही निकला —मुझे इच्छा नहीं है । यह कहकर फिर बढ़ा । मुनीमजी ने समझा, शायद कम्बल घटिया देखकर देवताजी चले जा रहे है । ऐसे आत्म-सम्मान वाले देवता उसे अपने जीवन मे शायद कभी मिले ही न थे । कोई दूसरा ब्राह्मण होता, तो दो-चार चिकनी-चुपड़ी बाते करता और अच्छे-कम्बल माँगता । यह देवता बिना कुछ कहे, निर्व्याज भाव से चले जा रहे है, तो अवश्य कोई त्यागी जीव हैं । उसने लपककर रमा का हाथ पकड़ लिया और बोला—आओ तो महाराज, आपके लिए चोखा कम्बल रखा है । यह तो कंगलों के लिये है । रमा ने देखा कि बिना माँगे एक चीज मिल रही है, जबरदस्ती गले लगायी जा रही है, तो वह दो बार और नहीं-नहीं करके मुनीम जी के साथ अन्दर चला गया । मुनीम ने उसे कोठी मे ले जाकर तख्त पर बैठाया और एक अच्छा-सा दबीज

कम्बल भेंट किया। रमा की सतोष-वृत्ति का उस पर इतना प्रभाव पडा कि उसने पाँच रुपये दक्षिणा भी देना चाहा; किन्तु रमा ने उसे लेने से साफ इनकार कर दिया। जन्म-जन्मातर की सचित मर्यादा कम्बल लेकर ही आहत हो उठी थी, दक्षिणा के लिए हाथ फैलाना उसके लिए असभव हो गया।

मुनीम ने चकित होकर कहा—आप यह भेंट न स्वीकार करेंगे, तो सेठजी को बड़ा दुःख होगा।

रमा ने विरक्त होकर कहा—आपके आग्रह से मैंने कम्बल ले लिया; पर दक्षिणा नही ले सकता। मुझे धन की आवश्यकता नही। जिस सज्जन के घर टिका हुआ हूँ, वह मुझे भोजन देते है। और मुझे लेकर क्या करना है?

'सेठजी नही मानेंगे।'

'आप मेरी ओर से क्षमा माँग लीजिएगा।'

'आपके त्याग को धन्य है। ऐसे ब्राह्मणों से धर्म की मर्यादा बनी हुई है। कुछ देर बैठिए तो, सेठजी आते होंगे। ब्राह्मणों के परम भक्त हैं। त्रिकाल संध्यावन्दन करते है, महराज। तीन बजे रात को गगातट पर पहुँच जाते हैं। और वहाँ से आकर पूजन पर बैठ जाते है। दस बजे भागवत का पारायण करते है। मध्याह्न भोजन पाते हैं तब कोठी मे आते है। तीन-चार बजे फिर सध्या करने चले जाते हैं। आठ बजे थोडी देर के लिए आते हैं। नौ बजे फिर ठाकुरद्वारे मे कीर्तन सुनते है और फिर सध्या करके भोजन पाते है। थोड़ी देर मे आते ही होंगे। आप कुछ देर बैठें तो बड़ा अच्छा हो। आप का स्थान कहाँ है?'

रमा ने प्रयाग न बतलाकर काशी बतलाया। इस पर मुनीमजी का आग्रह और बढ़ा; पर रमा को यह शका हो रही थी कि कहीं सेठजी ने कोई धार्मिक प्रसग छेड दिया तो सारी कलई खुल जायगी। किसी दूसरे दिन आने का वचन देकर उसने पिंड छुडाया।

नौ बजे वह वाचनालय से लौटा तो डर रहा था कि कहीं देवीदीन ने कम्बल देखकर पूछा—कहाँ से लाये, तो क्या जवाब दूंगा! कोई बहाना कर दूँगा, एक पहचान की दूकान से उधार लाया हूँ।

देवीदीन ने कम्बल देखते ही पूछा—सेठ करोड़ीमल के यहाँ पहुँच गये क्या महाराज ?

रमा ने पूछा—कौन सेठ करोड़ीमल ?

'अरे वही, जिसकी वह लाल कोठी है।'

रमा कोई बहाना न कर सका। बोला—हाँ, मुनीमजी ने पिंड ही न छोड़ा। बड़ा धर्मात्मा जीव है।

देवीदीन ने मुस्कराकर कहा—बड़ा धर्मात्मा! उसी के थामे तो यह धरती थमी है, नहीं तो अब तक मिट गयी होती!

रमा०—काम तो धर्मात्माओं ही के करता है, मन का हाल ईश्वर जाने। जो सारे दिन पूजा-पाठ और दान-व्रत में लगा रहे, उसे धर्मात्मा नहीं तो और क्या कहा जाय।

देवी०—उसे पापी कहना चाहिए, महापापी। दया तो उसके पास से होकर भी नहीं निकली। उसकी जूट की मिल है। मजदूरी के साथ निर्दयता इसकी मिल में होती है, और कहीं नहीं होती। आदमियों को हंटरों से पिटवाता है, हंटरों से! चरबी मिला घी बेचकर इसने लाखों कमा लिये। कोई नौकर एक मिनट की भी देर करे तो तुरन्त तलब काट लेता है। अगर साल में दो-चार हजार दान न करे तो पाप का धन पचे कैसे। धर्म-कर्मवाले ब्राह्मण तो उसके द्वार पर झाँकते भी नहीं। तुम्हारे सिवा वहाँ और कोई पंडित था ?

रमा ने सिर हिलाया।

कोई जाता ही नहीं। हाँ लोभी-लम्पट पहुँच जाते हैं। जितने पुजारी देखे, सबको पत्थर ही पाया। पत्थर पूजते-पूजते इनके दिल भी पत्थर हो जाते हैं। इसके तीन तो बड़े-बड़े धर्मशाले हैं, मुदा है पाखंडी। आदमी चाहे और कुछ न करे, मन में दया बनाये रखे। यही सौ धरम का एक धरम है।'

दिन की रखी हुई रोटियाँ खाकर जब रमा कम्बल ओढ़कर लेटा, तो उसे बड़ी ग्लानि होने लगी। रिश्वत में उसने हजारों रुपयों मारे थे; पर कभी एक क्षण के लिये भी उसे ग्लानि न आयी थी। रिश्वत बुद्धि से, कौशल से पुरुषार्थ से मिलती है। दान पौरुषहीन, कर्महीन या पाखण्डियों

का आधार है। वह सोच रहा था—मैं अब इतना दीन हूँ कि भोजन और वस्त्र के लिए मुझे दान लेना पड़ता है। वह देवीदीन के घर दो महीने से पड़ा हुआ था; पर देवीदीन उसे भिक्षुक नहीं, मेहमान समझता था। उसके मन में कभी दान का भाव आया ही न था। रमा के मन में ऐसा उद्वेग उठा कि इसी दम थाने में जाकर अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाये। यही न होगा, दो तीन साल की सजा हो जायगी, फिर तो यों प्राण सूली पर न टंगे रहेंगे। कहीं डूब ही क्यों न मरूँ। इस तरह जीने से फायदा ही क्या? न घर का हूँ, न घाट का। दूसरों का भार तो क्या उठाऊँगा, अपने ही लिए दूसरों का मुँह ताकता हूँ। इस जीवन से किसका उपकार हो रहा है। धिक्कार है मेरे जीने को!

रमा ने निश्चय किया, कल निश्शंक होकर काम की टोह में निकलूँगा। जो कुछ होना है हो।

(२६)

अभी रमा मुंह-हाथ धो रहा था, कि देवीदीन प्राइमर लेकर आ पहुँचा और बोला—भैया, यह तुम्हारी अगरेजी बड़ी विकट है। एस-आई-आर 'सर' होता है तो पी-आई-टी 'पिट' क्यों होता है? बी-यू-टी' 'बट' होता है, लेकिन पी-यू-टी 'पुट' क्यों होता है? तुम्हें भी बड़ी कठिन लगती होगी?

रमा ने मुस्कराकर कहा—पहले तो कठिन लगती थी, पर अब आसान मालूम होती है।

देवी—जिस दिन प्राइमर खतम होगी, महाबीरजी को सवा सेर लड्डू चढाऊँगा। पराई-मर का मतलब है पराई स्त्री मर जाय। मैं कहता हूँ, हमारी मर। पराई के मरने से हमें क्या सुख! तुम्हारे बाल-बच्चे तो हैं न भैया?

रमा ने इस भाव से कहा मानो है, पर न होने के बराबर हैं—हाँ है तो।

'कोई चिट्ठी-चपाती आई थी?'

'न!'

'और न तुमने लिखी? अरे! तीन महीने से कोई चिट्ठी भी नहीं भेजी? घबराते न होंगे लोग?'

जब तक यहाँ कोई ठिकाना न लग जाय क्या पत्र लिखूं ?'

'अरे भले आदमी, इतना तो लिख दो कि मैं यहाँ कुशल से हूँ। घर से भाग आये थे, उन लोगों को कितनी चिन्ता हो रही होगी ? माँ-बाप तो हैं न ?'

'हाँ, हैं तो।'

देवीदीन ने गिडगिड़ाकर कहा—तो भैया, आज ही चिट्ठी डाल दो मेरी बात मानो।

रमा ने अब तक अपना हाल छिपाया था। उसके मन में कितनी ही बार इच्छा हुई कि देवीदीन से कह दूँ; पर बात ओठों तक आकर रुक जाती थी। वह देवीदीन के मुँह से आलोचना सुनना चाहता था। वह जानना चाहता था कि वह क्या सलाह देता है। इस समय देवीदीन के सद्भाव ने पराभूत कर दिया बोला—मैं घर से भाग आया हूँ, दादा।

देवीदीन ने मूछों मे मुस्कराकर कहा—यह तो मैं जानता हूँ। क्या बाप से लडाई हो गयी ?

'नहीं !'

'माँ ने कुछ कहा होगा ?'

'यह भी नहीं !'

'तो फिर घरवाली से ठन गयी होगी। वह कहती होगी, मैं अलग रहूँगी तुम कहते होगे मैं अपने माँ-बाप से अलग न रहूँगा। या गहने के लिये जिद करती होगी, नाक मे दम कर दिया होगा। क्यों ?'

रमा ने लज्जित होकर कहा—कुछ ऐसी बात थी, दादा। वह तो गहनों की बहुत इच्छुक न थी, लेकिन पा जाती थी, तो प्रसन्न हो जाती थी, और मैं प्रेम की तरंग मे आगा-पीछा कुछ न सोचता था।

देवीदीन के मुँह से मानो आप-ही-आप निकल आया—सरकारी रकम तो नहीं उड़ा दी ?

रमा को रोमाञ्च हो आया। छाती धक् से हो गयी। वह सरकारी रकम की बात उससे छिपाना चाहता था। देवीदीन के इस प्रश्न ने उस पर छापा मार दिया। वह कुशल सैनिक की भाँति अपनी सेना को घाटियों से, जासूसों की आँख बचाकर, निकाल ले जाना चाहता था, पर इस

छापे ने उसकी सेना को अस्त-व्यस्त कर दिया। उसके चेहरे का रंग उड़ गया। वह एकाएक कोई निश्चय न कर सका कि इसका क्या जवाब दूँ।

देवीदीन ने उसके मन का भाव भाँपकर कहा—प्रेम बडा बेढब होता है भैया। बडे-बडे चूक जाते हैं; तुम तो अभी लड़के हो। गबन के हजारों मुकदमे हर साल होते है; तहकीकात की जाय तो सबका कारण एक ही होगा—गहना! दस-बीस वारदात तो मैं आँखों देख चुका हूँ। वह रोग ही ऐसा है। औरत मुँह से तो यही कहे जाती है कि यह क्यों लाये वह क्यों लाये, रुपये कहाँ से आयेंगे, लेकिन उसका मन आनन्द से नाचने लगता है। यहीं एक डाक बाबू रहते थे। बेचारे ने छुरी से गला काट लिया। एक दूसरे मियाँ साहब को जानता हूँ, जिनको पाँच साल की सजा हो गयी, जेहल में मर गये। एक तीसरे पण्डितजी को जानता हूँ, जिन्होंने अफीम खाकर जान दे दी; बुरा रोग है। दूसरों को क्या कहूँ, मैं भी तीन साल की सजा काट चुका हूँ। जवानी की बात है, जब बुढ़िया पर जोबन था। ताकती थी तो मानो कलेजे पर तीर चला देती थी! मैं डाकिया था। मनीआर्डर तकसीम किया करता था। यह कानों के झूमक के लिए जान खा रही थी। कहती थी, सोने ही का लूँगी। इसका बाप चौधरी था। मेवे की दूकान थी। मिजाज बढ़ा हुआ था। मुझ पर प्रेम का नशा छाया हुआ था। अपनी आमदनी की डींगें मारता रहता था। कभी मिठाई, कभी अतर-फुलेल। सदर का हल्का था। जमाना अच्छा था। दूकानदारों से जो चीज माँग लेता, मिल जाती थी! आखिर मैंने एक मनीआर्डर पर झूठे दस्तखत बनाकर रुपये उड़ा दिए। कुल तीस रुपये थे। झूमक लाकर इसे दिए इतनी खुश हुई कि कुछ न पूछो, लेकिन एक महीने में चोरी पकड़ ली गयी। तीन साल की सजा हो गयी। सजा काटकर निकला तो यहाँ भाग आया। फिर कभी घर नहीं गया। मुह कैसे दिखाता। हाँ, घर पत्र भेज दिया। बुढिया खबर पाते ही चली आयी। यह सब कुछ हुआ; मगर गहनों से उसका पेट नहीं भरा। जब देखो, कुछ-न-कुछ बनता ही रहता है। एक चीज आज बनवायी, कल उसी को तुड़वाकर कोई दूसरी चीज बनवायी। यही तार चला जाता है। एक सोनार मिल गया, मजूरी में साग-भाजी ले जाता है। मेरी तो सलाह है, घर एक खत

लिख दो, लेकिन पुलिस तो तुम्हारी टोह मे होगी ? कही पता मिल गया, तो काम बिगड़ जायगा। मैं न किसी से एक खत लिखवाकर भेज दूँ।

रमा ने आग्रहपूर्वक कहा--नहीं दादा ! दया करो। अनर्थ हो जायगा। पुलिस से ज्यादा तो मुझे घर वालों का भय है।

देवी०—घरवाले खबर पाते ही आ जायँगे। यह चर्चा ही न उठेगी। उनकी कोई चिन्ता ही नहीं। डर पुलिस ही का है।

रमा—मैं सजा से बिल्कुल नही डरता ? तुमसे कहा नहीं, एक दिन मुझे वाचनालय मे जान-पहचान की एक स्त्री दिखायी दी। हमारे घर बहुत आती जाती थी। मेरी स्त्री से बड़ी मित्रता थी। एक बड़े वकील की पत्नी है ! उसे देखते ही मेरी नानी मर गयी। ऐसा सिटपिटा गया कि उसकी ओर ताकने की हिम्मत न पड़ी। चुपके से उठकर पीछे के बरामदे मे जा छिपा। अगर उस वक्त उससे दो-चार बाते कर लेता, तो घर का सारा समाचार मालूम हो जाता, और मुझे विश्वास है, कि वह इस मुलाकात की किसी से चर्चा भी न करती। मेरी पत्नी से भी न कहती; लेकिन मेरी हिम्मत न पड़ी। अब अगर मिलना भी चाहूँ, तो नहीं मिल सकता। उसका पता-ठिकाना कुछ भी तो नहीं मालूम।

देवी०—तो फिर उसी को क्यों नहीं एक चिट्ठी लिखते।

रमा०—चिट्ठी तो मुझसे न लिखी जायेगी।

देवी—तो कब तक चिट्ठी न लिखोगे ?

रमा०—देखा चाहिये।

देवी—पुलिस तुम्हारी टोह मे होगी।

देवीदीन चिन्ता मे डूब गया। रमा को भ्रम हुआ शायद पुलिस का भय इसे चिंतित कर रहा है। बोला—हाँ इसकी शका हमेशा बनी रहती है। तुम देखते हो, मैं दिन को बहुत कम घर से निकलता हूँ, लेकिन मैं तुम्हे अपने साथ नहीं घसीटना चाहता। मैं तो जाऊँगा ही, तुम्हे क्यों उलझन मे डालूँ। सोचता हूँ, कहीं और चला जाऊँ, किसी ऐसे गाँव मे जाकर रहूँ, जहाँ पुलिस की गन्ध भी न हो।

देवीदीन ने गर्व से सिर उठाकर कहा—मेरे बारे मे तुम कुछ चिन्ता न करो भैया, यहाँ पुलिस से डरने वाले नहीं है। किसी परदेशी को

अपने घर ठहरना पाप नहीं। हमें क्या मालूम किसके पीछे पुलिस है? यह पुलिस का काम है, पुलिस जाने। मै पुलिस का मुखबिर नहीं, जासूस नहीं, गोइन्दा नहीं। तुम अपने को बचाये रहो, देखो भगवान् क्या करते है। हॉ, कहीं बुढ़िया से न कह देना, नही तो उसके पेट मे पानी न पचेगा।

दोनों एक क्षण चुपचाप बैठे रहे। दोनों इस प्रसग को इस समय बंद कर देना चाहते थे। सहसा देवीदीन ने कहा—क्यों भैया, कहो मैं तुम्हारे घर चला जाऊँ। किसी को कानोंकान खबर न होगा। मै इधर-उधर से सारा ब्योरा पूछ आऊँगा। तुम्हारे पिता से मिलूँगा, तुम्हारी माता को समझाऊँगा, तुम्हारी घरवाली से बातचीत करूँगा। फिर जैसा उचित जान पडे वैसा करना।

रमा ने मन-ही-मन प्रसन्न होकर कहा—लेकिन कैसे पूछोगे दादा, लोग कहेंगे न कि तुम्हे इन बातों से क्या मतलब।

देवीदीन ने ठट्ठा मारकर कहा—भैया, इससे सहज तो कोई काम ही नहीं। एक जनेऊ गले मे डाला और ब्राह्मण बन गये। फिर चाहे हाथ देखो, चाहे कुण्डली बाँचो, चाहे सगुन विचारो, सब कुछ कर सकते हो। बुढिया भिक्षा लेकर आयेगी। उसे देखते ही कहूँगा, माता तेरे को पुत्र के परदेश जाने का बडा कष्ट है, क्या तेरा कोई पुत्र विदेश गया है? इतना सुनते ही घर-भर के लोग आ जायेंगे। वह भी आयेगी। उसका हाथ देखूगा। इन बातों मे मैं पक्का हूँ भैया, तुम निश्चिन्त रहो। कुछ कमा लाऊँगा, देख लेना। माघ-मेला भी होगा। स्नान करता आऊँगा।

रमा की आँखे मनोल्लास से चमक उठीं। उसका मन मधुर-कल्पनाओं के संसार मे जा पहुँचा। जालपा उसी वक्त रतन के पास दौडी जायगी। दोनों भाँति-भाँति के प्रश्न करेंगी—क्यों बाबा, वह कहाँ गये हैं। अच्छी तरह है न? कब तक घर आयेंगे? कभी बाल-बच्चों की सुधि आती है उनको? वहाँ किसी कामिनी के माया-जाल मे तो नहीं फस गये? दोनों शहर का नाम भी पूछेंगी। कहीं दादा ने सरकारी रुपये चुका दिये हों, तो मजा आ जाय। तब एक ही चिन्ता रहेगी।

देवीदीन बोला—तो है न सलाह?

रमा०—कहाँ जाओगे दादा; कष्ट होगा।

'माघ का स्नान भी तो करूँगा। कष्ट के बिना कहीं पुत्र होता है! मैं तो कहता हूँ, तुम भी चलो। मैं वहाँ सब रंग-ढंग देख लूंगा। अगर देखना कि मामला टिचन है, तो चैन से घर चले जाना। कोई खटका मालूम हो तो मेरे साथ ही लौट आना।'

रमा ने हँसकर कहा—कहाँ की बात करते हो दादा? मैं यों कभी न जाऊँगा? स्टेशन पर उतरते ही कहीं पुलिस का सिपाही पकड़ ले तो बस!

देवीदीन ने गभीर होकर कहा—सिपाही क्या पकड़ लेगा, दिल्लगी है। मुझसे कहो, मैं प्रयागराज के थाने मे ले जाकर खड़ा कर दूँ। अगर कोई तिरछी आँखों से भी देख ले तो मूंछ मुड़ा लूं। ऐसी बात है भला, सैकड़ों खूनियों को जानता हूँ, जो यहीं कलकत्ते मे रहते है! पुलिस के अफसरों के साथ दावतें खाते है, पुलिस उन्हें जानती है, फिर भी उनका कुछ नही कर सकती। रुपये मे बड़ा बल है भैया!

रमा ने कुछ जवाब न दिया। उसके सामने यह नया प्रश्न आ खड़ा हुआ। जिन बातों को वह अनुभव न होने के कारण महा कष्ट-साध्य समझता था, उन्हे इस बूढ़े ने निर्मूल कर दिया और बूढा शेखीबाजों मे नहीं है। वह मुँह से जो कहता है, उसे पूरा कर दिखाने का सामर्थ्य रखता है। उसने सोचा, तो क्या मैं सचमुच देवीदीन के साथ घर चला जाऊँ? यहाँ कुछ रुपये मिल जाते, तो नये सूट बनवा लेता, फिर शान से जाता। वह उस अवसर की कल्पना करने लगा, जब वह सूट पहने हुए घर पहुँचेगा। उसे देखते ही गोपी और विश्वम्भर दौड़ेंगे—भैया आये, भैया आये! दादा निकल आयेंगे। अम्माँ को पहले विश्वास न आयेगा, जब दादा जाकर कहेंगे—हाँ आ तो गये, तब वह रोती हुई द्वार की ओर चलेंगी। उसी वक्त मैं पहुँचकर उनके पैरों पर गिर पड़ूँगा। जालपा वहाँ न आयेगी। वह मान किये बैठी रहेगी। रमा ने मन-ही-मन वह वाक्य भी सोच लिया, जो वह जालपा को मनाने के लिए कहेगा! शायद रुपये की चर्चा ही न आये! इस विषय पर कुछ कहते हुए सभी को संकोच होगा। अपने प्रियजनों से जब कोई अपराध हो जाता है तो हम उघाड़कर उसे दुःखी नहीं करते। चाहते है कि उस बात का उसे ध्यान

ही न आये; उसके साथ ऐसा व्यवहार करते हैं, कि उसे हमारी ओर जरा भी भ्रम न हो, वह भूलकर भी न समझे, कि मेरी अपकीर्ति हो रही है।

देवीदीन ने पूछा—क्या सोच रहे हो? चलोगे न?

रमा ने दबी जबान से कहा—तुम्हारी इतनी दया है, तो चलूंगा; मगर पहले तुम्हे मेरे घर जाकर पूरा-पूरा समाचार लाना पडेगा। अगर मेरा मन न भरा तो मैं लौट आऊँगा।

देवीदीन ने दृढ़ता से कहा—मजूर।

रमा ने संकोच से आँखें नीची करके कहा—एक बात और है।

देवी०—क्या बात है? कहो।

'मुझे कुछ कपडे बनवाने पड़ेगे?'

'बन जायंगे।'

'मैं घर पहुँचकर तुम्हारे रुपये दिला दूंगा।'

'और मैं तुम्हारी गुरु-दक्षिणा भी वहीं दे दूंगा।'

'गुरु-दक्षिणा भी मुझी को देनी पडेगी। मैंने चार हरफ अगरेजी पढ़ा दिये, तो तुम्हारा इससे कोई उपकार न होगा। तुमने मुझे जो पाठ पढ़ाये है, उन्हे मैं उम्र भर नहीं भूल सकता। मुंह पर बड़ाई करना खुशामद है; लेकिन दादा, माता-पिता के बाद जितना प्रेम मुझे तुमसे है, उतना और किसी से नहीं। तुमने ऐसे गाढे समय मेरी बाँह पकड़ी जब मैं बीच धार मे बहा जा रहा था। ईश्वर ही जाने, अब तक मेरी क्या गति हुई होती, किस घाट लगा होता!'

देवीदीन ने चुहुल से कहा—और जो कहीं तुम्हारे दादा ने मुझे घर मे न घुसने दिया तो?

रमा ने हँसकर कहा—दादा तुम्हे अपना बड़ा भाई समझेंगे, तुम्हारी इतनी खातिर करेंगे, कि तुम ऊब जाओगे। जालपा तुम्हारे चरण धो-धो पियेगी; तुम्हारी इतनी सेवा करेगी कि जवान हो जाओगे।

देवीदीन ने हँसकर कहा—तब तो बुढिया डाह के मारे जल मरेगी। मानेगी नहीं, नहीं तो मेरा जी चाहता है कि हम दोनों अपना डेरा-डंडा लेकर चलते और वहीं अपनी सिरकी तानते। तुम लोगों के साथ जिन्दगी

के बाकी दिन आराम से कट जाते। मगर इस चुड़ैल से कलकत्ता न छोड़ा जायगा। तो बात पक्की हो गयी न ?

'हाँ, पक्की ही है।'

'दूकान खुले तो चलें, कपड़े लाये आज ही सिलने को दे दें।'

देवीदीन के चले जाने के बाद रमा बड़ी देर तक आनन्द-कल्पनाओं में मग्न बैठा रहा। जिन भावनाओं को कभी उसने अपने मन मे आश्रय न दिया था, जिनकी गहराई, विस्तार और उद्वेग से वह इतना भयभीत था कि उनमे फिसलकर डूब जाने के भय से चंचल मन को उधर भटकने भी न देता था, उसी अथाह और अछोर कल्पना-सागर मे वह आज स्वच्छन्द रूप से क्रीड़ा करने लगा। उसे अब एक नौका मिल गयी थी। वह त्रिवेणी की सैर, वह अल्फ्रेड पार्क की बहार, वह खुसरो बाग का आनन्द, वह मित्रो के जलसे, सब याद आ-आकर हृदय को गुदगुदाने लगे। रमेश उसे देखते ही गले लिपट जायेगा। मित्रगण पूछेंगे, कहाँ गये थे यार ? खूब सैर की ? रतन उसकी खबर पाते ही दौड़ी आयेगी और पूछेगी—तुम कहाँ ठहरे थे बाबूजी, मैंने तो सारा कलकत्ता छान मारा। फिर जालपा की मान-प्रतिमा सामने आ खड़ी हुई।

सहसा देवीदीन ने आकर कहा—भैया दस बज गये, चलो बाजार होते आयें।

रमा ने चौंककर पूछा—क्या दस बज गये ?

देवी०—दस नहीं, ग्यारह का अमल होगा।

रमा चलने को तैयार हुआ; लेकिन द्वार पर आकर रुक गया।

देवीदीन ने पूछा—क्यों, खड़े हो गये ?

'तुम्हीं चले जाओ; मैं जाकर क्या करूँगा !'

'क्या डर रहे हो ?'

'नहीं, डर नहीं रहा हूँ, मगर फायदा ?'

'मैं अकेले जाकर क्या करूँगा। मुझे क्या मालूम, तुम्हें कौन कपड़ा पसन्द है। चलकर अपनी पसन्द का ले लो। वहीं दरजी को दे देंगे।'

'तुम जैसा कपड़ा चाहे ले लेना। मुझे सब पसन्द है।'

'तुम्हे डर किस बात का ? पुलिस तुम्हारा कुछ नहीं करेगी। कोई

तुम्हारी तरफ ताकेगा भी नहीं।'

'मैं डर नही रहा हूँ, दादा! जाने की इच्छा नहीं है।'

'डर नहीं रहे हो तो क्या कर रहे हो। कह रहा हूँ, कि कोई तुम्हे कुछ न कहेगा, इसका मेरा जिम्मा; मुदा तुम्हारी जान निकली जाती है।'

देवीदीन ने बहुत समझाया, आश्वासन दिया; पर रमा जाने पर राजी न हुआ। वह डरने से कितना ही इनकार करे; पर उसकी हिम्मत घर से बाहर निकलने को न पडती थी। वह सोचता था, अगर किसी सिपाही ने पकड़ लिया, तो देवीदीन क्या कर लेगा। माना सिपाही से इसका परिचय भी हो, तो यह आवश्यक नहीं कि वह सरकारी मामले मे मैत्री का निर्वाह करे। यह मिन्नत-खुशामद करके रह जायगा, आयगी मेरे सिर। कही पकड़ जाऊँ, तो प्रयाग के बदले जेल जाना पड़े। आखिर देवीदीन लाचार होकर अकेला ही गया।

देवीदीन घण्टे-भर मे लौटा, तो देखा, रमा छत पर टहल रहा है। बोला—कुछ खबर है, कै बज गये? बारह का अमल है। आज रोटी न बनाओगे क्या? घर जाने की खुशी मे खाना-पीना छोड़ दोगे?

रमा ने झेंपकर कहा—बना लूंगा, दादा, जल्दी क्या है।

'यह देखो, नमूने लाया हूँ। इनमे जौन-सा पसन्द करो, ले लूं।'

यह कहकर देवीदीन ने ऊनी और रेशमी कपड़ों के सैकड़ों नमूने निकाल कर रख दिये। पाँच छः रुपये गज से कम का कोई न था।

रमा ने नमूनों को उलट-पलटकर देखा, बोला—इतने मँहगे कपड़े क्यों लाये दादा? और सस्ते न थे?

'सस्ते थे, मुदा विलायती थे!'

'तुम विलायती कपडे नहीं पहनते?'

'इधर बीस साल से तो नहीं लिये, उधर की बात नहीं कहता। कुछ बेसी दाम लग जाता है, पर रुपया तो देश ही मे रह जाता है।'

रमा ने लजाते हुए कहा—तुम नियम के बड़े पक्के हो, दादा।

देवीदीन की मुद्रा सहसा तेजवान् हो गयी। उसकी बुझी हुई आँखे चमक उठीं। देह की नसे तन गयीं। अकड़कर बोला—जिस देश मे रहते हैं, जिसका अन्न-जल खाते हैं, उसके लिए इतना भो न करें, तो जीने को

धिक्कार है। दो जवान बेटे इसी मुदई की भेंट कर चुका हूँ, भैया। ऐसे-ऐसे पट्ठे थे कि तुमसे क्या कहूँ! दोनों विदेशी कपड़े की दुकान पर तैनात थे। क्या मजाल थी कि कोई गाहक दूकान पर आ जाय। हाथ जोड़कर, घिघियाकर धमकाकर लजवाकर सबको फेर देते थे। बजाजे में सियार लोटने लगे। सबों ने जाकर कमिसनर से फरियाद की। सुनकर आग हो गया। बीस फौजी गोरे भेजे, कि अभी जाकर बाजार से पहरे उठा दो। गोरों ने दोनों भाइयों से कहा—यहाँ से चले जाव; मुदा वह अपनी जगह से जौ भर न हिले। भीड़ लग गयी। गोरे उन पर घोड़े चढ़ा लाते थे; पर दोनों चट्टान की तरह डटे खड़े थे। आखिर जब इस तरह कुछ बस न चला तो सबों ने डण्डों से पीटना शुरू किया। दोनों वीर डंडे खाते थे; पर जगह से न हिलते थे। जब बड़ा भाई गिर पड़ा तो छोटा उसकी जगह पर आ खड़ा हुआ। अगर दोनों अपने डंडे सँभाल लेते, तो भैया उन बीसों को मार भगाते, लेकिन हाथ उठाना तो बड़ी बात है, सिर तक न उठाया। अन्त मे छोटा भी वहीं गिर पड़ा। दोनों को लोगों ने उठाकर अस्पताल भेजा। उसी रात को दोनों सिधार गये। तुम्हारे चरन छूकर कहता हूँ भैया, उस बखत ऐसा जान पड़ता था, कि मेरी छाती गज-भर की हो गयी है, पॉव जमीन पर न पड़ते थे। यही उमंग आती थी कि भगवान् ने औरों को पहले न उठा लिया होता, तो इस समय उन्हे भी भेज देता। जब अर्थी चली है, तो एक लाख आदमी साथ थे। बेटों को गंगा मे सौंपकर मैं सीधे बजाजे पहुँचा और उसी जगह खड़ा हुआ, जहाँ दोनों वीरो की लहास गिरी थी। गाहक के नाम चिड़िये का पूत तक न दिखायी दिया। आठ दिन वहाँ से हिला तक नहीं। बस, भोर के समय आध घंटे के लिए घर आता था और नहा-धोकर कुछ जलपान करके चला जाता था। नवे दिन दूकानदारों ने कसम खायी कि विलायती कपडे अब न मँगायेंगे। तब पहरे उठा लिये गये। तब से विदेशी दियासलाई तक घर मे नहीं लाया।

रमा ने सच्चे हृदय से कहा—दादा तुम सच्चे हो, और वे दोनों लड़के भी सच्चे योद्धा थे। तुम्हारे दर्शन से आँखें पवित्र होती हैं।

देवीदीन ने इस भाव से देखा मानो इस बड़ाई को वह बिल्कुल

अतिशयोक्ति नहीं समझता। शहीदों की शान से बोला—इन बडे-बडे आदमियो के किये कुछ न होगा। इन्हे बस रोना आता है ; छोकरियों की भाँति विसूरने के सिवा इनसे और कुछ नहीं हो सकता। बडे-बडे देश भगतो को बिना विलायती सराब के चैन नहीं आता। उनके घर मे जाकर देखो तो एक भी देशी चीज न मिलेगी ! दिखाने को दस-बीस कुरते गाढ़े के बनवा लिये, घर का और सामान विलायती है। सब-के-सब भोग-विलास मे अन्धे हो रहे है। छोटे भी और बड़े भी। उसपर दावा यह है कि देश का उद्धार करेंगे। अरे तुम क्या देश का उद्धार करोगे ! पहले अपना उद्धार कर लो। गरीबों को लूटकर विलायत का घर भरना तुम्हारा काम है ; इसीलिए तुम्हारा इस देश मे जन्म हुआ है। हाँ, 'रोये जाओ, विलायती शराबे उड़ाये जाओ, विलायती मोटरे दौड़ाओ, विलायती मुरब्बे और अचार चखो, विलायती बरतनों मे खाओ, विलायती दवा-इयाँ पियो, पर देश के नाम को रोये जाओ। मुदा इस रोने से कुछ न होगा। रोने से माँ भी दूध पिलाती है, शेर अपना शिकार नहीं छोड़ता। रोओ उसके सामने जिसमे दया और धरम हो। तुम धमका कर ही क्या कर लोगे ? जिस धमकी मे कुछ दम नहीं है उस धमकी की परवाह कौन करता है ? एक बार यहाँ एक बड़ा भारी जलसा हुआ। एक साहब-बहादुर खडे होकर खूब उछले-कूदे। जब वह नीचे आये तब मैंने उनसे पूछा—साहब, सच बताओ, जब तुम सुराज का नाम लेते हो, उसका कौन-सा रूप तुम्हारी आँखों के सामने आता है ? तुम भी बड़ी-बड़ी तलब लोगे ; तुम भी अंग्रेजों की तरह बँगलों मे रहोगे, पहाड़ों की हवा खाओगे, अंगरेजी ठाट बनाये घूमोगे ; इस सुराज से देश का क्या कल्यान होगा। तुम्हारी और तुम्हारे भाई-बन्दों की जिन्दगी भले आराम और ठाट से गुजरे ; पर देश का तो कोई भला न होगा। बस, बगलें झाँकने लगे। तुम दिन मे पाँच वेर खाना चाहते हो, और वह भी बढ़िया माल ; गरीब किसान को एक जून सूखा चबेना भी नहीं मिलता। उसी का रक्त चूस कर तो सरकार तुम्हे हुद्दे देती है। तुम्हारा ध्यान कभी उनकी ओर जाता है ? अभी तुम्हारा राज नहीं है, तब तो तुम भोग-विलास पर इतना मरते हो, जब तुम्हारा राज हो जायगा, तब तो तुम गरीबों को पीसकर पी जाओगे।

रमा भद्र समाज पर यह आक्षेप न सुन सका। आखिर वह भी तो भद्र समाज का ही एक अंग था। बोला—यह तो नहीं है दादा, कि पढ़े-लिखे लोग किसानों का ध्यान नहीं करते। उनमें से कितने ही खुद किसान थे या हैं। उन्हें अगर विश्वास हो जाय कि हमारे कष्ट उठाने से किसानों का कोई उपकार होगा, और जो बचत होगी वह किसानों के लिए खर्च की जायगी, तो वह खुशी से कम वेतन पर काम करेंगे; लेकिन वह देखते हैं कि बचत दूसरे हड़प जाते हैं, तो वह सोचते हैं, अगर दूसरों को ही खाना है, तो हम क्यों न खायें।

देवी०—तो सुराज मिलने पर दस-दस पाँच-पाँच हजार के अफसर नहीं रहेंगे? वकीलों की लूट नहीं रहेगी? पुलिस की लूट बन्द हो जायगी?

एक क्षण के लिए रमा सिटपिटा गया। इस विषय में उसने खुद कभी विचार न किया था; मगर तुरन्त ही उसे जवाब सूझ गया। बोला—दादा, तब तो सभी काम बहुमत से होगा। अगर बहुमत कहेगा कि कर्मचारियों के वेतन घटा दिये जायं, तो घट जायेंगे। देहातों के संगठन के लिए भी बहुमत जितने रुपये माँगेगा, मिल जायेंगे। कुञ्जी बहुमत के हाथों मे रहेगी। और अभी दस-पाच बरस चाहे न हो, लेकिन आगे चलकर बहुमत किसानों और मजदूरों का ही हो जायगा।

देवीदीन ने मुसकराकर कहा—भैया, तुम भी इन बातों को समझते हो। यही मैंने भी सोचा था। भगवान् करे; अभी कुछ दिन और जीऊँ; मेरा पहला सवाल यह होगा कि विलायती चीजों पर दुगना महसूल लगाया जाय और मोटरों पर चौगुना। अच्छा, अब भोजन बनाओ। साँझ को चलकर कपडे दरजी को दे देंगे। मैं भी जब तक खा लूँ।

शाम को देवीदीन ने आकर कहा—चलो भैया, अब तो अंधेरा हो गया। रमा सिर पर हाथ धरे बैठा हुआ था; मुख पर उदासी छायी हुई थी। बोला—दादा, मैं घर न जाऊँगा।

देवीदीन ने चकित होकर पूछा—क्यों क्या बात हुई?

रमा की आँखें सजल हो गयीं। बोला—कौन-सा मुंह लेकर जाऊँ दादा! मुझे तो डूब मरना चाहिए था।

यह कहते-कहते वह खुलकर रो पड़ा। वह वेदना जो अब तक मूर्छित

पड़ी थी, शीतल जल के यह छींटे पाकर सचेत हो गयी ; और उसके क्रन्दन ने रमा के सारे अस्तित्व को जैसे छेद डाला। इसी क्रन्दन के भय से वह उसे छेड़ता न था, उसे सचेत करने की चेष्टा न करता था, संयत विस्मृति से उसे अचेत ही रखना चाहता था, मानो कोई दुःखिनी माता अपने बालक को इसलिए जगाते डरती हो कि तुरन्त खाने को माँगने लगेगा।

(२७)

कई दिनों के बाद एक दिन कोई ८ बजे रमा पुस्तकालय से लौट रहा था कि मार्ग मे उसे कई युवक शतरंज के किसी नक्शे की बातचीत करते मिले। यह नक्शा वहाँ के एक हिन्दी दैनिकपत्र मैं छपा था और उसे हल करनेवाले को पचास रुपये इनाम देने का वचन दिया गया था। नक्शा असाध्य-सा जान पडता था। कम-से-कम इन युवकों की बातचीत से ऐसा ही टपकता था। यह भी मालूम हुआ कि वहाँ के और भी कितने शतरंजबाजों ने उसे हल करने के लिए भरपूर जोर लगाया, पर कुछ पेश न पाया। अब रमा को याद आया कि पुस्तकालय मे एक पत्र पर बहुत-से आदमी झुके थे और उस नक्शे की नकल कर रहे थे। जो आता था दो-चार मिनट तक वह पत्र देख लेता था। अब मालूम हुआ, यह बात थी।

रमा का इनमे से किसी से भी परिचय न था ; पर वह नक्शा देखने के लिए इतना उत्सुक हो रहा था कि उससे बिना पूछे न रहा गया। बोला—आप लोगों में से किसी के पास वह नकशा है ?

युवकों ने एक कम्बलपोश आदमी को नक्शे की बात पूछते सुना तो समझे, कोई अताई होगा। एक ने रुखाई से कहा—हाँ, है तो ; मगर तुम देखकर क्या करोगे, यहाँ अच्छे-अच्छे गोते खा रहे हैं। एक महाशय जो शतरंज मे अपना सानी नहीं रखते, उसे हल करने के लिए सौ रुपये अपने पास से देने को तैयार हैं।

दूसरा युवक बोला—दिखा क्यों नहीं देते जी ? कौन जाने यही बेचारे हल कर लें शायद इन्हीं की सूझ लड जाय।

इस प्रेरणा मे सज्जनता नहीं, व्यंग्य था ; उसमें यह भाव छिपा था,

कि हमे दिखाने मे कोई उज्र नहीं है, देखकर अपनी आँखों को तृप्त कर लो ; मगर तुम जैसे उल्लू उसे समझ ही नहीं सकते; हल क्या करेंगे !

जान पहचान की एक दूकान मे जाकर उन्होंने रमा को नकशा दिखाया। रमा को तुरन्त याद आ गया, यह नकशा पहले भी कहीं देखा है। सोचने लगा, कहाँ देखा है।

एक युवक ने चुटकी ली—आपने तो हल कर लिया होगा ?

दूसरा—अभी नहीं किया तो एक क्षण मे किये लेते हैं।

तीसरा—जरा दो-एक चाल बताइए तो ?

रमा ने उत्तेजित होकर कहा—यह मैं नहीं कहता कि मैं इसे हल कर ही लूँगा ; मगर ऐसा नकशा मैंने एक बार हल किया है और संभव है, इसे भी हल कर लूँ। जरा कागज पेंसिल दीजिए तो नकल कर लूँ।

युवकों का अविश्वास कुछ कम हुआ। रमा को कागज पेंसिल मिल गया। एक क्षण मे उसने नकशा नकल कर लिया और युवको को धन्यवाद देकर चला। एकाएक उसने फिर पूछा—'प्रजा-मित्र' के सम्पादक के पास ?

रमा ने घर पहुँचकर उस नकशे पर दिमाग लगाना शुरू किया ; लेकिन मुहरों की चालें सोचने की जगह वह यह सोच रहा था कि यह नकशा कहाँ देखा। शायद यह याद आते ही उसे नकशे का हल भी सूझ जायगा। अन्य प्राणियों की तरह मस्तिष्क भी कार्य मे तत्पर न होकर बहाने खोजता है। कोई आधार मिल जाने से वह मानो छुट्टी पा जाता है। रमा आधी रात तक नकशा सामने खोले बैठा रहा। शतरंज की बड़ी-बड़ी मार्के की बाजियाँ खेली थीं, उन सबका नकशा उसे याद था; पर यह नकशा कहाँ देखा ?

सहसा उसकी आँखो के सामने बिजली-सी काँप गयी। खोयी हुई स्मृति मिल गयी। अहा ! राजा साहब ने यह नकशा दिया था। हाँ; ठीक है। लगातार तीन दिन दिमाग लड़ाने के बाद इसे उसने हल किया था। नकशे की नकल भी कर लाया था। फिर तो उसे एक-एक चाल याद आ गयी। एक क्षण मे नकशा हल हो गया। उसने उल्लास के नशे मे जमीन पर दो-तीन कुलाचें लगायीं। मूछों पर ताव दिया, आईने मे मुँह देखा, और चारपाई पर लेट गया। इस तरह अगर महीने

में एक नक्शा मिलता जाय तो क्या पूछना ?

देवीदीन अभी आग सुलगा रहा था, कि रमा प्रसन्न मुख आकर बोला—दादा, जानते हो 'प्रजा-मित्र' अखबार का दफ्तर कहाँ है ?

देवी०—जानता क्यो नही हूँ। यहाँ कौन अखबार है, जिसका पता मुझे न मालूम हो ? 'प्रजा-मित्र' का सपादक एक रगीला युवक है, जो हरदम मुँह मे पान भरे रहता है। मिलने जाओ, तो आँखों से बाते करता है, मगर है हिम्मत का धनी। दो बार जेहल हो आया है।

रमा०—आज जरा वहाँ तक जाओगे ?

देवीदीन ने कातर भाव से कहा—मुझे भेजकर क्या करोगे ? मैं न जा सकूँगा।

'क्या बहुत दूर है ?'

'नहीं, दूर नही है।'

'फिर क्या बात है ?'

देवीदीन ने अपराधियों के भाव से कहा—बात कुछ नहीं है, बुढ़िया बिगड़ती है। उसे वचन दे चुका हूँ कि सुदेशी-विदेशी के झगडे मे न पड़ूँगा, न किसी अखबार के दफ्तर मे जाऊँगा। उसका दिया खाता हूँ तो उसका हुकुम भी तो बजाना पडेगा।

रमा ने मुसकराकर कहा—दादा, तुम तो दिल्लगी करते हो। मेरा एक बड़ा जरूरी काम है। उसने शतरंज का एक नकशा छापा था, जिसपर पचास रुपया इनाम है। मैंने वह नकशा हल कर दिया है। आज छप जाय, तो मुझे यह इनाम मिल जाय। अखबार के दफ्तर मे अक्सर खुफिया पुलिस के आदमी आते-जाते हैं। यही भय है। नहीं तो मैं खुद चला जाता, लेकिन तुम नहीं जा रहे हो तो लाचारीवश मुझे ही जाना पडेगा। बडी मेहनत से यह नकशा हल किया है। सारी रात जागता रहा हूँ।

देवीदीन ने चिन्तित स्वर मे कहा—तुम्हारा वहाँ जाना ठीक नहीं।

रमा ने हैरान होकर पूछा—तो फिर ? क्या डाक से भेज दूँ ?

देवीदीन ने एक क्षण सोचकर कहा—नहीं, डाक से क्या भेजोगे। सादा लिफाफा इधर-उधर हो जाय तो तुम्हारी मेहनत अकारथ जाय। रजिस्ट्री कराओ तो कहीं परसों पहुँचेगा, कल इतवार है। किसी और ने

जवाब भेज दिया, तो इनाम वह ले जायगा। यह भी तो हो सकता है कि अखबारवाले धाधली कर बैठें और तुम्हारा जवाब अपने नाम से छापकर रुपया हजम कर लें।

रमा ने दुविधे मे पडकर कहा—मैं ही चला जाऊँगा।

'तुम्हें मैं न जाने दूँगा। कही फँस जाओ तो बस!'

'फँसना तो एक दिन है ही! कब तक छिपा रहूँगा?'

'तो मरने के पहले ही क्यों रोना-पीटना हो? जब फँसोगे, तब देखी जायगी, लाओ मैं चला जाऊँ। बुढ़िया से कोई बहाना कर दूँगा। अभी भेंट भी हो जायगी। दफ्तर ही में रहते भी हैं। फिर घूमने-घामने चल देंगे, दस बजे से पहले न लौटेंगे।

रमा ने डरते-डरते कहा—तो दस बजे के बाद जाना, क्या हरज है?

देवीदीन ने खडे होकर कहा—तब तक कोई दूसरा काम आ गया, तो आज रह जायगा। घंटे-भर मे लौट आता हूँ। अभी बुढ़िया देर में आयेगी।

यह कहते हुए देवीदीन ने अपना कम्बल ओढ़ा, रमा से लिफाफा लिया और चल दिया।

जग्गो साग-भाजी और फल लेने मंडी गयी हुई थी। आध घटे में सिर पर एक टोकरी रखे और एक बड़ा-सा टोकरा मजूर के सिर पर रखवाये आयी। पसीने से तर थी। आते ही बोली—कहाँ गये? जरा बोझ तो उतारो, गर्दन टूट गयी।

रमा ने आगे बढ़कर टोकरी उतरवा ली। इतनी भारी थी कि संभाले न संभलती थी।

जग्गो ने पूछा—वह कहाँ गये हैं?

रमा ने बहाना किया—मुझे तो नहीं मालूम, अभी इसी तरफ चले गये है।

बुढ़िया ने मजूर के सिर का टोकरा उतरवाया और जमीन पर बैठकर एक टूटी-सी पंखिया झलती हुई बोली—चरस की चाट लगी होगी और क्या! मैं मर-मर कमाऊँ और यह बैठे बैठे मौज उड़ायें और चरस पीयें।

रमा जानता था, देवीदीन चरस पीता है; पर बुढ़िया को शान्त

करने के लिए बोला—क्या चरस पीते है ? मैंने तो नहीं देखा ।

बुढ़िया ने पीठ की सारी हटाकर, उसे पखे की डडी से खुजलाते हुए कहा—इनसे कौन नशा छूटा है, चरस यह पियें, गाँजा यह पियें, शराब इन्हें चाहिए, भाँग इन्हे चाहिए । हाँ, अभी तक अफीम नहीं खायी, या राम जाने खाते हों, मैं कौन हरदम देखती रहती हूँ। मैं तो सोचती हूँ कौन जाने आगे क्या हो, हाथ मे चार पैसे होंगे, तो पराये भी अपने हो जायँगे, पर इस भले आदमी को रत्ती-भर चिन्ता नही सताती । कभी तीरथ है, कभी कुछ, कभी कुछ; मेरा तो (नाक पर उँगली रखकर) नाक मे दम आ गया । भगवान् उठा ले जाते तो यह कुसग तो छूट जाता । तब याद करेंगे लाला । तब जग्गो कहाँ मिलेगी जो कमा-कमाकर गुल-छर्रे उड़ाने को दिया करेगी । रक्त के आँसू न रोयें, तो कह देना कोई कहता था । (मजूर से) कै पैसे हुए तेरे ?

मजूर ने बीड़ी जलाते हुए कहा—बोझ देख लो माई, गर्दन टूट गयी !

जग्गो ने निर्दय भाव से कहा—हाँ, हाँ, गर्दन टूट गयी ! बड़ा सुकुमार है न ! यह ले, कल फिर चले आना ।

मजूर ने कहा—यह तो बहुत कम है । मेरा पेट न भरेगा । जग्गो ने दो पैसे और थोड़े आलू देकर उसे बिदा किया और दूकान सजाने लगी । सहसा उसे हिसाब की याद आ गयी । रमा से बोली—भैया, जरा आज का खरचा तो टाँक दो । बाजार मे कैसे आग लग गयी है ।

बुढ़िया छबड़ियों मे चीजे लगा-लगाकर रखती जाती थी और हिसाब भी लिखाती जाती थी । आलू, टमाटर, कद्दू, केले पालक, सेम, सन्तरे, गोभी, सब चीजों का तौल और दर उसे याद थी। रमा से दोबारा पढ़वा कर उसने सुना, तब उसे संतोष हुआ । इन सब कामों से छुट्टी पाकर उसने अपनी चिलम भरी और मोढे पर बैठकर पीने लगी, लेकिन उसके अन्दाज से मालूम होता था कि वह तम्बाकू का रस लेने के लिए नहीं, दिल को जलाने के लिए पी रही है । एक क्षण के बाद बोली—दूसरी औरत होती तो घडी भर इनके साथ निबाह न होता । पहर रात से चक्की मे जुत जाती हूँ और दस बजे रात तक दूकान पर बैठी सती होती रहती हूँ ! खाते-पीते बारह बजते हैं । तब जाकर चार पैसे दिखायी देते हैं; और जो

कुछ कमाती हूँ, यह नशे मे बरबाद कर देता है। सात कोठरी मे छिपा के रखूँ, पर इसकी निगाह पहुँच जाती है। निकाल लेता है। कभी एक-आध चीज-वस्तु बनवा लेती हूँ तो वह आँखों मे गड़ने लगती है! तानों मे छेदने लगता है। भाग्य मे लड़कों का सुख भोगना नही बदा था, तो क्या करूँ? छाती फाडके मर जाऊँ? माँगे से मौत भी तो नहीं मिलती। सुख भोगना लिखा होता, तो जवान बेटे चल देते, और इस पियक्कड के हाथों मेरी यह साँसत होती? इसी ने सुदेसी के झगडे मे पडकर मेरे लालों की जान ली। आओ इस कोठरी मे भैया, तुम्हें सुन्दर की जोडी दिखाऊँ। दोनों इस जोड़ी से पाँच-पाँच सौ हाथ फेरते थे।

अँधेरी कोठरी मे जाकर रमा ने सुन्दर की जोड़ी देखी उस पर वार्निश थी, साफ-सुथरी, मानो किसी ने फेरकर रख दिया हो।

बुढिया ने सगर्व नेत्रों से देखकर कहा—लोग कहते थे कि यह जोड़ी महा ब्राह्मन को दे दो, तुझे देख-देख कलक होगा। मैंने कहा—यह जोडी मेरे लालों की जुगल जोडी है। यही मेरे दोनों लाल हैं।

बुढिया के प्रति आज रमा के हृदय मे असीम श्रद्धा जाग्रत हुई। कितना पावन धैर्य है, कितनी विशाल वत्सलता, जिसने लकडी के इन दो टुकडों को जीवन प्रदान कर दिया है! रमा ने जग्गो को माया और लोभ मे डूबी हुई, पैसे पर जान देनेवाली, कोमल भावों से सर्वथा विहीन समझ रखा था। आज उसे विदित हुआ कि उसका हृदय कितना स्नेह-मय, कितना कोमल, कितना मनस्वी है। बुढ़िया ने उसके मुँह की ओर देखा तो न जाने क्यों उसका मातृ-हृदय उसे गले लगाने के लिए अधीर हो उठा। दोनों के हृदय प्रेम के सूत्र में बँध गये। एक ओर पुत्र-स्नेह था, दूसरी ओर मातृ-भक्ति। वह मालिन्य जो अब तक गुप्त भाव से दोनों को पृथक् किये था, आज एकाएक दूर हो गया।

बुढ़िया ने कहा—मुँह धो लिया है न बेटा! बड़े मीठे सन्तरे लायी हूँ, एक लेकर चखो तो।

रमा ने सन्तरा खाते हुए कहा—आज से मैं तुम्हें अम्मा कहा करूँगा।

बुढिया के शुष्क, ज्योतिहीन, ठंडे, कृपण नेत्रों से मोती के-से दो बिन्दु निकल पडे ।

इतने मे देवीदीन दबे पाँव आकर खड़ा हो गया ? बुढ़िया ने तड़पकर पूछा—यह इतने सबेरे किधर सवारी गयी थी सरकार की ?

देवी ने सरलता से मुसकराकर कहा—कहीं नहीं, जरा एक काम से चला गया था।

'क्या काम था, जरा मैं भी सुनूँ, या मेरे सुनने लायक नहीं है ?'

'पेट मे दरद था, जरा बैदजी के पास चूरन लेने गया था ।'

'झूठे हो तुम, उड़ो उससे जो तुम्हे जानता न हो। चरस की टोह मे गये थे तुम।'

'नहीं, तेरे चरन छूकर कहता हूँ। तू झूठ-मूठ मुझे बदनाम करती है।'

'तो फिर कहाँ गये थे तुम ?'

'बता तो दिया। रात खाना दो कौर ज्यादा खा गया था, सो पेट फूल गया, और मीठा-मीठा '

'झूठ है, बिल्कुल झूठ ! तुम चाहे झूठ बोलो, तुम्हारा मुँह साफ कहे देता है, यह बहाना है, चरस,गाँजा इसी टोह मे गये थे तुम। एक न मानूँगी। तुम्हें इस बुढापे मे नसे की सूझती है, यहाँ मेरा मरन हुआ जाता है। सबेरे के गये-गये नौ बजे लौटे है, जानो यहाँ कोई लौडी है !'

देवीदीन ने एक झाड़ू लेकर दूकान मे झाड़ू लगाना शुरू किया, पर बुढ़िया ने उसके हाथ से झाड़ू छीन लिया और पूछा—तुम अब तक थे कहाँ ? जब तक यह न बताओगे, भीतर घुसने न दूँगी।

देवीदीन ने सिटपिटाकर कहा—क्या करेगी पूछकर, एक अखबार के दफ्तर मे तो गया था। जो चाहे कर ले।

बुढिया ने माथा ठोंककर कहा—तुमने फिर वही लत पकड़ी ? तुमने कान पकडा था कि अब कभी अखबारों के नगीच न आऊँगा। बोलो, यही मुह था कि कोई और ?

'तू बात तो समझती नहीं, बस बिगड़ने लगती है ;'

'खूब समझती हूँ। अखबारवाले दगा मचाते हैं और गरीबों को जेहल ले जाते हैं। आज बीस साल से देख रही हूँ। जहाँ जो आता-जाता है। पकड़ लिया जाता है, तलासी तो आये दिन हुआ करती है।

क्या बुढ़ापे में जेहल की रोटियाँ तोड़ोगे ?'

देवीदीन ने एक लिफाफा रमानाथ को देकर कहा—यह रुपये हैं, भैया, गिन लो। देख, यह रुपये वसूल करने गया था। जी न मानता हो, तो आधे ले लो। बुढ़िया ने आँखें फाड़कर कहा—अच्छा ! तो तुम अपने साथ इस बेचारे को भी डुबाना चाहते हो ? तुम्हारे रुपये में आग लगा दूँगी। तुम रुपये मत लेना भैया। जान से हाथ धोओगे। अब सेंतमेंत आदमी नहीं मिलते, तो लालच दिलाकर लोगों को फँसाते हैं। बाजार में पहरा दिलवावेंगे, अदालत में गवाही करावेंगे। फेंक दो उसके रुपये। जितने रुपये चाहो, मुझसे ले जाओ !

जब रमानाथ ने सारा वृत्तान्त कहा तो बुढ़िया का चित्त शांत हुआ। तनी हुई भवें ढीली पड़ गयीं, कठोर मुद्रा नर्म हो गयी। मेघ-पट को हटाकर, नीला आकाश हँस पड़ा। विनोद करके बोली—इसमें से मेरे लिए क्या लाओगे बेटा ?

रमा ने लिफाफा उसके सामने रखकर कहा—तुम्हारे तो सभी हैं अम्मा, मैं रुपये क्या करूँगा ?

'घर क्यों नहीं भेज देते ? इतने दिन आये हो गये, कुछ भेजा नहीं।'

'मेरा घर यही है, अम्मा। कोई दूसरा घर नहीं है।'

बुढ़िया का वंचित हृदय गद्गद् हो उठा। इस मातृ-भक्ति के लिए कितने दिनों से उसकी आत्मा तड़प रही थी। इस कृपण हृदय में जितना प्रेम संचित हो रहा था, वह सब माता के स्तन में एकत्र होनेवाले दूध की भाँति निकलने के लिए आतुर हो गया।

उसके नोटों को गिनकर कहा—पचास हैं बेटा ! पचास मुझसे और ले लो। चाय का पतीला रखा हुआ है। चाय की दूकान खोल दो। यहीं एक तरफ पाँच-चार मोढ़े और एक मेज रख लेना। दो-दो घण्टे साँझ-सवेरे बैठ जाओगे तो गुजर भर को मिल जायगा। हमारे जितने गाहक आवेंगे, उनमें से कितने ही चाय भी लेंगे।

देवीदीन बोला—तब चरस के पैसे मैं इस दूकान से लिया करूँगा।

बुढ़िया ने विहँसित और पुलकित नेत्रों से देखकर कहा—कौड़ी-कौड़ी का हिसाब लूँगी। इस फेर में न रहना।

रमा अपने कमरे मे गया, तो उसका मन बहुत प्रसन्न था। आज उसे कुछ वह आनन्द मिल रहा था, जो अपने घर भी कभी न मिला था। घर पर जो नेह मिलता था, वह उसे मिलना ही चाहिए था। वहाँ जो स्नेह मिला, वह मानो आकाश से टपका था।

उसने स्नान किया; माथे पर तिलक लगाया और पूजा का स्वाँग भरने बैठा कि बुढ़िया आकर बोली—बेटा, तुम्हे: रसोई बनाने मे बडी तकलीफ होती है, मैंने एक ब्राह्मनी ठीक कर दी है। बेचारी गरीब है। तुम्हारा भोजन बना दिया करेगी। उसके हाथ का तुम खा लोगे। धरम-करम से रहती है बेटा, ऐसी बात नहीं है। मुझसे रुपये-पैसे उधार ले जाती है, इसीसे राजी हो गयी है।

उन वृद्ध आँखों से प्रगाढ़, अखंड मातृत्व झलक रहा था—कितना विशुद्ध कितना पवित्र! ऊँच-नीच और जाति की मर्यादा का विचार आप-ही-आप मिट गया। बोला—जब तुम मेरी माता हो गयीं, तो फिर काहे का छूत-विचार? मैं तुम्हारे हाथ का खाऊँगा।

बुढ़िया ने जीभ दातो से दबाकर कहा—अरे नहीं बेटा, मैं तुम्हारा धरम न लूंगी। कहाँ तुम ब्राह्मन और कहाँ हम खटिक! ऐसा कहीं हुआ है?

'मैं तो तुम्हारी रसोई मे खाऊँगा। जब माँ-बाप खटिक है, तो बेटा भी खटिक है। जिसकी आत्मा बड़ी हो, वही ब्राह्मण है।'

'और जो तुम्हारे घरवाले सुनें तो क्या कहें!'

मुझे किसी के कहने-सुनने की चिन्ता नही है, अम्मा। आदमी पाप से नीच होता है, खाने-पीने से नीच नहीं होता। प्रेम से जो भोजन मिलता है; वह पवित्र होता है। उसे तो देवता भी खाते है।'

बुढ़िया के हृदय मे भी जाति-गौरव का भाव उदय हुआ। बोली —बेटा खटिक कोई नीच जाति नहीं हैं। हम लोग ब्राह्मन के हाथ का भी नही खाते। कहार का पानी तक नहीं पीते। मास-मछरी हाथ से नहीं छूते। कोई-कोई शराब पीते हैं, मुदा लुक-छुपकर। इसने किसी को नहीं छोड़ा बेटा। बडे-बडे तिलकधारी गटागट पीते है। लेकिन मेरी रोटियाँ अच्छी लगेंगी?

रमा ने मुसकराकर कहा—प्रेम की रोटियों मे अमृत रहता है अम्मा, चाहे गेहूँ की हों या बाजरे की।

बुढ़िया यहाँ से चली तो मानों अंचल मे आनन्द की निधि भरे हो।

(२८)

जब से रमा चला गया, रतन को जालपा के विषय मे बड़ी चिन्ता हो गयी थी। वह किसी बहाने से उसकी मदद करते रहना चाहती थी। इसके साथ ही यह भी चाहती थी कि जालपा किसी तरह ताड़ने न पाये। अगर कुछ रुपया खर्च करके भी रमा का पता चल सकता, तो वह सहर्ष खर्च कर देती। जालपा की रोती हुई आँखे देखकर उसका दिल मसोस उठता था। वह उसे प्रसन्न मुख देखना चाहती थी। अपने अँधेरे, रोने घर से ऊबकर वह जालपा के घर चली जाया करती। वहाँ घड़ी भर हँस-बोल लेने से उसका चित्त प्रसन्न हो जाता था। अब वहाँ भी वही नहूसत छा गयी। यहाँ आकर उसे अनुभव होता था कि मैं भी संसार मे हूँ—उस संसार मे जहाँ जीवन है, लालसा है, प्रेम है, विनोद है। उसका अपना जीवन तो व्रत की वेदी हर अर्पित हो गया था। वह तन-मन से व्रत का पालन करती थी; पर शिव-लिंग के ऊपर रखे हुए घट मे क्या वह प्रवाह है, तरङ्ग है, नाद है जो सरिता मे है? वह शिव के मस्तक को शीतल करता रहे, यही उसका काम है; लेकिन क्या उसमे सरिता के प्रवाह और तरङ्ग और नाद का लोप हो गया है?

इसमे सदेह नहीं कि नगर के प्रतिष्ठित और सपन्न घरों में रतन का परिचय था, लेकिन जहाँ प्रतिष्ठा थी वहाँ तकल्लुफ था, दिखावा था, ईर्ष्या थी, निन्दा थी। क्लब के संसर्ग से भी उसे अरुचि हो गयी थी। वहाँ विनोद अवश्य था, क्रीड़ा अवश्य थी, किन्तु पुरुषो के आतुर नेत्र भी थे, विकल हृदय उन्मत्त शब्द भी। जालपा के घर अगर वह शान न थी वह दौलत न थी, तो वह दिखावा भी न था, वह ईर्ष्या भी न थी। रमा जवान था, रूपवान था, चाहे रसिक भी हो; पर रतन को अभी तक उसके विषय मे संदेह करने का कोई अवसर न मिला था, और जालपा जैसी सुन्दरी के रहते हुए उसकी संभावना भी न थी। जीवन के बाजार मे और सभी दूकानदारों की कुटिलता और जटट्टपन से तङ्ग आकर उसने इस छोटी

दूकान का आश्रय लिया था, किन्तु यह दूकान भी टूट गयी। अब वह जीवन की सामग्रियाँ कहाँ बेसाहेगी, सच्चा माल कहाँ पायेगी?

एक दिन वह ग्रामोफोन लायी और शाम तक बजाती रही। दूसरे दिन ताजे मेवो की एक टोकरी लाकर रख गयी। जब आती, कोई-न-कोई सौगात लिये आती। अब तक रामेश्वरी से बहुत कम मिलती थी, पर अब बहुधा उसके पास आ बैठती और इधर-उधर की बाते करती, कभी-कभी उसके सिर मे तेल डालती और बाल गूंधती! गोपी और विश्वम्भर से भी अब उसे स्नेह हो गया। कभी-कभी दोनों को मोटर पर घुमाने ले जाती। स्कूल से आते ही दोनों बंगले पर पहुँच जाते और कई लड़कों के साथ वहाँ खेलते। उनके रोने चिल्लाने और झगड़ने मे रतन को हार्दिक आनन्द प्राप्त होता था। वकील साहब को भी अब रमा के घरवालों से कुछ आत्मीयता हो गयी थी। बार-बार कहते थे—रमा बाबू का कोई खत आया? कुछ पता लगा? उन लोगों को तकलीफ तो नहीं है?

एक दिन रतन आयी, तो चेहरा उतरा हुआ था। आँखें भारी हो रही थीं, जालपा ने पूछा—आज जी अच्छा नहीं है क्या?

रतन ने कुण्ठित स्वर मे कहा—जी तो अच्छा है; पर रात-भर जागना पड़ा। रात से उन्हे बड़ा कष्ट है। जाड़ों मे उनको दमे का दौरा हो जाता है। बेचारे जाड़ों भर एमलशन और सनाटोजन और न जाने कौन से रस खाते रहते हैं; पर यह रोग गला नहीं छोड़ता। कलकत्ते मे एक नामी वैद्य हैं। अबकी उन्हीं से इलाज कराने का इरादा है। कल चली जाऊँगी। मुझे ले तो नहीं जाना चाहते, कहते है, वहाँ बहुत कष्ट होगा, लेकिन मेरा जी नहीं मानता। कोई बोलने वाला तो होना चाहिए। वहाँ दो बार हो आयी हूँ और जब-जब गयी हूँ बीमार हो गयी हूँ। मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगता; लेकिन अपने आराम को देखूं या उनकी बीमारी को देखूं। बहन, कभी-कभी ऐसा जी ऊब जाता है कि थोड़ी-सी सखिया खाकर सो रहूँ। विधाता से इतना भी नहीं देखा जाता। अगर कोई मेरा सर्वस्व लेकर भी इन्हें अच्छा कर दे कि इस बीमारी की जड़ टूट जावे, तो मैं खुशी से दे दूँगी।

जालपा ने संशक होकर कहा—यहाँ किसी वैद्य को नहीं बुलाया?

'यहाँ के वैद्यों को देख चुकी हूँ, बहन। वैद्य-डाक्टर सबको देख चुकी!'

'तो कब तक आओगी?'

'कुछ ठीक नहीं। उनकी बीमारी पर है! एक सप्ताह में आ जाऊँ महीने दो महीने लग जाय, क्या ठीक है; मगर जब तक बीमारी की जड़ न टूट जायगी न जाऊँगी।'

विधि अन्तरिक्ष में बैठी हँस रही थी। जालपा मन में मुसकायी। जिस बीमारी की जड़ जवानी में न टूटी, बुढ़ापे में क्या टूटेगी; लेकिन इस सदिच्छा से सहानुभूति न रखना असम्भव था। बोली—ईश्वर चाहेंगे, तो वह वहाँ से जल्द अच्छे होकर लौटेंगे, बहन।

'तुम भी चलतीं तो बड़ा आनन्द आता।'

जालपा ने करुण भाव से कहा—क्या चलूं बहन, जाने भी पाऊँ। यहाँ दिन भर यह आशा लगी रहती है कि कोई खबर मिलेगी। वहाँ मेरा जी और घबराया करेगा।

'मेरा दिल कहता है कि बाबूजी कलकत्ते में हैं।'

'तो जरा इधर-उधर खोजना। अगर कहीं पता मिले तो मुझे तुरंत खबर देना।'

'यह तुम्हारे कहने की बात नहीं है, जालपा!'

'यह मुझे मालूम है। तो खत तो बराबर भेजती रहोगी?'

'हाँ अवश्य, रोज नहीं तो अंतरे दिन जरूर लिखा करूँगी; मगर तुम भी जवाब देना।'

जालपा पान बनाने लगी। रतन उसके मुंह की ओर अपेक्षा के भाव से ताकती रही, मानो कुछ कहना चाहती है और संकोचवश नहीं कह सकती। जालपा ने पान देते समय उसके मन का भाव ताड़कर कहा—क्या है बहन, क्या कह रही हो?

रतन—कुछ नहीं, मेरे पास कुछ रुपये हैं तुम रख लो। मेरे पास रहेंगे तो खर्च हो जायेंगे।

जालपा ने मुसकरा कर आपत्ति की—और जो मुझसे खर्च हो जाँय तो?

रतन ने प्रफुल्ल मन से कहा—तुम्हारे ही तो हैं बहन, किसी गैर के तो हैं नहीं।

जालपा विचारों मे डूबी हुई जमीन की तरफ ताकती रही। कुछ जवाब न दिया। रतन ने शिकवे के अन्दाज से कहा—तुमने कुछ जवाब नही दिया बहन, मेरी समझ मे नहीं आता तुम मुझसे खिंची क्यों रहती हो। मैं चाहती हूँ, हममे और तुममे जरा भी अन्तर न रहे, लेकिन तुम मुझसे दूर भागती हो! अगर मान लो मेरे सौ-पचास रुपये तुम्हीं से खर्च हो गये, तो क्या हुआ? बहनों मे ऐसा कौड़ी-कौड़ी का हिसाब नहीं होता।

जालपा ने गंभीर होकर कहा—कुछ कहूँ, बुरा तो न मानोगी?

'बुरा मानने की वात होगी तो जरूर बुरा मानूंगी।'

'मैं तुम्हारा दिल दुखाने के लिए नहीं कहती। सभव है, तुम्हे बुरी लगे। तुम अपने मन मे सोचो, तुम्हारे इस बहनापे मे दया का भाव मिला हुआ है या नहीं? तुम मेरी गरीबी पर तरस खाकर....'

रतन ने लपककर दोनों हाथों से उसका मुँह बन्द कर दिया और बोली—बस, अब रहने दो। तुम चाहे जो ख्याल करो, मगर वह भाव कभी मेरे मन मे न था और न हो सकता है। मैं जानती हूँ, अगर मुझे भूख लगी हो, तो मैं निस्संकोच होकर तुमसे कह दूँगी बहन, मुझे कुछ खाने को दो, भूखी हूँ।

जालपा ने उसी निर्ममता से कहा—इस समय ऐसा कह सकती हो। तुम जानती हो किसी दूसरे समय तुम पूरियाँ क्या रोटियों के बदले मेवे खिला सकती हो; लेकिन ईश्वर न करे कोई ऐसा समय आये जब तुम्हारे घर मे रोटी का टुकड़ा न हो, तो शायद तुम इतनी निस्संकोच न हो सको।

रतन ने दृढ़ता से कहा—मुझे उस दशा मे भी तुमसे माँगने में सकोच न होगा। मैत्री परिस्थितियों का विचार नहीं करती। अगर यह विचार बना रहे, तो समझ लो, मैत्री नहीं है। ऐसी बातें करके तुम मेरा द्वार बन्द कर रही हो। मैंने मन मे समझा था, तुम्हारे साथ जीवन के दिन काट दूँगी; लेकिन तुम अभी से चेतावनी दिये देती हो! अभागों को प्रेम की भिक्षा भी नहीं मिलती।

यह कहते-कहते रतन की आँखे सजल हो गयीं। जालपा अपने को

दुखिनी समझ रही थी और दुखी जनों को निर्भय कहने की स्वाधीनता होती है; लेकिन रतन की मनोव्यथा उसकी व्यथा से कहीं विदारक थी। जालपा के पति के लौट आने की आशा अभी थी। वह जवान है, उसके आते ही जालपा को ये बुरे दिन भूल जायँगे। उसकी आशाओं का सूर्य फिर उदय होगा! उसकी इच्छाएँ फिर फूलेंगी। भविष्य अपनी सारी आशाओं और आकांक्षाओं के साथ उसके सामने था—विशाल, उज्ज्वल, रमणीक। रतन का भविष्य क्या था? कुछ नहीं, शून्य, अन्धकार!

जालपा आँखें पोंछकर उठ खड़ी हुई। बोली—पत्रों के जवाब देती रहना। रुपये देती जाओ।

रतन ने पर्स से नोटों का एक बंडल निकालकर उसके सामने रख दिया; पर उसके चेहरे पर प्रसन्नता न थी।

जालपा ने सरल भाव से कहा—बुरा मान गयीं।

रतन ने रूठे हुए शब्दों मे कहा—बुरा मानकर तुम्हारा क्या कर लूंगी।

जालपा ने उसके गले मे बाहें डाल दीं। अनुराग से उसका हृदय गद्‌गद्‌ हो गया। रतन से उसे इतना प्रेम कभी न हुआ था। वह उससे अब तक खिंचती थी, ईर्ष्या करती थी। आज उसे रतन का असली रूप दिखायी दिया। यह सचमुच अभागिनी है और मुझसे बढ़कर।

एक क्षण बाद, रतन आँखों मे आँसू और हँसी एक साथ भरे विदा हो गयी।

(२६)

कलकत्ते में वकील साहब ने ठहरने का पहले ही इन्तजाम कर लिया था। कोई कष्ट न हुआ। रतन ने महाराज और टीमल कहार को साथ ले लिया था। दोनों वकील साहब के पुराने नौकर थे और घर के-से आदमी हो गये थे। शहर के बाहर एक बँगला था। उसके कमरे मिल गये। इससे ज्यादा जगह की वहाँ जरूरत भी न थी। हाते मे तरह-तरह के फूल-पौधे लगे हुए थे। स्थान बहुत सुन्दर मालूम होता था। पास-पड़ोस में और कितने ही बँगले थे। शहर के लोग उधर हवाखोरी के लिए जाया करते थे, और हरे होकर लौटते थे; पर रतन को वह जगह फाड़े खाती थी।

बीमार के साथ वाले भी बीमार होते है। उदासों के लिए स्वर्ग भी उदास है!

सफर ने वकील साहब को और भी शिथिल कर दिया था। दो-तीन दिन तो उनकी दशा उससे भी खराब रही, जैसी प्रयाग में थी लेकिन दवा दारू होने के दो-तीन दिन बाद वह कुछ सँभलने लगे। रतन सुबह से आधी रात तक उनके पास कुरसी डाले बैठी रहती। स्नान-भोजन की भी सुधि न रहती। वकील साहब चाहते थे कि यह यहाँ से हट जाय तो दिल खोलकर कराहें। उसे तसकीन देने के लिए वह अपनी दशा को छिपाने की चेष्टा करते रहते थे। वह पूछती, आज कैसी तबीयत है? तो वह फीकी मुसकराहट के साथ कहते—आज तो जी बहुत हल्का मालूम होता है। बेचारे सारी रात करवटें बदल कर काटते थे, पर रतन पूछती—रात नींद आयी थी? तो कहते—हाँ, खूब सोया। रतन पथ्य सामने ले जाती तो अरुचि होने पर भी खा लेते। रतन समझती अब यह अच्छे हो रहे है। कविराज से भी वह यही समाचार कहती। वह भी अपने उपचार की सफलता पर प्रसन्न थे।

एक दिन वकील साहब ने रतन से कहा—मुझे डर है कि मुझे अच्छा होकर तुम्हारी दवा न करनी पडे।

रतन ने प्रसन्न होकर कहा—इससे बढ़कर क्या बात होगी। मैं तो ईश्वर से मनाती हूँ कि तुम्हारी बीमारी मुझे दे दें।

'शाम को घूम आया करो। अगर बीमार पडने की इच्छा हो, तो मेरे अच्छे हो जाने पर पड़ना।'

'कहाँ जाऊँगी, मेरा कही जाने को जी ही नहीं चाहता। मुझे यहीं सब से अच्छा लगता है।'

वकील साहब को एकाएक रमानाथ का ख्याल आ गया। बोले—जरा शहर के पार्कों मे घूम-घाम कर देखो, शायद रमानाथ का पता चल जाय।

रतन को अपना वादा याद आ गया। रमा को पा जाने की आनन्दमय आशा ने एक क्षण के लिए उसे चचल कर दिया। कहीं वह पार्क मे बैठे मिल जायँ, तो पूछूँ, कहिये बाबूजी, अब कहाँ भाग कर जाइयेगा? इस कल्पना से उसकी मुद्रा खिल उठी बोली—जालपा से मैंने वादा किया था

कि पता लगाऊँगी; पर यहाँ आकर भूल गयी।

वकील साहब ने साग्रह कहा—आज चली जाओ। आज क्या, शाम को रोज घण्टे-भर के लिए निकल जाया करो।

रतन ने चिन्तित होकर कहा—लेकिन चिन्ता तो लगी रहेगी।

वकील साहब ने मुसकराकर कहा—मेरी? मैं तो अच्छा हो रहा हूँ।

रतन ने सन्दिग्ध भाव से कहा—अच्छा, चली जाऊँगी।

रतन को कल से वकील साहब के आश्वासन पर कुछ संदेह होने लगा। उनकी चेष्टा से अच्छे होने का कोई लक्षण उसे न दिखायी देता था। इनका चेहरा क्यों दिन-दिन पीला पड़ता जाता है। इनकी आँखें क्यों हरदम बन्द रहती हैं। देह क्यों दिन-दिन घुलती जाती है। महाराज और कहार से वह यह शंका न कह सकती थी। कविराज से पूछते संकोच होता था। अगर कहीं रमा मिल जाते तो उनसे पूछती। वह इतने दिनों से यहाँ है। किसी दूसरे डाक्टर को दिखाती। इन कविराजजी से उसे कुछ-कुछ निराशा हो चली थी।

जब रतन चली गयी, तो वकील साहब ने टीमल से कहा—मुझे जरा उठाकर बिठा दो टीमल। पडे-पडे कमर सीधी हो गयी। एक प्याला चाय पिला दो। कई दिन हो गये, चाय की सूरत नहीं देखी। यह पथ्य मुझे मारे डालता है। दूध देखकर ज्वर चढ़ आता है; पर उनकी खातिर से पी लेता हूँ। मुझे तो इन कविराज की दवा से कोई फायदा नहीं मालूम होता तुम्हे क्या मालूम होता है?

टीमल ने वकील साहब को तकिये के सहारे बैठाकर कहा—बाबूजी, सो देख लेव, यह तो मैं पहले ही कहने वाला था। सो देख लेव; बहूजी के डर के मारे नहीं कहता था।

वकील साहब ने कई मिनट चुप रहने के बाद कहा—मैं मौत से डरता नहीं, टीमल। बिलकुल नहीं। मुझे स्वर्ग और नरक पर बिल्कुल विश्वास नहीं है। अगर संस्कारों के अनुसार आदमी को जन्म लेना पड़ता है तो मुझे विश्वास है, मेरा जन्म किसी अच्छे घर मे होगा। फिर भी मरने को जी नहीं चाहता। सोचता हूँ, मर गया तो क्या होगा।

टीमल ने कहा—बाबूजी, सो देख लेव, आप ऐसी बातें न करें। भगवान

चाहेंगे, तो अच्छे हो जायेंगे। किसी दूसरे डाक्टर को बुला ऊँ ? लआप लोग तो अँगरेजी पढ़े हैं, सो देख लेव, कुछ मानते ही नहीं। मुझे तो कुछ और ही सन्देह हो रहा है। कभी-कभी गँवारों की भी सुन लिया करो। सो देख लेव, आप मानो चाहे न मानो, मैं तो एक सयाने क लाऊँगा। बँगला के ओझे सयाने मशहूर है।

वकील साहब ने मुँह फेर लिया। प्रेत-बाधा का वह हमेशा मजाक उड़ाया करते थे। कई ओझों को पीट चुके थे। उनका ख्याल था कि यह प्रवंचना है, ढोंग है; लेकिन इस वक्त उनमे शक्ति भी न थी कि टीमल के इस प्रस्ताव का विरोध करते। मुँह फेर लिया।

महाराज ने चाय लाकर कहा—सरकार चाय लाया हूँ।

वकील साहब ने चाय के प्याले को क्षुधित नेत्रों से देखकर कहा—ले जाओ, अब न पीऊँगा। उन्हे मालूम होगा, तो दुःखी होंगी। क्यों महाराज जब से मैं आया हूँ मेरा चेहरा कुछ हरा हुआ है ?

महाराज ने टीमल की ओर देखा। वह हमेशा दूसरों की राय देखकर राय दिया करते थे। खुद सोचने की शक्ति उनमे न थी। अगर टीमल ने कहा है, आप अच्छे हो रहे है, तो वह भी इसका समर्थन करेंगे। टीमल ने इसके विरुद्ध कहा है, तो उन्हे भी इसके विरुद्ध ही कहना चाहिए। टीमल ने उसके असमंजस को भाँपकर कहा—हरा क्यों नहीं हुआ है; जितना होना चाहिए उतना नहीं हुआ।

महाराज बोले—हाँ, कुछ जरूर हुआ है मुदा बहुत कम।

वकील साहब ने कुछ जवाब नहीं दिया। दो-चार वाक्य बोलने के बाद वह शिथिल हो जाते थे और दस-पाँच मिनट शान्त अचेत पडे रहते थे। कदाचित् उन्हें अपनी यथार्थ दशा का ज्ञान हो चुका था। उनके मुख पर, बुद्धि पर, मस्तिष्क पर मृत्यु की छाया पड़ने लगी थी। अगर कुछ आशा थी, तो इतनी ही कि शायद मन की दुर्बलता से उन्हे अपनी दशा इतनी हीन मालूम होती हो। उनका दम अब पहले से ज्यादा फूलने लगा था, कभी-कभी तो ऊपर की साँस ऊपर ही रह जाती थी। जान पडता था, बस प्राण निकला।

भीषण प्राण-वेदना होने लगती थी। कौन जाने, कब यही अवरोध एक क्षण और बढ़कर जीवन का अन्त कर दे।

सामने उद्यान में चाँदनी कुहरे की चादर ओढ़े जमीन पर पड़ी सिसक रही थी। फूल और पौधे मलिन मुख, सिर झुकाये, आशा और भय से विकल होकर मानो उसके वक्ष पर हाथ रखते थे, उसकी शीतल देह की स्पर्श करते थे और आँसू की दो बूँद गिराकर फिर उसी भाँति देखने लगते थे।

सहसा वकील साहब ने आँखें खोलीं। आँखों के कोने में आँसू की दो बूँदें मचल रही थीं।

क्षीण स्वर में बोले—टीमल! क्या सिद्धू आये थे?

फिर इस प्रश्न पर आप ही लज्जित होकर मुस्कराते हुए बोले—मुझे ऐसा मालूम हुआ, जैसे सिद्धू आये हों।

फिर गहरी साँस लेकर चुप हो गये। और आँखें बन्द कर लीं।

सिद्धू उस बेटे का नाम था, जो जवान होकर मर गया था। इस समय वकील साहब को बराबर उसी की याद आ रही थी। कभी उसका बालकपन सामने आ जाता, कभी उसका मरना आगे दिखायी देने लगता—कितने स्पष्ट सजीव चित्र थे। उनकी स्मृति कभी इतनी मूर्तिमान, इतनी चित्रमय न थी।

कई मिनट बाद उन्होंने फिर आँखें खोलीं और इधर-उधर खोई हुई आँखों से देखा। उन्हें अभी ऐसा जान पड़ा था कि मेरी माता आकर पूछ रही हैं, बेटा, तुम्हारा जी कैसा है?

सहसा उन्होंने टीमल से कहा—यहाँ आओ। किसी वकील को बुला लाओ। जल्दी जाओ, नहीं वह घूमकर आती होगी।

इतने में मोटर का हार्न सुनाई दिया और एक पल में रतन आ पहुँची। वकील को बुलाने की बात उड़ गयी।

वकील साहब ने प्रसन्न-मुख होकर पूछा—कहाँ-कहाँ गयीं! कुछ उनका पता मिला?

रतन ने उनके माथे पर हाथ रखते हुए कहा—कई जगह देखा। कहीं न दिखायी दिये। इतने बड़े शहर में लड़कों का पता तो जल्दी चलता नहीं, वह भला क्या मिलेंगे। दवा खाने का समय तो हो गया न?

वकील साहब ने दबी जबान से कहा—लाओ, खा लूँ।

रतन ने दवा निकाली और उन्हे उठाकर पिलायी। इस समय वह न जाने कुछ भयभीत-सी हो रही थी। एक अस्पष्ट, अज्ञात शका उसके हृदय को दबाये हुए थी।

एकाएक उसने कहा—उन लोगों मे से किसी को तार दे दूँ?

वकील साहब ने प्रश्न की आँखों से देखा। फिर आप-ही-आप उसका आशय समझकर बोले—नहीं, नही, किसी को बुलाने की जरूरत नहीं। मैं अच्छा हो रहा हूँ।

फिर एक क्षण के बाद सावधान होने की चेष्टा करके बोले—मैं चाहता हूँ कि अपनी वसीयत लिखवा दूँ।

जैसे एक शीतल तीव्र वाण रतन के पैरों से घुसकर सिर से निकल गया; मानो उसकी देह के सारे बन्धन खुल गये, सारे अवयव बिखर गए। उसके मस्तिष्क के सारे परमाणु हवा मे उड़ गये; मानो नीचे से धरती निकल गयी, ऊपर से आकाश निकल गया, और अब वह निराधार, निःस्पन्द, निर्जीव खड़ी है! अवरुद्ध, अश्रु-कपित कंठ से बोली—घर से किसी को बुलाऊँ? यहाँ किससे सलाह ली जाय? कोई भी तो अपना नहीं है।

अपनों के लिए इस समय रतन अधीर हो रही थी। कोई भी तो अपना होता, जिसपर वह विश्वास कर सकती, जिससे सलाह ले सकती। घर के लोग आ जाते, तो दौड़-धूप करके किसी दूसरे डाक्टर को बुलाते। वह अकेली क्या-क्या करे? आखिर भाई-बन्द और किस दिन काम आते? सकट मे ही तो अपने काम आते हैं? फिर यह क्यों कहते है कि किसी को मत बुलाओ?

वसीयत की बात फिर उसे याद आ गयी। यह विचार क्यों इनके मन मे आया? वैद्यजी ने कुछ कहा तो नही? क्या होनेवाला है भगवान्। यह शब्द अपने सारे ससर्गों के साथ उसके हृदय को विदीर्ण करने लगा। चिल्ला-चिल्लाकर रोने के लिए उसका मन विकल हो उठा। अपनी माता याद आयी। उसके अंचल मे मुँह छिपाकर रोने की आकांक्षा उसके मन मे उत्पन्न हुई। उस स्नेहमय अचल मे रोकर उसकी बाल-आत्मा को कितना संतोष होता था। कितनी जल्द उसकी सारी मनोव्यथा

शान्त हो जाती थी। आह! वह आधार भी अब नहीं!

महाराज ने आकर कहा—सरकार भोजन तैयार है; थाली परसूँ?

रतन ने उसकी ओर कठोर नेत्रों से देखा। वह बिना जवाब की अपेक्षा किये चुपके से चला गया।

मगर एक ही क्षण में रतन को महाराज पर दया आ गयी। उसने कौन-सी बुराई की जो भोजन के लिए पूछने आया? भोजन भी ऐसी चीज है, जिसे कोई छोड़ सके? वह रसोई में जाकर महाराज से बोली—तुम लोग खा लो, महाराज! मुझे आज भूख नहीं लगी है।

महाराज ने आग्रह किया—दो ही फुलके खा लीजिए सरकार।

रतन ठिठक गयी। महाराज के आग्रह में इतनी सहृदयता, इतनी समवेदना भरी हुई थी कि रतन को एक प्रकार की सान्त्वना का अनुभव हुआ। यहाँ कोई अपना नहीं है, यह सोचने में उसे अपनी भूल प्रतीत हुई। महाराज ने अब तक रतन को कठोर स्वामिनी के रूप में देखा था। वही स्वामिनी आज उसके सामने खड़ी मानों सहानुभूति की भिक्षा माँग रही थी। उसकी सारी सद्‌वृत्तियाँ उमड़ उठीं। रतन को उसके दुर्बल मुख पर अनुराग का तेज नजर आया।

उसने पूछा—क्यों महाराज, बाबूजी को इस कविराज की दवा से कोई लाभ हो रहा है?

महाराज ने डरते-डरते वही शब्द दुहरा दिये, जो वकील साहब से कहे थे—कुछ-कुछ तो हो रहा है, लेकिन जितना होना चाहिए उतना नहीं।

रतन ने अविश्वास के अन्दाज से देखकर कहा—तुम भी मुझे धोखा देते हो, महाराज?

महाराज की आँखे डबडबा गयीं। बोले—भगवान् सब अच्छा ही करेंगे बहूजी, घबराने से क्या होगा! अपना तो कोई बस नहीं है।

रतन ने पूछा—यहाँ कोई ज्योतिषी न मिलेगा? जरा उनसे पूछते। कुछ पाठ-पूजा भी करा लेने से अच्छा होता है।

महाराज ने तुष्टि के भाव से कहा—यह तो मैं पहले कहनेवाला था बहूजी, लेकिन बाबूजी का मिजाज तो जानती हो। इन बातों से वह कितना बिगड़ते हैं।

रतन ने दृढ़ता से कहा—सबेरे किसी को जरूर बुला लाना।

'सरकार चिढ़ेंगे।'

'मैं जो कहती हूँ।'

यह कहती हुई वह कमरे मे आयी और रोशनी के सामने बैठकर जालपा को पत्र लिखने लगी—

'बहन, नहीं कह सकती क्या होने वाला है। आज मुझे मालूम हुआ कि मैं अब तक मीठे भ्रम मे पड़ी हुई थी। बाबूजी अब तक मुझसे अपनी दशा छिपाते थे; मगर आज यह बात उनके काबू के बाहर हो गई। तुमसे क्या कहूँ, आज वह वसीयत लिखाने की चर्चा कर रहे थे। मैंने ही टाला। दिल घबरा रहा है। बहन, जी चाहता है, थोड़ी-सी सखिया खाकर सो रहूँ। विधाता को ससार दयालु, कृपालु, दीनबन्धु और जाने कौन-कौन सी उपाधियाँ देता है। मैं कहती हूँ, उससे निर्दयी, निर्मम, निष्ठुर कोई शत्रु भी नहीं हो सकता। पूर्व जन्म का संस्कार केवल मन को समझाने की चीज है। जिस दण्ड का हेतु ही हमे न मालूम हो, उस दण्ड का मूल्य ही क्या? वह तो जबरदस्त की लाठी है, जो आघात करने के लिए कोई कारण गढ़ लेती है। इस अँधेरे, निर्जन, काँटों से भरे हुए जीवन-मार्ग मे केवल एक टिमटिमाता हुआ दीपक मिला था। मैं उसे अचल मे छिपाये, विधि को धन्यवाद देती हुई, गाती चली जाती थी; पर वह दीपक भी मुझसे छीना जा रहा है! इस अन्धकार मे मैं कहाँ जाऊँगी, कौन मेरा रोना सुनेगा कौन मेरी बाँह पकडेगा?

'बहन, मुझे क्षमा करना। मुझे बाबूजी का पता लगाने का अवकाश नहीं मिला। आज कई पार्कों मे चक्कर लगा आयी, पर कहीं पता नहीं चला। कुछ अवसर मिला तो फिर जाऊँगी। माता जी को मेरा प्रणाम कहना।'

पत्र लिखकर रतन बरामदे मे आयी। शीतल पवन के झोंके आ रहे थे। प्रकृति मानो रोगशय्या पर पडी सिसक रही थी।

(३०)

उसी वक्त वकील साहब की साँस वेग से चलने लगी।

रात के तीन बज चुके थे। रतन आधी रात के बाद आराम-

कुर्सी पर लेटे-ही-लेटे झपकियाँ ले रही थी कि सहसा वकील साहब के गले का खर्राटा सुनकर चौक पड़ी। उलटी साँस चल रही थी। वह उनके सिरहाने चारपाई पर बैठ गयी और उनका सिर उठा कर अपनी जाँघ पर रख लिया। अभी न जाने कितनी रात बाकी है। मेज पर रखी हुई छोटी घडी की ओर देखा; अभी तीन बजे थे। सवेरा होने मे अभी चार घण्टे की देर थी। कविराज कहीं नौ बजे आयेंगे। यह सोचकर वह हताश हो गयी। यह अभागिन रात क्या अपना काला मुँह लेकर विदा न होगी? मालूम होता है, एक युग हो गया।

कई मिनट के बाद वकील साहब की साँस रुकी; सारी देह पसीने से तर थी। हाथ से रतन को हट जाने का इशारा किया और तकिये पर सिर रख फिर आँखे बन्द कर लीं।

एकाएक उन्होंने क्षीण स्वर मे कहा—रतन, अब बिदाई का समय आ गया। मेरे अपराध . .. .

उन्होंने दोनों हाथ जोड़ लिये और उसकी ओर दीन याचना की आँखों से देखा। कुछ कहना चाहते थे, पर मुँह से आवाज न निकली।

रतन ने चीखकर कहा—टीमल! महाराज! क्या दोनों मर गये?

महाराज ने आकर कहा—मैं सोया थोड़े ही था, बहूजी! क्या बाबूजी ...

रतन ने डाँटकर कहा—बको मत, जाकर कविराज को बुला लाओ। कहना, अभी चलिए।

महाराज ने तुरन्त अपना पुराना ओवरकोट पहना, सोटा उठाया और चल दिया। रतन उठकर स्टोव जलाने लगी, कि शायद सेक से कुछ फायदा हो। उसकी सारी घबराहट, सारी दुर्बलता सारा शोक मानो लुप्त हो गया। उसकी जगह एक प्रबल आत्मनिर्भरता का उदय हुआ। कठोर कर्तव्य ने सारे अस्तित्व को सचेत कर दिया।

स्टोव जलाकर उसने रुई के गाले से छाती को सेकना शुरू किया। कोई पन्द्रह मिनट तक ताबड़-तोड सेकने के बाद वकील साहब की साँस कुछ थमी। आवाज काबू मे हुई। रतन के दोनों हाथ अपने गालों पर रखकर बोले—तुम्हे बडी तकलीफ हो रही है, मुन्नी! क्या जानता था इतनी जल्द यह समय आ जायगा। मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया

है, प्रिये ! ओह, कितना बड़ा अन्याय ! मन की सारी लालसा मन में रह गयी। मैंने तुम्हारे जीवन का सर्वनाश कर दिया—मुझे क्षमा करना।

यही अन्तिम शब्द थे जो उनके मुख से निकले। यही जीवन का अंतिम सूत्र था, यही मोह का अन्तिम बन्धन था।

रतन ने द्वार की ओर देखा। अभी तक महाराज का पता न था। हाँ, टीमल खड़ा था और सामने अथाह अन्धकार जैसे जीवन की अन्तिम वेदना से मूर्छित पड़ा था।

रतन ने कहा—टीमल, जरा पानी गरम करोगे ?

टीमल ने वहीं खड़े-खड़े कहा—पानी गरम करके क्या करोगी, बहूजी, गोदान करा दो। दो बूद गगाजल मुह मे डाल दो।

रतन ने पति की छाती पर हाथ रखा। छाती गरम थी। उसने फिर द्वार की ओर ताका। महाराज न दिखायी दिये। वह अब भी सोच रही थी, कविराज जी आ जाते तो शायद इनकी हालत सँभल जाती। पछता रही थी कि इन्हे यहाँ क्यों लायी। कदाचित् रास्ते की तकलीफ और जलवायु ने बीमारी को असाध्य कर दिया। यह भी पछतावा हो रहा था कि मैं सन्ध्या समय क्यों घूमने चली गयी। शायद उतनी ही देर मे इन्हें ठण्ड लग गयी। जीवन एक दीर्घ पाश्चात्ताप के सिवा और क्या है !

पछतावे की एक-दो बात थी ? इस आठ साल के जीवन मे मैंने पति को क्या आराम पहुँचाया ? वह बारह बजे रात तक कानूनी पुस्तकें देखते रहते थे, मैं पड़ी सोती रहती थी। वह सन्ध्या समय भी मुवक्किलों से मामले की बातें करते थे, मैं पार्क और सिनेमा की सैर करती थी, बाजारों मे मटर-गश्ती करती थी। मैंने इन्हे धनोपार्जन के एक यंत्र के सिवा और क्या समझा ? यह कितना चाहते थे कि मैं इनके साथ बैठूं और बातें करूँ; पर भागती फिरती थी। मैंने कभी इनके हृदय के समीप जाने की चेष्टा नहीं की, कभी प्रेम की दृष्टि से नहीं देखा। अपने घर मे दीपक न जलाकर दूसरों के उजाले घर का आनन्द उठाती फिरती—मनोरंजन के सिवा मुझे और कुछ सूझता ही न था। विलास और मनोरंजन, यही मेरे जीवन के दो लक्ष्य थे। अपने जले हुए दिल को इस तरह शान्त करके मैं सन्तुष्ट थी। खीर और मलाई की थाली क्यों न मुझे

मिली, इस क्षोभ मे मैंने अपनी रोटियों को लात मार दी।

आज रतन को उस प्रेम का पूर्ण परिचय मिला, जो इस विदा होने वाली आत्मा को उससे था। वह इस समय भी उसी की चिन्ता में मग्न थी। रतन के लिए जीवन मे फिर आनन्द था, कुछ रुचि थी, कुछ उत्साह था। इनके लिए जीवन मे कौन-सा सुख था। न खाने-पीने का सुख, न मेले तमाशे का शौक। जीवन क्या एक दीर्घ तपस्या थी, जिसका मुख्य उद्देश्य कर्तव्य का पालन था। क्या रतन उनका जीवन सुखी न बना सकती थी? क्या एक क्षण के लिए कठोर कर्तव्य की चिन्ताओं से उन्हे मुक्त न कर सकती थी? कौन कह सकता है कि विराम और विश्राम से वह बुझने वाला दीपक कुछ दिन और न प्रकाशमान रहता; लेकिन उसने कभी अपने पति के प्रति अपना कर्तव्य ही न समझा। उसकी अन्तरात्मा सदैव विद्रोह करती रही, केवल इसलिए कि इनसे मेरा सम्बन्ध क्यों हुआ। क्या उस विषय मे सारा अपराध इन्हीं का था? कौन कह सकता है कि दरिद्र माता-पिता ने मेरी भी दुर्गति न की होती—जवान आदमी भी सब-के-सब क्या आदर्श ही होते है? उनमे भी तो व्यभिचारी, क्रोधी, शराबी, सभी तरह के होते हैं। कौन कह सकता है, इस समय मैं किस दशा में होती। रतन का एक-एक रोआँ इस समय उसका तिरस्कार कर रहा था। उसने पति के शीतल चरणों पर सिर झुका लिया और बिलख-बिलखकर रोने लगी। वह सारे कठोर भाव जो बराबर उसके मन मे उठते रहते थे, वह सारे कटु वचन जो उसने जल-जलकर उन्हे कहे थे, इस समय सैकड़ों बिच्छुओं के समान डंक मार रहे थे, हाय! मेरा यह व्यवहार उस प्राणी के साथ था, जो सागर की भाँति गम्भीर था। इस हृदय मे कितनी कोमलता थी, कितनी उदारता! मैं एक बीड़ा पान दे देती थी तो कितने प्रसन्न हो जाते थे; जरा हँसकर बोल देती थी, तो कितने तृप्त हो जाते थे, पर मुझसे इतना भी न होता था। इन बातों को याद करके उसका हृदय फटा जाता था उसे केवल प्रबल आकांक्षा हो रही थी कि इन चरणों पर सिर रखे हुए मेरे प्राण इसी क्षण निकल जायँ। उन चरणों को मस्तक से स्पर्श करके आज उसके हृदय मे कितना अनुराग उमड़ा आता था, मानो एक युग की संचित निधि को वह आज ही, इसी क्षण

लुटा देगी। मृत्यु की दिव्य ज्योति के सम्मुख उसके अन्दर का सारा मालिन्य, सारी दुर्भावना, सारा विद्रोह मिट गया था।

वकील साहब की आँखें खुली हुई थीं; पर मुख पर किसी भाव का चिह्न न था। रतन की विह्वलता भी अब उनकी बुझती हुई चेतना को प्रदीप्त न कर सकती थी। हर्ष और शोक के बन्धन से वह मुक्त हो गये थे, कोई रोये तो गम नहीं, हँसे तो खुशी नहीं।

टीमल ने आचमनी में गंगाजल लेकर उनके मुँह मे डाल दिया। आज उन्होंने कुछ बाधा न दी। वह जो पाखड और रूढियों का शत्रु था, इस समय शान्त हो गया था; इसलिए नही कि उसमे धार्मिक विश्वास का उदय हो गया था, बल्कि इसलिए कि उसमे अब कोई इच्छा न थी। इतनी ही उदासीनता से वह विष का घूट पी जाता।

मानव-जीवन की सबसे महान् घटना कितनी शान्ति के साथ घटित हो जाती है। वह विश्व का एक महान् व्यंग, वह महत्वाकाक्षाओं का प्रचण्ड सागर, वह उद्योग का अनन्त भण्डार, वह प्रेम और द्वेष, सुख और दुःख का लीला-क्षेत्र, वह बुद्धि और बल की रगभूमि न जाने कब और कहाँ लीन हो जाती है, किसी को खबर नहीं होती। एक हिचकी भी नहीं, एक उच्छ्वास भी नही, एक आह भी नहीं निकलती! सागर की हिलोरों का कहाँ अन्त होता है, कौन बता सकता है? ध्वनि कहाँ वायुमग्न हो जाती है, कौन जानता है। मानवीय जीवन उस हिलोर के सिवा, उस ध्वनि के सिवा और क्या है? उसका अवसान भी उतना ही शान्त, उतना ही अदृश्य हो तो क्या आश्चर्य है? भूतों के भक्त पूछते हैं, क्या वस्तु निकल गयी? कोई विज्ञान का उपासक कहता है, एक क्षीण ज्योति निकल जाती है। कपोल-विज्ञान के पुजारी कहते है, आँखों से प्राण निकले, मुंह से निकले; ब्रह्माण्ड से निकले! कोई उनसे पूछे, हिलोर लय होते समय क्या चमक उठती है? ध्वनि लीन होते समय क्या चमक उठती है? ध्वनि लीन होते समय क्या मूर्तिमान् हो जाती है? यह उस अनन्त यात्रा का एक विश्राम मात्र है जहाँ यात्रा का अन्त नहीं, नया उत्थान होता है!

कितना महान परिवर्तन है! वह जो मच्छर के डक को सहन न कर

सकता था, अब उसे चाहे मिट्टी मे दबा दो, चाहे अग्नि-चिता पर रख दो उसके माथे पर बल तक न पडेगा।

टीमल ने वकील साहब के मुख की ओर देखकर कहा—बहूजी, आइए खाट से उतार दे। मालिक चले गये!

यह कहकर वह भूमि पर बैठ गया और दोनों आँखोंपर हाथ रखकर फूट-फूटकर रोने लगा। आज तीस वर्ष का साथ छूट गया, जिसने कभी आधी बात नहीं कहीं, कभी तू करके नहीं पुकारा, वह मालिक अब उसे छोडे चला जा रहा था।

रतन अभी तक कविराज की बाट जोह रही थी। टीमल के मुख से यह शब्द सुनकर उसे धक्का-सा लगा। उसने उठकर पति की छाती पर हाथ रखा। साठ वर्ष तक अविश्राम गति से चलने के बाद वह अब विश्राम कर रही थी। फिर उसे माथे पर हाथ रखने की हिम्मत न पड़ी। उस देह का स्पर्श करते हुए, उस मरे हुए मुख की ओर ताकते हुए, उसे ऐसा विराग हो रहा था, जो ग्लानि से मिलता था। अभी जिन चरणों पर सिर रखकर वह रोयी थी, उसे छूते हुए उसकी उँगलियाँ-सी कटी जाती थीं। जीवन-सूत्र इतना कोमल है, उसने कभी न समझा था। मौत का खयाल कभी उसके मन मे न आया था। उस मौत ने आँखों के सामने उसे लूट लिया!

एक क्षण बाद टीमल ने कहा—बहूजी अब क्या देखती हो, खाट के नीचे उतार दो, जो होना था हो गया।

उसने पैर पकड़ा, रतन ने सिर पकड़ा और दोनों ने शव को नीचे लिटा दिया और वहीं जमीन पर बैठकर रतन रोने लगी, इसलिए नहीं कि संसार में अब उसके लिए कोई अवलम्ब न था, बल्कि इसलिए कि वह उनके साथ अपने कर्तव्य को पूरा न कर सकी।

उसी वक्त मोटर की आवाज आयी और कविराज ने पदार्पण किया।

कदाचित् अब भी रतन के हृदय में कहीं आशा की कोई बुझती हुई चिनगारी पड़ी हुई थी। उसने तुरन्त आँखें पोंछ डाली; सिर का अंचल संभाल लिया, उलझे हुए केश समेट लिए और खड़ी होकर द्वार की ओर देखने लगी। प्रभात ने आकाश को अपनी सुनहरी किरणों से रंजित

कर दिया था। क्या इस आत्मा के नव-जीवन का भी यही प्रभात था ?

(३१)

उसी दिन शव काशी लाया गया। यहीं उसकी दाह-क्रिया हुई। वकील साहब के एक भतीजे मालवे मे रहते थे। उन्हे तार देकर बुला लिया गया। दाह-क्रिया उन्होंने की। रतन को चिता के दृश्य की कल्पना ही से रोमाच होता था। वहाँ पहुँचकर शायद वह बेहोश हो जाती।

जालपा आजकल प्रायः सारे दिन उसी के साथ रहती। शोकातुर रतन को घर-बार की सुधि न थी, न खाने-पीने की। नित्य ही कोई-न-कोई ऐसी बात याद आ जाती, जिसपर वह घण्टो रोती। पति के साथ उसका जो धर्म था, उसके एक अश का भी उसने पालन किया होता, तो उसे बोध होता। अपनी कर्तव्यहीनता, अपनी निष्ठुरता, अपनी शृङ्गार-लोलुपता की चर्चा करके वह इतना रोती कि हिचकियाँ बँध जातीं। वकील साहब के सद्गुणों की चर्चा करके ही वह अपनी आत्मा को शान्ति देती थी। जब तक जीवन के द्वार पर एक रक्षक बैठा हुआ था, उसे किसी कुत्ते या बिल्ली, या चोर-चकोर की चिन्ता न थी ; लेकिन अब द्वार पर कोई रक्षक न था ; इसीलिए वह सजग रहती थी—पति का गुण-गान किया करती। जीवन का निर्वाह कैसे होगा, नौकर-चाकर मे किन-किन को जवाब देना होगा ; घर का कौन-कौन सा खर्च कम करना होगा, इन प्रश्नों के विषय मे दोनों मे कोई बात न होती, मानो यह चिन्ता मृत आत्मा के प्रति अश्रद्धा होगी। भोजन करना, साफ वस्त्र पहनना और मन को कुछ पढ़कर बहलाना भी उसे अनुचित जान पड़ता था। श्राद्ध के दिन उसने अपने सारे वस्त्र और आभूषण महापात्र को दान कर दिये। इन्हें लेकर अब वह क्या करेगी ? इनका व्यवहार करके क्या वह अपने जीवन को कलंकित करेगी ? इसके विरुद्ध पति की छोटी-से-छोटी वस्तु को भी स्मृति-चिह्न समझकर वह देखती-भालती रहती थी। उसका स्वभाव इतना कोमल हो गया था कि कितनी ही बड़ी हानि हो जाय, उसे क्रोध न आता था। टीमल के हाथ से चाय का सेट छूटकर गिर पड़ा ; पर रतन के माथे पर बल तक न आया। पहले एक दावात टूट जाने पर इसी टीमल को उसने बुरी तरह डाट बताई थी, निकाले देती

थी ; पर आज उनसे कई गुने नुकसान पर उसने जबान तक न खोली। कठोर भाव उसके हृदय मे आते हुए मानों डरते थे, कि कहीं उसे आघात न पहुँचे या शायद पति-शोक और पति-गुणगान के सिवा और किसी विचार को मन में लाना वह पाप समझती थी।

वकील साहब के भतीजे का नाम था मणिभूषण। बड़ा ही मिलनसार, हँसमुख, कार्य-कुशल। इसी एक महीने मे उसने सैकड़ों मित्र बना लिये। शहर मे जिन-जिन वकीलों और रईसों से वकील साहब का परिचय था, उन सबसे उसने ऐसा मेल-जोल बढ़ाया, ऐसी बेतकल्लुफी पैदा की, कि रतन को खबर तक नहीं और उसने बैंक का लेन-देन अपने नाम से शुरू कर दिया। इलाहाबाद बैंक मे वकील साहब के बीस हजार रुपये जमा थे। उस पर तो उसने कब्जा कर ही लिया, मकानों के किराये भी वसूल करने लगा; गाँवों की तहसील भी खुद ही शुरू कर दी, मानो रतन से कोई मतलब ही नहीं।

एक दिन टीमल ने आकर रतन से कहा—बहूजी, जानेवाला तो चला गया, अब घर-द्वार की भी कुछ खबर लीजिए। मैंने सुना है, भैयाजी ने बैंक का सब रुपया अपने नाम करा लिया।

रतन ने उसकी ओर ऐसे कठोर कुपित नेत्रों से देखा कि उसे फिर कुछ कहने की हिम्मत न पड़ी। उसी दिन शाम को मणिभूषण ने टीमल को निकाल दिया—चोरी का इलजाम लगाकर निकाला जिसमे रतन कुछ कह भी न सके।

अब केवल महराज रह गये। उन्हें मणिभूषण ने भंग पिला-पिलाकर ऐसा मिलाया, कि वह उन्हीं का दम भरने लगा। महरी से कहते, बाबूजी का बड़ा रईसाना मिजाज है; कोई सौदा लाओ, कभी नहीं पूछते, कितने का लाये। बड़ों के घर में बड़े ही होते है। बहूजी बाल की खाल निकाला करती थीं, यह बेचारे कुछ नहीं बोलते। महरी का मुंह पहले ही सी दिया गया था। वह एक-न-एक बहाने से बाहर की बैठक मे मँडलाया करती। रतन को जरा भी खबर न थी, किस तरह उसके लिए व्यूह रचा जा रहा है।

एक दिन मणिभूषण ने रतन से कहा—काकीजी, अब तो मुझे यहाँ

रहना व्यर्थ मालूम होता है। मैं सोचता हूँ, अब आपको लेकर घर चला जाऊँ, वहाँ आपकी बहू आपकी सेवा करेगी; बाल-बच्चों मे आपका जी बहल जायगा और खर्च भी कम हो जायगा। आप कहे तो यह बँगला बेच दिया जाय। अच्छे दाम मिल जायेंगे।

रतन इस तरह चौंकी, मानो उसकी मूर्च्छा भंग हो गयी हो, मानो किसी ने उसे झँझोडकर जगा दिया हो। सकपकाई हुई आँखों से उसकी ओर देखकर बोली—क्या मुझसे कुछ कह रहे हो ?

मणि०—जी हाँ, कह रहा था कि अब हम लोगों का यहाँ रहना व्यर्थ है। आपको लेकर चला जाऊँ, तो कैसा हो ?

रतन ने उदासीनता से कहा—हाँ, अच्छा तो होगा।

मणि०—काकाजी ने कोई वसीयतनामा लिखा हो, तो लाइए देखूं। उनकी इच्छाओं के आगे सिर झुकाना हमारा धर्म है।

रतन ने उसी भाँति आकाश पर बैठे हुए, जैसे संसार की बातों से अब उसे कोई सरोकार ही न रहा हो, जवाब दिया—वसीयत तो नहीं लिखी। और क्या जरूरत थी ?

मणिभूषण ने फिर पूछा—शायद कहीं लिखकर रख गये हों ?

रतन—मुझे तो कुछ मालूम नहीं। कभी जिक्र नहीं किया।

मणिभूषण ने मन मे प्रसन्न होकर कहा—मेरी इच्छा है कि उनकी कोई यादगार बनवा दी जाय।

रतन ने उत्सुकता से कहा—हाँ, हाँ मैं भी चाहती हूँ।

मणि०—गाँव की आमदनी कोई तीन हजार साल की है, वह आपको मालूम है। इतना ही उनका वार्षिक दान होता था। मैंने उसके हिसाब की किताब देखी है। दो-सौ ढाई-सौ से किसी महीने मे कम नहीं है। मेरी सलाह है कि वह ज्यों का त्यों बना रहे।

रतन ने प्रसन्न होकर कहा—हाँ, और क्या।

मणि०—तो गाँव को आमदनी तो धर्मार्थ पर अर्पण कर दी जाय। मकानों का किराया कोई सौ रुपये महीना है। इससे उनके नाम पर एक छोटी-सी सस्कृत पाठशाला खोल दी जाय।

रतन—बहुत अच्छा होगा।

मणि०—और यह बंगला बेंच दिया जाय। इस रुपये को बैंक में रख दिया जाय।

रतन—बहुत अच्छा होगा। मुझे रुपये-पैसे की अब क्या जरूरत है।

मणि०—आपकी सेवा के लिए तो हम सब हाजिर हैं। मोटर भी अलग कर दी जाय? अभी से यह फिक्र की जायगी, तो जाकर कहीं दो-तीन महीने में फुरसत मिलेगी।

रतन ने लापरवाही से कहा—अभी जल्दी क्या है। कुछ रुपये बैंक में तो है?

मणि०—बैंक मे कुछ रुपये थे, मगर महीने भर से खर्च भी तो हो रहे हैं। हजार पाँच सौ पड़े होंगे। यहाँ तो रुपये जैसे हवा मे उड़ जाते हैं। मुझसे तो इस शहर मे एक महीना भी न रहा जायगा। मोटर को तो जल्द ही निकाल देना चाहिए।

रतन ने इसके जवाब में भी यही कह दिया—अच्छा तो होगा। वह उस मानसिक दुर्बलता की दशा मे थी, जब मनुष्य को छोटे-छोटे काम भी असूझ मालूम होने लगते है। मणिभूषण की कार्य-कुशलता ने एक प्रकार से उसे पराभूत कर दिया था। इस समय जो उसके साथ थोड़ी-सी भी सहानुभूति दिखा देता, उसी को वह अपना शुभचिन्तक समझने लगती। शोक और मनस्ताप ने उसके मन को इतना कोमल और नर्म बना दिया था कि उस पर किसी की भी छाप पड़ सकती थी। उसकी सारी मलिनता और खिन्नता मानो भस्म हो गयी थी, वह सभी को अपना समझती थी। उसे किसी पर संदेह न था, किसी से शंका न थी। कदाचित् उसके सामने कोई चोर भी उसकी संपत्ति का अपहरण करता, तो वह शोर न मचाती।

(३२)

षोड़शी के बाद से जालपा ने रतन के घर आना-जाना कम कर दिया था। केवल एक बार घंटे-दो-घंटे के लिए चली जाया करती थी। इधर कई दिनों से मुंशी दयानाथ को ज्वर आने लगा था। उन्हे ज्वर मे छोड़कर कैसे जाती। मुन्शीजी को जरा ज्वर आता तो वह बक-झक करने लगते थे। कभी गाते, कभी रोते, कभी यमदूतों को अपने सामने नाचते

देखते। उनका जी चाहता कि सारा घर मेरे पास बैठा रहे; संबंधियों को भी बुला लिया जाय जिसमे वह सबसे अन्तिम भेंट कर ले, क्योंकि इस बीमारी से बचने की उन्हे आशा न थी। यमराज स्वयं उनके सामने विमान लिये खडे थे। रामेश्वरी और सब कुछ कर सकती थी, उनकी बक-झक न सुन सकती थी। ज्योंही वह रोने लगते, वह कमरे से निकल जाती। उसे भूत-बाधा का भ्रम होता था।

मुंशीजी के कमरे मे कई समाचार-पत्रों के फाइल थे। यही उन्हे एक व्यसन था। जालपा का जी वहाँ बैठे-बैठे घबराने लगता, तो इन फाइलों को उलट-पलटकर देखने लगती। एक दिन उसने एक पुराने पत्र मे शतरंज का एक नकशा देखा, जिसे हल कर देने के लिये किसी सज्जन ने पुरस्कार भी रखा था। उसे खयाल आया कि जिस ताक पर रमानाथ की बिसात और मोहरे रखे हुए है, उसपर एक किताब मे कई नकशे भी दिये हुए हैं। वह तुरन्त दौड़ी हुई गयी और वह कापी उठा लायी। यह नकशा उस कापी मे मौजूद था, और नकशा ही न था, उसका हल भी दिया था। जालपा के मन मे सहसा यह विचार चमक पड़ा, इस नकशे को किसी पत्र मे छपा दूॅ तो कैसा हो। शायद उनकी निगाह पड़ जाय। यह नकशा इतना सरल तो नहीं है कि आसानी से हल हो जाय। इस नगर मे जब कोई उनका सानी नहीं है, तो ऐसे लोगों की संख्या बहुत नहीं हो सकती, जो यह नकशा हल कर सके। कुछ भी हो, जब उन्होंने यह नकशा हल कर दिया है, तो इसे देखते ही फिर हल कर लेंगे। जो लोग पहली बार देखेंगे, उन्हे दो-एक दिन सोचने मे लग जायेंगे। मैं लिख दूॅगी, कि जो सबसे पहले हल कर ले, उसी को पुरस्कार दिया जाय। जुआ तो है ही। उन्हे रुपये न भी मिले, तो भी इतना सभव है ही कि हल करने वालों मे उनका नाम भी हो। कुछ पता तो लग जायगा। कुछ भी न हो, तो रुपये ही तो जायँगे। दस रुपये का पुरस्कार रख दूॅ। पुरस्कार कम होगा, तो कोई बड़ा खिलाड़ी इधर ध्यान न देगा। यह बात भी रमा के हित की होगी।

इसी उधेड़बुन में वह आज रतन से न मिल सकी। रतन दिन भर तो उसकी राह देखती रही। जब वह शाम को भी न गयी तो उससे न

रहा गया। आज वह पतिशोक के बाद पहली बार घर से निकली। कहीं रौनक न थी, कहीं जीवन न था, मानो सारा नगर शोक मना रहा है। उसे तेज मोटर चलाने की धुन थी, पर आज वह तांगे से भी कम जा रही थी। एक वृद्धा को सडक के किनारे बैठे देखकर मोटर रोक दिया और उसे चार आने दे दिये। कुछ आगे और बढ़ी, दो कांस्टेबुल एक कैदी को लिये जा रहे थे। उसने मोटर रोककर एक कांस्टेबुल को बुलाया और उसे एक रुपया देकर कहा—इस कैदी को मिठाई खिला देना। कांस्टेबुल ने सलाम करके रुपया ले लिया। दिल मे खुश हुआ, आज किसी भाग्यवान् का मुँह देखकर उठा था।

जालपा ने उसे देखते ही कहा—क्षमा करना बहन, आज मैं न आ सकी। दादीजी को कई दिन से ज्वर आ रहा है।

रतन ने तुरन्त मुंशीजी के कमरे की ओर कदम उठाया और पूछा —यही हैं न? तुमने मुझसे न कहा।

मुंशीजी का ज्वर इस समय कुछ उतरा हुआ था। रतन को देखते ही बोले—बड़ा दुःख हुआ देवीजी; मगर यह तो संसार है। आज एक की बारी है, कल दूसरे की बारी है। यही चल-चलाव लगा हुआ है। अब मैं भी चला। नहीं बच सकता। बड़ी प्यास है, जैसे छाती में कोई भठ्ठी जल रही हो। फुंका जाता हूँ। कोई अपना नहीं होता बहूजी। संसार के नाते, सब स्वार्थ के नाते है। आदमी अकेला हाथ पसारे एक दिन चला जाता है। हाय, हाय! लड़का था, वह भी हाथ से निकल गया। न जाने कहाँ गया। आज होता, तो एक चुल्लू पानी देनेवाला तो होता। यह दो लौंडे है, इन्हे कोई फिक्र ही नहीं, मैं मर जाऊँ या जी जाऊँ। इन्हें तीन दफे खाने को चाहिए, तीन दफे पानी पीने को। बस, और किसी काम के नहीं। यहाँ बैठते दोनों का दम घुटता है। क्या करूँ! अबकी न बचूंगा।

रतन ने तस्कीन दी—यह मलेरिया है, दो-चार दिन मे आप अच्छे हो जायँगे, घबराने की बात नहीं।

मुंशीजी ने दीन नेत्रों से देखकर कहा—बैठ जाइए बहूजी, आप कहती हैं, आपका आशीर्वाद है तो बच जाऊँ; लेकिन मुझे तो आशा

नहीं है। मैं भी ताल ठोंके यमराज से लड़ने को तैयार बैठा हूँ। अब उनके घर मेहमानी खाऊँगा। अब कहाँ जाते है बचकर बचा। ऐसा-ऐसा रगेदूँ, कि वह भी याद करे। लोग कहते है, वहाँ भी आत्माएँ उसी तरह रहती है। इसी तरह वहाँ भी कचहरियाँ है, हाकिम है, रंक है, व्याख्यान होते हैं, समाचार-पत्र-छपते है। फिर क्या चिन्ता है, वहाँ भी अहलमद हो जाऊँगा। मजे से अखबार पढा, करूँगा।

रतन को ऐसी हँसी छूटी कि वहाँ खड़ी न रह सकी। मुंशीजी विनोद के भाव से यह बातें नहीं कर रहे थे। उनके चेहरे पर गंभीर विचार की रेखा थी। आज डेढ़-दो महीने के बाद हँसी, और इस असायमिक हँसी को छिपाने के लिए कमरे में से निकल आयी। उसके साथ जालपा भी बाहर आ गयी।

रतन ने अपराधी नेत्रो से उसकी ओर देखकर कहा—दादाजी ने मन मे क्या समझा होगा। सोचते होंगे, मैं तो जान से मर रहा हूँ और इसे हँसी सूझती है। अब वहाँ न जाऊँगी, नहीं ऐसी ही कोई बात फिर कहेंगे, तो मैं बिना हँसे न रह सकूँगी। देखो तो आज कितनी बे-मौके हँसी आयी है।

वह अपने मन को इस उच्छृखलता के लिए धिक्कारने लगी। जालपा ने उसके मन का भाव ताड़कर कहा—मुझे भी अक्सर इनकी बातों पर हँसी आ जाती है, बहन! इस वक्त तो इनका ज्वर कुछ हलका है। जब जोर का ज्वर होता है, तब तो यह और भी ऊल-जलूल बकने लगते है। उस वक्त हँसी रोकनी मुश्किल हो जाती है। आज सवेरे कहने लगे मेरा पेट भक हो गया, मेरा पेट भक हो गया! इसकी रट लगा दी। इसका आशय क्या था, न मैं समझ सकी, न अम्मा समझ सकीं; पर वह बराबर यही रटे जाते थे—पेट भक हो गया! आओ कमरे मे चलें।

रतन—मेरे साथ न चलोगी?

जालपा—आज तो न चल सकूँगी, बहन।

'कल आओगी?'

'कह नहीं सकती। दादाजी का जी कुछ हलका रहा, तो आऊँगी।'

'नहीं भाई जरूर आना ! तुमसे एक सलाह करनी है।'

'क्या सलाह है ?'

'मुन्नी कहते है, यहाँ अब रहकर क्या करना है, घर चलो। बंगले को बेच देने को कहते है।

जालपा ने एकाएक ठिठककर उसका हाथ पकड लिया और बोली—यह तो तुमने बुरी खबर सुनायी, बहन ! मुझे इस दशा मे तुम छोड-कर चली जाओगी ? मैं न जाने दूँगी। मुन्नी से कह दो, बंगला बेच दें; मगर जब तक उनका कुछ पता न चल जायगा, मैं तुम्हे न छोडूंगी। तुम कुल एक हफ्ते बाहर रहीं। मुझे एक-एक पल पहाड़ हो गया। मैं न जानती थी कि मुझे तुमसे इतना प्रेम हो गया है। अब तो शायद मैं मर ही जाऊँ। नहीं बहन, तुम्हारे पैरों पडती हूँ, अभी जाने का नाम न लेना।

रतन की आँखें भर आयीं, बोली—मुझसे भी वहाँ न रहा जायगा, सच कहती हूँ। मैं तो कह दूँगी, मुझे नहीं जाना है। जालपा उसका हाथ पकडे हुए ऊपर अपने कमरे मे ले गयी और उसके गले मे हाथ डालकर बोली—कसम खाओ कि मुझे छोड़कर न जाओगी।

रतन ने उसे अंकवार मे लेकर कहा—लो, कसम खाती हूँ, न जाऊँगी; चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय। मेरे लिए वहाँ क्या रक्खा है। बंगला भी क्यों बेचूं। दो ढाई सौ मकानों का किराया है। हम दोनो के गुजर के लिए काफी है। मैं आज ही मुन्नी से कह दूँगी—मैं न जाऊँगी।

सहसा फर्श पर शतरंज के मुहरे और नकशे देखकर उसने पूछा—यह शतरंज किसके साथ खेल रही थीं ?

जालपा ने शतरंज के नकशे पर अपने भाग्य का पासा फेकने की जो बात सोची थी, वह सब उससे कह सुनाई। मन मे डर रही थी कि यह कहीं इस प्रस्ताव को व्यर्थ न समझे, पागलपन न खयाल करे; लेकिन रतन सुनते ही बाग-बाग हो गई। बोली—दस रुपये तो बहुत कम पुर-स्कार है। पचास रुपये कर दो, मैं देती हूँ।

जालपा ने शंका की—लेकिन इतने पुरस्कार के लोभ से कहीं अच्छे

अच्छे शतरंजबाजों ने मैदान मे कदम रखा तो ?

रतन ने दृढता से कहा—कोई हरज नहीं। बाबूजी की निगाह पड़ गयी, तो वह इसे जरूर हल कर लेंगे और मुझे आशा है कि सबसे पहले उन्ही का नाम आयेगा। कुछ न होगा, तो पता तो लग ही जायगा। अखबार के दफ्तर मे तो उनका पता आ ही जायगा। तुमने बहुत अच्छा उपाय सोच निकाला है। मेरा मन कहता है, इसका अच्छा फल होगा। मैं अब की प्रेरणा की कायल हो गयी हूँ। जब मैं इन्हे लेकर कलकत्ते चली गयी थी, उस वक्त मेरा मन कह रहा था, वहाँ जाना अच्छा न होगा।

जालपा—तो तुम्हें आशा है ?

'पूरी ? मैं कल सवेरे रुपये लेकर आऊँगी'।

'तो मैं आज खत लिख रखूंगी। किसके पास भेजूं। वहाॅ का कोई प्रसिद्ध पत्र होना चाहिये।'

'वहाँ तो 'प्रजा-मित्र' की बड़ी चर्चा थी। पुस्तकालयों मे अक्सर लोग उसी को पढ़ते नजर आते थे।'

'तो 'प्रजा-मित्र' ही को लिखूंगी; लेकिन रुपये हड़प कर जाय और नकशा न छापे तो क्या हो ?'

'हो क्या, पचास रुपये ही तो ले जायगा। दमड़ी की हंड़िया खोकर कुत्ते की जात तो पहचान ली जायगी; लेकिन ऐसा नही हो सकता। जो लोग देश-हित के लिये जेल जाते है, तरह-तरह की धौंस सहते है, वे इतने नीच नहीं हो सकते। मेरे साथ आध घटे के लिये चलो, तुम्हे इसी वक्त रुपये दे दूॅ।'

जालपा ने नीमराजी होकर कहा—इस वक्त कहाँ चलूँ। कल ही आऊँगी।

उसी वक्त मुंशीजी पुकार उठे—बहू ! बहू !

जालपा तो लपकी हुई उनके कमरे की ओर चली। रतन बाहर जा रही थी कि रामेश्वरी पंखा लिए अपने को झलती हुई दिखाई पड़ गयी। रतन ने पूछा—तुम्हे गरमी लग रही है अम्माजी ! मैं तो ठड के मारे काँप रही हूँ। अरे ! तुम्हारे पावों मे यह क्या उजला-उजला लगा हुआ है ? क्या आटा पीस रही थीं ?

रामेश्वरी ने लज्जित होकर कहा—हाँ, वैद्यजी ने इन्हे हाथ के आटे की रोटी खाने को कहा है। बाजार में हाथ का आटा कहाँ मयस्सर? मुहल्ले मे कोई पिसनहारिन नहीं मिलती। मजूरिनें तक चक्की से आटा पिसवा लेती है। मैं तो एक आना सेर देने को राजी हूँ; पर कोई मिली नहीं।

रतन ने अचम्भे से कहा—तुमसे चक्की चल जाती है?

रामेश्वरी ने झेंप से मुसकराकर कहा—कौन बहुत था। पाव भर तो दो दिन के लिए हो जाता है। खाते नहीं एक कौर भी। बहू पीसने जा रही थी; लेकिन फिर भी मुझे उनके पास बैठना पड़ता। मुझे रात भर चक्की पीसना गौं है, उनके पास घड़ी भर बैठना गौं नहीं।

रतन जाकर जात के पास एक मिनट खड़ी रही, मुसकराकर माची पर बैठ गयी और बोली—तुमसे तो अब जाँत न चलता होगा, माँजी। लाओ, थोड़ा-सा गेहूँ मुझे दो, देखूं तो।

रामेश्वरी ने कानों पर हाथ रखकर कहा—अरे नहीं बहू, तुम क्या पीसोगी। चलो यहाँ से।

रतन ने प्रमाण दिया—मैंने बहुत दिनों तक पीसा है माँजी। जब मैं अपने घर थी तो पीसती थी। मेरी अम्मा, लाओ थोड़ा-सा गेहूँ।

'हाथ दुखने लगेगा। छाले पड़ जायंगे।'

'कुछ नहीं होगा माँजी, आप गेहूँ तो लाइए।'

रामेश्वरी ने उसका हाथ पकड़कर उठाने की कोशिश करके कहा—गेहूँ घर मे नहीं है। अब इस वक्त बाजार से कौन लाये।

'अच्छा चलिए, मैं आपके भंडारे मे देखूं। गेहूँ होगा कैसे नहीं।'

रसोई की बगल वाली कोठरी मे सब खाने-पीने का सामान रहता था। रतन अन्दर चली गयी और हाँडियों में टटोल-टटोलकर देखने लगी। एक हाड़ी मे गेहूँ निकल आये। बड़ी खुश हुई, बोली—देखो माँजी, निकले कि नहीं, तुम मुझसे बहाना कर रही थीं।

उसने एक टोकरी मे थोड़ा गेहूँ निकाल लिया और खुश-खुश चक्की पर जाकर पीसने लगी। रामेश्वरी ने जाकर जालपा से कहा—बहू, वह जाँत पर बैठी गेहूँ पीस रही है। उठती ही नहीं। कोई देख ले तो क्या कहे?

जालपा ने मुंशीजी के कमरे से निकलकर सास की घबराहट का आनन्द उठाने के लिए कहा—यह तुमने क्या गजब किया अम्माजी। सचमुच कोई देख ले तो नाक ही कट जाय! चलिए, जरा देखूँ?

रामेश्वरी ने विवशता से कहा—क्या करूँ, मैं तो समझा के हार गयी, मानती ही नहीं।

जालपा ने जाकर देखा, तो रतन गेहूँ पीसने में मग्न थी। विनोद के स्वाभाविक आनन्द से उसक चेहरा खिला हुआ था। इतनी ही देर में उसके माथे पर पसीने की बूदें आ गयी थीं। उसके बलिष्ठ हाथों जाँत लट्टू के समान नाच रहा था।

जालपा ने हंसकर कहा—ओरी, आटा महीन हो, नहीं पैसे न मिलेंगे।

रतन को सुनाई न दिया। बहरों की भाति अनिश्चित भाव से मुस-कराई। जालपा ने और जोर से कहा—आटा खूब महीन पीसना, नहीं पैसे न पायेगी! रतन ने भी हसकर कहा—जितना महीन कहिए उतना महीन पीस दू, बहू जी। पिसाई अच्छी मिलनी चाहिए।

जालपा—धेले सेर।

रतन—धेली सेर नहीं?

जालपा—मुंह धो आओ! धेले सेर मिलेंगे।

रतन—मैं यह सब पीसकर उठूंगी। तुम यहाँ क्यों खड़ी हो?

जालपा—आ जाऊँ मैं भी खिंचा दूँ?

रतन—जी चाहता है, कोई जाँत का गीत गाऊँ!

जालपा—अकेली गाओगी? (रामेश्वरी से) अम्मा, आप जरा दादाजी के पास बैठ जायँ, मैं अभी आती हूँ।

जालपा भी जाँत पर जा बैठी, और दोनों जाँत का यह गीत गाने लगीं—

मोहि जोगिन बनाय के कहाँ गये जोगिया!

दोनों के स्वर मधुर थे। जाँत की घुमर-घुमर उनके स्वर के साथ साज का काम कर रही थी। जब दोनों एक कड़ी गाकर चुप हो जातीं, तो जाँत का स्वर मानो कंठ-ध्वनि से रंजित होकर और भी मनोहर हो जाता था। दोनों के हृदय इस समय जीवन के स्वाभाविक आनन्द से पूर्ण थे

—न शोक का भार था, न वियोग का दुःख। जैसे दो चिड़ियाँ प्रभात की अपूर्व शोभा से मग्न होकर चहक रही हों।

(३२)

रमा को चाय की दूकान खुल तो गई; पर केवल रात को खुलती थी, दिन भर बंद रहती थी। रात को भी अधिकतर देवीदीन ही की दूकान पर बैठता; पर बिक्री अच्छी हो जाती थी। पहले ही दिन तीन रुपये के पैसे आये, दूसरे दिन से चार-पाँच रुपये का औसत पड़ने लगा। चाय इतनी स्वादिष्ट होती थी कि जो एक बार यहाँ चाय पी लेता, फिर दूसरी दूकान पर न जाता। रमा ने मनोरंजन की भी कुछ सामग्री जमा कर दी। कुछ रुपये जमा हो गये, तो उसने सुन्दर मेज ली। चिराग जलने के बाद साग-भाजी की बिक्री ज्यादा न होती थी। वह उन टोकरों को उठाकर अन्दर रख देता और बरामदे मे वह मेज लगा देता। उस पर ताश के सेट रख देता। दो दैनिक-पत्र भी मँगाने लगा। दूकान चल निकली। उन्हीं तीन-चार घंटों मे छः-सात रुपये आ जाते थे और सब खर्च निकालकर तीन-चार रुपये बच रहते थे।

इन चार महीनों की तपस्या ने रमा की भोग-लालसा को और भी प्रचंड कर दिया। जब तक हाथ मे रुपये न थे, वह मजबूर था। रुपये आते ही सैर-सपाटे की धुन सवार हो गयी। सिनेमा की याद भी आयी। रोज के व्यवहार की मामूली चीजे जिन्हें अब तक वह टालता जाता था अब अबाध रूप से आने लगीं। देवीदीन के लिए वह एक सुन्दर रेशमी चादर लाया। जग्गो के सिर मे पीड़ा होती रहती थी। एक दिन सुगन्धित तेल की दो शीशियाँ लाकर उसे दे दीं। दोनों निहाल हो गये। अब बुढ़िया कभी अपने सिर पर बोझ लाती तो उसे डाँटता—काकी, अब तो मैं चार पैसे कमाने लगा, अब तू क्यों जान देती है? अगर फिर कभी तेरे सिर पर टोकरी देखी, तो कहे देता हूँ, दूकान उठाकर फेंक दूंगा। फिर मुझे जो सजा चाहे दे देना। बुढ़िया बेटे की डाट सुनकर गद्गद् हो जाती। मंडी से बोझ लाती तो पहले चुपके से देखती, रमा दूकान पर तो नहीं है! अगर वह बैठा होता, तो किसी कुली को एक-दो पैसा देकर उसके सिर पर रख देती। वह न होता, तो लपकी हुई आती और जल्द

से बोझ उतारकर शान्ति से बैठ जाती, जिसमे रमा भाँप न सके।

एक दिन 'मनोरमा थियेटर' मे राधेश्याम का कोई नया ड्रामा होने वाला था। इस ड्रामे की बड़ी धूम थी। एक दिन पहले से ही लोग अपनी जगह रक्षित करा रहे थे। रमा को भी अपनी जगह रक्षित करा लेने की धुन सवार हुई। सोचा, कहीं रात को टिकट न मिला, तो टापते रह जायंगे। तमाशे की बडी तारीफ है। उस वक्त एक के दो पैसे देने पर भी जगह न मिलेगी। इसी उत्सुकता ने पुलिस के भय को पीछे डाल दिया। आफत नहीं आयी है कि घर से निकलते ही पुलिस पकड़ लेगी। दिन को न सही, रात को तो निकलता ही हूँ। पुलिस चाहती तो क्या रात को न पकड़ लेती, फिर मेरा वह हुलिया भी नहीं रहा। पगडी चेहरा बदल लेने के लिए काफी है। यों मन को समझाकर वह दस बजे घर से निकला। देवीदीन कहीं गया हुआ था। बुढ़िया ने पूछा—कहाँ जाते हो बेटा? रमा ने कहा—कहीं नहीं काकी, अभी आता हूँ।

रमा सड़क पर आया, तो उसका साहस हिम की भाँति पिघलने लगा। उसे पग-पग पर शंका होती थी, कोई कास्टेबिल न आ रहा हो। उसे विश्वास था कि पुलिस का एक-एक चौकीदार भी उसका हुलिया पहचानता है और उसके चेहरे पर निगाह पड़ते ही पहचान लेगा। इसलिए वह नीचे सिर झुकाये चल रहा था। सहसा उसे खयाल आया, गुप्त पुलिसवाले सादे कपडे पहने-इधर-उधर घूमा करते हैं। कौन जाने जो आदमी मेरी बगल मे आ रहा है, कोई जासूस ही हो। मेरी ओर कितने ध्यान से देख रहा है। यह सिर झुकाकर चलने से ही तो नहीं उसे सदेह हो रहा है। यहाँ और सभी सामने ताक रहे है। कोई यों सिर झुकाकर नहीं चल रहा है। मोटरों के इस रेल-पेल मे सिर झुकाकर चलना मौत को नेवता देना है। पार्क मे कोई इस तरह चहलकदमी करे, तो कर सकता है। यहाँ तो सामने देखना चाहिए, लेकिन बगलवाला आदमी अभी तक मेरी ही तरफ ताक रहा है। शायद है कोई खुफिया ही। उसका साथ छोडने के लिए वह एक तमोली की दुकान पर पान खाने लगा। वह आदमी आगे निकल गया। रमा ने आराम की लम्बी साँस ली।

अब उसने सिर उठा लिया और मजबूत दिल करके चलने लगा।

इस वक्त ट्राम का भी कहीं पता न था, नहीं उसी पर बैठ लेता। थोड़ी ही दूर चला होगा कि तीन कासटेबल आते दिखाई दिये। रमा ने सड़क छोड दी और पटरी पर चलने लगा। ख्वाहमख्वाह साँप के बिल में उँगली डालना कौन-सी बहादुरी है। दुर्भाग्य की बात, तीनों कासटेबलों ने भी सड़क छोडकर वही पटरी ले ली। मोटरो के आने-जाने से बार-बार इधर उधर दौडना पड़ता था। रमा का कलेजा धक्‌धक् करने लगा। दूसरी पटरी पर जाना तो संदेह को और भी बढ़ा देगा। कोई ऐसी गली भी नही, जिसमे घुस जाऊँ। अब तो सब बहुत समीप आ गये। क्या बात है, सब मेरी ही तरफ देख रहे है। मैंने बड़ी हिमाकत की कि यह पगड़ बाँध लिया, और बाँधी भी कितनी बेतुकी! एक टीले-सा ऊपर उठ गया है। यह पगड़ी आज मुझे पकड़ायेगी। बाँधी थी कि इससे सूरत बदल जायगी। यह उलटे और तमाशा बन गयी। हाँ, तीनों मेरी ही ओर ताक रहे है। आपस मे बाते भी कर रहे है। रमा को ऐसा जान पड़ा, पैरों में शक्ति नही है। शायद सब मन मे मेरा हुलिया मिला रहे है। अब नहीं बच सकता। घरवालों को मेरे पकडे जाने की खबर मिलेगी तो कितना लज्जित होंगे। जालपा तो रो-रोकर प्राण दे देगी। पाँच साल से कम सजा न होगी। आज इस जीवन का अन्त हो रहा है।

इस कल्पना ने उसके ऊपर ऐसा आतंक जमाया कि उसके औसान जाते रहे। जब सिपाहियों का दल समीप आ गया, तो उसका चेहरा भय से कुछ ऐसा विकृत हो गया, और आँखें कुछ ऐसी सशंक हो गयीं, और अपने को उनकी आँखों से बचाने के लिए वह कुछ इस तरह दूसरे आदमियों की आड खोजने लगा कि मामूली आदमी को भी उस पर संदेह होना स्वाभाविक था। फिर पुलिसवालों की मँजी हुई आँखे क्यों चूकती? एक ने अपने साथी से कहा—यो मनई चोर न होय तो तुमरी टाँगन ते निकर जाई। कस चोरन की नांई ताकत है। दूसरा बोला—कुछ संदेह हमऊ का हुइ रहा है। फुरै कह्यो पाँडे, असली चोर है।

तीसरा आदमी मुसलमान था, उसने रमानाथ को ललकारा—ओ जी, ओ पगड़ी, जरा इधर आना, तुम्हारा क्या नाम है?

रमानाथ ने सीनाजोर के भाव से कहा—हमारा नाम पूछकर क्या

करोगे ? क्या मै चोर हूँ ?'

'चोर नही, तुम साह हो, नाम क्यों नहीं बताते ?'

रमा ने एक क्षण आगा-पीछा किया और फिर हड़बड़ाकर कहा—हीरालाल।

'घर कहाँ है ?'

'घर !'

'हाँ, घर पूछते हैं !'

'शाहजहाँपुर।'

'कौन मुहल्ला ?'

रमा शाहजहाँपुर न गया था, न कोई कल्पित नाम ही उसे याद आया कि बता दे। दुस्साहस के साथ बोला—तुम तो मेरा हुलिया लिख रहे हो।

कासटेबल ने भबकी दी—तुम्हारा हुलिया पहले से ही लिखा हुआ है। नाम झूठ बताया, सकूनत झूठ बतायी, मुहल्ला पूछा तो बगलें झाँकने लगे। महीनों से तुम्हारी तलाश हो रही है, आज जाकर मिले हो। चलो थाने पर।

यह कहते हुए उसने रमानाथ का हाथ पकड़ लिया। रमा ने हाथ छुड़ाने की चेष्टा करके कहा—वारट लाओ, तब हम चलेंगे। क्या मुझे कोई देहाती समझ लिया है ?

कासटेबल ने एक सिपाही से कहा—पकड़ लो जी इनका हाथ, वहीं थाने पर वारंट दिखाया जायगा।

शहरों मे ऐसी घटनाएँ मदारियों के तमाशे से भी ज्यादा मनोरंजक होती है। सैकड़ों आदमी जमा हो गये। देवीदीन इसी समय अफीम लेकर लौटा आ रहा था। जमाव देखकर वह भी आ गया। देखा कि तीन कासटेबल रमानाथ को घसीटे लिये जा रहे है। आगे बढ़कर बोला—हैं, है, जमादार, यह क्या करते हो ? यह पंडित तो हमारे मिहमान है, इन्हे कहाँ पकड़े लिये जाते हो ?

तीनो कासटेबल देवीदीन से परिचित थे, रुक गये। एक ने कहा—तुम्हारे मिहमान हैं यह ? कब से ?

देवीदीन ने मन में हिसाब लगा कर कहा—चार महीने से कुछ ज्यादा हुए होंगे। मुझे प्रयाग में मिल गये। रहनेवाले भी वहीं के हैं। मेरे साथ ही तो आये थे।

मुसलमान सिपाही ने मन में प्रसन्न होकर कहा—इनका नाम क्या है?

देवीदीन ने सिटपिटा कर कहा—नाम इन्होंने बताया न होगा?

सिपाहियों का संदेह दृढ हो गया। पाँडे ने आँखे निकालकर कहा—जान परत है, तुमहू मिले हो, नॉव काहे नहीं बतावत हो इनका?

देवीदीन ने आधारहीन साहस के भाव से कहा—मुझसे रोब न जमाना पाँडे, समझे! यहाँ धमकियों मे नहीं आने के!

मुसलमान सिपाही ने मानो मध्यस्थ बनकर कहा—बूढ़े बाबा, तुम तो ख्वाहमख्वाह बिगड़ रहे हो। इनका नाम क्यों नहीं बतला देते?

देवीदीन ने कातर नेत्रों से रमा की ओर देखकर कहा—हम लोग तो रमानाथ कहते हैं। असली नाम यही है या कुछ और, यह हम नहीं जानते।

पाँडे ने आँखें निकालकर हथेली को सामने करके कहा—बोलो पंडित जी, क्या नाम है तुम्हारा? रमानाथ या हीरालाल? या दोनों—एक घर का एक ससुराल का?

तीसरे सिपाही ने दर्शकों को संबोधित करके कहा—नाँव है रमानाथ बतावत है हीरालाल। सबूत हुइ गवा। दर्शकों में कानाफूसी होने लगी—शुबहे की बात तो है।

'साफ है, नाम और पता दोनों गलत बता दिया।'

एक मारवाड़ी सज्जन बोले—उचक्को सो है।

एक मौलवी साहब ने कहा—कोई इश्तिहारी मुलजिम है।

जनता को अपने साथ देखकर सिपाहियों को और भी जोर हो गया। रमा को भी अब उनके साथ चुपचाप चले जाने ही मे अपनी कुशल दिखायी दी। इस तरह सिर झुका लिया, मानो उसे इसकी बिल्कुल परवा नहीं है कि लाठी पड़ती है या तलवार। इतना अपमानित वह कभी न हुआ था। जेल की कठोरतम यातना भी इतनी ग्लानि न उत्पन्न करती।

थोड़ी देर में पुलिस स्टेशन दिखायी दिया। दर्शकों की भीड़ बहुत

कम हो गयी थी। रमा ने एक बार उनकी ओर लज्जित आशा के भाव से ताका। देवीदीन का पता न था। रमा के मुँह से एक लम्बी सास निकल गयी। इस विपत्ति मे क्या यह सहारा भी हाथ से निकल गया?

(३४)

पुलिस स्टेशन के दफ्तर मे इस समय एक बडी मेज के सामने चार आदमी बैठे हुए थे। एक दरोगा थे, गोरे, शौकीन, जिनकी बड़ी-बडी आँखों मे कोमलता की झलक थी। उनकी बगल मे नायब दरोगा थे। यह सिख थे, बहुत ही हँसमुख, सजीवता के पुतले, गेहुँआ रंग, सुडौल, सुगठित शरीर, सिर पर केश थे, हाथ मे कडा, पर सिगार से परहेज न करते थे। मेज की दूसरी तरफ़ इसपेक्टर और डिप्टी सुपरिंटेडेंट बैठे हुए थे। इंसपेक्टर अधेड़ साँवला आदमी था, कौड़ी की-सी आँखे, फूले हुए गाल और ठिगना कद। डिप्टी सुपरिंटेंडेंट लम्बा छरहरा जवान था, बहुत ही विचारशील और अल्पभाषी। उसकी लम्बी नाक और ऊँचा मस्तक कुलीनता के साक्षी थे।

डिप्टी ने सिगार का कश लेकर कहा—बाहरी गवाही से काम नहीं चलने सकेगा। इसमे से किसी को 'अप्रूवर' बनाना होगा। और कोई 'आल्टरनेटिव' नहीं है।

इंसपेक्टर ने दरोगा की ओर देखकर कहा—हम लोगों ने कोई बात उठा तो नहीं रखी, हलफ से कहता हूँ। सभी तरह के लालच देकर हार गये। सबों ने ऐसी गुट कर रखी है कि कोई टूटता ही नहीं। हमने बाहर के गवाहों को भी आजमाया; पर सब कानों पर हाथ रखते हैं।

डिप्टी—उस मारवाड़ी को फिर आजमाने होगा। उसके बाप को बुलाकर खूब धमकाइए। शायद उसका कुछ दबाव पड़े।

इंसपेक्टर—हलफ से कहता हूँ, आज सुबह से हम लोग यही कर रहे है। बेचारा बाप लड़के के पैरों पर गिरा, पर लड़का किसी तरह राजी नही होता।

कुछ देर तक चारों आदमी विचारों मे मग्न बैठे रहे। अन्त मे डिप्टी ने निराशा के भाव से कहा—मुकदमा नहीं चलने सकता। मुफ्त का बदनाम हुआ।

इंसपेक्टर—एक हफ्ते की मुहलत और लीजिये, शायद कोई टूट जाय।

यह निश्चय करके दोनों आदमी वहाँ से रवाना हुए। छोटे दरोगा भी उनके साथ ही चले गए। दरोगाजी ने हुक्का मँगवाया, कि सहसा एक मुसलमान सिपाही ने आकर कहा—दरोगाजी लाइए, कुछ इनाम दिलवाइए। एक मुलजिम को शुबहे पर गिरफ्तार किया है। इलाहाबाद का रहने वाला है, नाम है रमानाथ। पहले नाम और सकूनत दोनों गलत बतलाई थी। देवीदीन खटिक जो नुक्कड़ पर रहता है, उसी के घर ठहरा हुआ है। जरा डाँट बताइएगा, तो सब कुछ उगल देगा।

दरोगा—देवीदीन वही है न, जिसके दोनों लड़के . . . .

सिपाही—जी हाँ, वही है।

इतने में रमानाथ भी दरोगा के सामने हाजिर किया गया। दरोगा ने उसे सिर से पाँव तक देखा; मानो मन मे उसका हुलिया मिला रहे हों। तब कठोर दृष्टि से देखकर बोले—अच्छा यह इलाहाबाद का रमानाथ है। खूब मिले भाई। छः महीने से परेशान कर रहे हो। कैसा साफ हुलिया है कि अंधा भी पहचान ले! यहाँ कब से आये हो?

कास्टेबल ने रमा को परामर्श दिया—सब हाल सच-सच कह दो तो तुम्हारे साथ कोई सख्ती न की जायगी।

रमा ने प्रसन्नचित्त बनने की चेष्टा करके कहा—अब तो आपके हाथ में हूँ, रियायत कीजिए या सख्ती कीजिए। इलाहाबाद की म्युनिसिपैलिटी मे नौकर था। हिमाकत कहिए या बदनसीबी, चुंगी के चार सौ रुपये मुझसे खर्च हो गये। मैं वक्त पर रुपये जमा न कर सका। शर्म के मारे घर के आदमियों से कुछ न कहा। नहीं तो इतने रुपये का इन्तजाम हो जाना कोई मुश्किल न था। जब कुछ वश न चला तो वहाँ से भागकर यहाँ चला आया। इसमे एक हर्फ भी गलत नही है।

दरोगा ने गंभीर भाव से कहा—मामला संगीन है, क्या कुछ शराब का चस्का पड़ गया था?

'मुझसे कसम ले लीजिए, जो कभी शराब मुँह से लगायी हो।'

कासटेबल ने विनोद करके कहा—मुहब्बत के बाजार मे लुट गये होंगे हजूर!

रमा ने मुस्कराकर कहा—मुझ-से फाकेमस्तो का वहाँ कहाँ गुजर ?

दरोगा—तो क्या हुआ ? खेल डाला ? या बीबी के लिये जेवर बनवा डाला ?

रमा झेपकर रह गया। अपराधी मुस्कराहट उसके मुख पर रो पड़ी।

दरोगा—अच्छी बात है, तुम्हे भी यहाँ खासे मोटे जेवर मिल जायँगे।

एकाएक बूढ़ा देवीदीन आकर खड़ा हो गया।

दरोगा ने कठोर स्वर मे कहा—क्या काम है यहाँ ?

देवी०—हुजूर को सलाम करने चला आया। इन बेचारे पर दया की नजर रहे हुजूर, बेचारे बड़े सीधे आदमी है।

दरोगा—बच्चा, सरकारी मुलजिम को घर मे छिपाते हो, उस पर सिफारिश करने आये हो ?

देवी०—मैं क्या सिफारिश करूँगा हजूर, दो कौड़ी का आदमी।

दरोगा—जानता है, इन पर वारट है, सरकारी रुपये ग़बन कर गये है।

देवी०—हुजूर, भूल-चूक आदमी से ही तो होती है। जवानी की उम्र है ही, खरच हो गये होंगे।

यह कहते हुए देवीदीन ने पाँच गिन्नियाँ कमर से निकालकर मेज पर रख दीं।

दरोगा ने तड़पकर कहा—यह क्या है ?

देवी०—कुछ नहीं है, हुजूर को पान खाने को।

दरोगा—रिश्वत देना चाहता है, क्यो ? कहो तो बच्चा इसी इलजाम मे भेज दूँ।

देवीदीन—भेज दीजिए सरकार। घरवाली लकड़ी-कफ़न की फिकर से छूट जायगी। वहीं बैठा आपको दुआ दूँगा।

दरोगा—अब इन्हे छोड़ाना है, तो पचास गिन्नियाँ लाकर सामने रख। जानते हो, इनकी गिरफ्तारी पर पाँच सौ रुपये का इनाम है।

देवी०—आप लोगों के लिए इतना इनाम क्या है। यह गरीब परदेसी आदमी हैं, जब तक जियेंगे आपको याद करेंगे।

दरोगा—बक-बक मत कर। यहाँ धरम कमाने नहीं आया हूँ।

देवी०—बहुत तंग हूँ हुजूर। दौरी-दूकान तो नाम की है।

कासटेबल—बुढ़िया से माँग जाके।

देवी०—कमानेवाला तो मैं हूँ भैया, लड़कों का हाल जानते ही हो। तन पेट काटकर कुछ रुपये जमा कर रखे थे, सो अभी सात धाम किये चला आता हूँ। बहुत तंग हो गया हूँ।

दरोगा—तो अपनी गिन्नियाँ उठा ले। इसे बाहर निकाल दो, जी।

देवी०—आपका हुकम, तो लीजिए जाता हूँ। धक्के क्यों दिलवाइयेगा?

दरोगा—(कासटेबल) इन्हें हिरासत मे रखो। मुंशी से कहो, इनका बयान लिख लें।

देवीदीन के होंठ आवेश से काँप रहे थे। उसके चेहरे पर इतनी व्यग्रता रमा ने कभी नहीं देखी थी, जैसे कोई चिड़िया अपने घोंसले में कौवे को घुसते देखकर विह्वल हो गयी हो। वह एक मिनट तक थाने के द्वार पर खड़ा रहा, फिर पीछे फिरा और एक सिपाही से कुछ कहा, तब लपका हुआ सड़क तक चला गया; मगर एक ही पल मे फिर लौटा और दरोगा से बोला—हुजूर दो घंटे की मुहलत न दीजिएगा?

रमा अभी वहीं खड़ा था। उसकी यह ममता देखकर रो पड़ा। बोला—दादा, अब तुम हैरान न हो, मेरे भाग्य में जो कुछ लिखा है, वह होने दो। मेरे पिता भी यहाँ होते तो इससे ज्यादा और क्या करते। मैं मरते दम तक तुम्हारा उपकार....

देवीदीन ने आँखे पोंछते हुए कहा—कैसी बात करते हो, भैया? जब रुपयों पर आई, तो देवीदीन पीछे हटने वाला आदमी नहीं है। इतने रुपये तो एक-एक दिन जुए में हार-जीत गया हूँ। अभी घर बेच दूँ, तो दस हजार की मालियत है। क्या सिर पर लाद कर ले जाऊँगा। दारोग़ाजी, अभी भैया को हिरासत में न भेजो। मैं रुपये की फिकर करके अभी थोड़ी देर में आता हूँ।

देवीदीन चला गया तो दारोगाजी ने सहृदयता से भरे हुए स्वर मे कहा—है तो खुर्राट, मगर बड़ा नेक। तुमने कौन बूटी सुंघा दी?

रमा ने कहा—गरीबों पर सभी को रहम आता है।

दारोगा ने मुस्कराकर कहा—पुलिस को छोड़कर, इतना और कहिए। मुझे तो यकीन नहीं कि पचास गिन्नियाँ लाये।

रमा०—अगर लाये भी तो उससे इतना बड़ा तावान नहीं दिलाना चाहता। आप मुझे शौक से हिरासत मे ले लें।

दारोगा—मुझे पाँच सौ के बदले साढ़े छः सौ मिल रहे हैं, क्या कहूँ। तुम्हारी गिरफ्तारी का इनाम मेरे किसी दूसरे भाई को मिल जाय तो क्या बुराई है।

रमा०—मुझे चक्की पीसना है, तो जितनी जल्दी पीस लूं उतना ही अच्छा। मैंने समझा था, मैं पुलिस की नजरों से बचकर रह सकता हूँ। अब मालूम हुआ कि यह बेअकली और आठों पहर पकड़ लिए जाने का खौफ तो जेल से कम जानलेवा नहीं।

दारोगाजी को एकाएक जैसे कोई भूली हुई बात याद आ गयी। मेज के दराज से एक मिसल निकाली, उसके पन्ने इधर-उधर उल्टे, तब नम्रता से बोले—अगर मैं ऐसी तरकीब बतलाऊँ कि देवीदीन के रुपये भी बच जायं और तुम्हारे ऊपर भी हर्फ न आये तो कैसा?

रमा ने अविश्वास के भाव से कहा—ऐसी कोई तरकीब है, मुझे तो आशा नहीं।

दारोगा—अजी, साईं के सौ खेत हैं। इसका इंतजाम मैं कर सकता हूँ। आपको महज एक मुकदमे मे शहादत देनी होगी।

रमा—झूठी शहादत होगी!

दरोगा—नहीं, बिल्कुल सच्ची। बस समझ लो कि आदमी बन जाओगे। म्युनिसिपैलिटी के पंजे से तो छूट ही जाओगे, शायद सरकार परवरिश भी करे। जो अगर चालान हो गया, तो पाँच साल से कम की सजा न होगी। मान लो, इस वक्त देवी तुम्हे बचा भी ले, तो बकरे की माँ कब तक खैर मनायेगी। जिन्दगी खराब हो जायगी। तुम अपना नफा-नुकसान खुद समझ लो मैं जबरदस्ती नहीं करता।

दरोगाजी ने डकैती का वृत्तान्त कह सुनाया। रमा ऐसे कई मुकदमे समाचार पत्रों मे पढ़ चुका था। संशय के भाव से बोला—मुझे मुखबिर बनना पड़ेगा और यह कहना पड़ेगा कि मैं भी इन डकैतियों मे शरीक

था ? यह तो झूठी शहादत हुई ।

दरोगा—मुआमला बिलकुल सच्चा है। आप बेगुनाहों को न फँसायेंगे। वही लोग जेल जायेंगे जिन्हे जाना चाहिए। फिर झूठ कहाँ रहा। डाकुओं के डर से वहाँ के लोग शहादत देने पर राजी नहीं होते। बस और कोई बात नहीं। यह मैं मानता हूँ कि आपको कुछ झूठ बोलना पड़ेगा ; लेकिन आपकी जिन्दगी बनी जा रही है। इसके लिहाज से तो झूठ कोई चीज नहीं। खूब सोच लीजिए। शाम तक जवाब दीजिएगा।

रमा के मन मे बात बैठ गई। अगर एक बार झूठ बोलकर वह अपने पिछले कर्मों का प्रायश्चित कर सके और अपना भविष्य भी सुधार ले, तो पूछना ही क्या। जेल से तो बच जायगा। इसमे आगा-पीछा की जरूरत ही न थी। हा, निश्चय हो जाना चाहिए कि उसपर फिर म्युनिसिपैलिटी अभियोग न चलायेगी और उसे कोई अच्छी जगह मिल जायेगी। वह जानता था, पुलिस को गरज है और वह मेरी वाजिब शर्त अस्वीकार न करेगी। इस तरह बोला, मानो उसकी आत्मा धर्म और अधर्म के संकट मे पड़ी हुई है—मुझे यही डर है कि कहीं मेरी गवाही से बेगुनाह लोग न फँस जायँ।

दरोगा—इसका मैं आपको इतमीनान दिलाता हूँ।

रमा०—लेकिन कल को म्युनिसिपैलिटी मेरी गर्दन नापे तो मैं किसे पुकारूँगा ?

दरोगा—मजाल है, म्युनिसिपैलिटी चूँ भी कर सके। फौजदारी के मुकदमे में मुद्दई तो सरकार होगी। जब सरकार आपको मुआफ कर देगी, तो मुकदमा कैसे चलायेगी। आपको तहरीरी मुआफी-नामा दे दिया जायगा, साहब।

रमा०—और नौकरी ?

दरोगा—वह सरकार आप इन्तजाम करेगी। ऐसे आदमियों को सरकार खुद अपना दोस्त बनाये रखना चाहती है। अगर आपकी शहादत बढ़िया हुई और आप उस फ़रीक़ की जिरहों की जाल से निकल गये, तो फिर आप पारस हो जायँगे।

दरोगा जी ने उसी वक्त मोटर मँगवायी और रमा को साथ लेकर डिप्टी साहब से मिलने चल दिये। इतनी बड़ी कारगुजारी दिखाने में

विलम्ब क्यो करते? डिप्टी से एकान्त मे खूब जीट उडायी। इस आदमी का यो पता लगाया। उसकी सूरत देखते ही भॉप गया कि मफ़रूर है। बस गिरफ्तार ही तो कर लिया। बात सोलहो आने सच निकली, निगाह कहीं चूक सकती है? हुजूर, मुजरिम की ऑखे पहचानता हूँ। इलाहाबाद की म्युनिसिपैलिटी के रुपये गबन कर के भागा है। इस मामले मे शहादत देने को तैयार है। आदमी पढ़ा-लिखा, सूरत का शरीफ और जहीन है।

डिप्टी ने सन्दिग्ध भाव से कहा—हाँ, आदमी तो होशियार मालूम होता है।

'मगर मुआफ़ी-नामा लिये बगैर इसे हमारा एतबार न होगा। कहीं इसे यह शुबहा हुआ, कि हम लोग इसके साथ कोई चाल चल रहे है, तो साफ निकल जायगा।'

डिप्टी—यह तो होगा ही। गवर्नमेट से इसके बारे मे बात-चीत करना होगा। आप टेलीफोन मिला कर इलाहाबाद पुलिस से पूछिये कि इस आदमी पर कैसा मुकदमा है। यह सब तो गवर्नमेंट को बतलाना होगा। दरोगाजी ने टेलीफोन डाइरेक्टरी देखी, नम्बर मिलाया और बात-चीत शुरू हुई।

डिप्टी—क्या बोला?

दरोगा—कहता है, यहॉ इस नाम के किसी आदमी पर मुकदमा नहीं है।

डिप्टी—यह कैसा बात है भाई, कुछ समझ मे नहीं आता। इसने नाम तो नहीं बदल दिया?

दरोगा—कहता है, म्युनिसिपैलिटी मे किसी ने रुपये गबन नहीं किये। कोई मामला नही है।

डिप्टी—यह तो बड़ा ताज्जुब की बात है। आदमी बोलता है, हम रुपया लेकर भागा। म्युनिसिपैलिटी बोलता है, कोई रुपया गबन नहीं किया। यह आदमी पागल तो नहीं है?

दरोगा—मेरी समझ मे कोई बात नहीं आती। अगर कह दे कि तुम्हारे ऊपर कोई इल्जाम नहीं है, तो फिर उसकी गध भी न मिलेगी।

'अच्छा, म्युनिसिपैलिटी दफ्तर से पूछिए।'

दरोगा ने फिर नम्बर मिलाया। सवाल-जवाब होने लगा।

दरोगा—आपके यहॉ रमानाथ नाम का कोई क्लर्क था?

जवाब—जी हाँ, था।

दरोगा—वह कुछ रुपया ग़बन करके भागा है?

जवाब—नहीं। वह घर से भागा है, पर ग़बन नहीं किया। क्या वह आपके यहाँ है?

दरोगा—जी हाँ, हमने उसे गिरफ्तार किया है। वह खुद कहता है कि मैंने रुपये ग़बन किये। बात क्या है?

जवाब—पुलिस तो लालबुझक्कड़ है। जरा दिमाग लड़ाइये।

दरोगा—यहाँ तो अक्ल काम नहीं करती।

जवाब—यहीं क्या, कहीं भी नहीं करती। सुनिये, रमानाथ ने मीजान लगाने मे गलती की, डरकर भागा। बाद को मालूम हुआ, कि तहबील मे कोई कमी न थी? आयी समझ मे बात?

डिप्टी—अब क्या करने होगा, खाँ साहब! चिड़िया हाथ से निकल गया।

दरोगा—निकल कैसे जायगी हुजूर? रमानाथ से यह बात कही ही क्यों जाय। बस, उसे किसी आदमी से मिलने न दिया जाय जो बाहर की खबरें पहुँचा सके। घर वालों को उसका पता अब लग जायेगा ही। कोई न कोई जरूर उसकी तलाश मे आयेगा। किसी को न आने दें। तहरीर मे कोई बात न लायी जाय। जबानी इतमीनान दिया जाय। कह दिया जाय, कमिश्नर साहब को माफीनामे के लिए रिपोर्ट की गयी है। इन्स्पेक्टर साहब से भी राय ले ली जाय।

इधर तो वह लोग सुपरिंटेंडेंट से परामर्श कर रहे थे, उधर एक घण्टे मे देवीदीन लौटकर थाने आया तो कांसटेबल ने कहा—दरोगा जी तो साहब के पास गये।

देवीदीन ने घबड़ाकर कहा—तो बाबूजी को हिरासत मे डाल दिया?

कांसटेबल—नहीं, उन्हे भी साथ ले गये।

देवीदीन ने सिर पीटकर कहा—पुलिसवालों की बात का कोई भरोसा नहीं। कह गया कि एक घंटे मे रुपये लेकर आता हूँ, मगर इतना भी सबर न हुआ। सरकार से पाँच ही सौ तो मिलेंगे? मैं छः सौ देने को तैयार हूँ। हाँ, सरकार मे कारगुजारी हो जायगी और क्या। वहीं

से उन्हें परागराज भेज देंगे। मुझसे भेंट भी न होगी। बुढ़िया रो-रोकर मर जायगी। यह कहता हुआ देवीदीन वहीं जमीन पर बैठ गया।

कासटेबल—तो यहाँ कब तक बैठे रहोगे?

देवीदीन ने मानो कोडे की चोट से आहत होकर कहा—अब दरोगा जी से दो-दो बातें करके ही जाऊँगा। चाहे जेहल ही जाना पडे; पर फटकारूँगा जरूर, बुरी तरह फटकारूँगा। आखिर उनके भी तो बाल-बच्चे होंगे। क्या भगवान को जरा भी नहीं डरते? तुमने बाबूजी को जाती बार देखा था? बहुत रंजीदा थे?

कासटेबल—रंजीदा तो नहीं थे, खासी तरह से हँस रहे थे। दोनो जने मोटर मे बैठकर गये है।

देवीदीन ने अविश्वास के भाव से कहा—हँस क्या रहे होंगे बेचारे! मुँह से चाहे हंस लें; दिल तो रोता ही होगा!

देवीदीन को यहाँ बैठे एक घण्टा भी न हुआ था कि सहसा जग्गो आ खड़ी हुई। देवीदीन को द्वार पर बैठे देखकर बोली—तुम यहाँ क्या करने लगे? भैया कहाँ है?

देवीदीन ने मर्माहत होकर कहा—भैया को ले गये सुपरिटेंडेंट के पास। न जाने भेंट होती है कि ऊपर-ही-ऊपर परागराज भेज दिये जाते है।

जग्गो—दरोगाजी भी बड़े वह हैं। कहाँ तो कहा कि इतना लेंगे, कहाँ लेकर चल दिये।

देवी०—इसीलिए तो बैठा हूँ कि आवें तो दो-दो बातें कर लूं।

जग्गो—हाँ, फटकारना जरूर। जो अपनी बात का नहीं, वह अपने बाप का क्या होगा? मैं तो खरी कहूँगी। मेरा क्या कर लेंगे?

देवी०—दूकान पर कौन है?

जग्गो—बन्द कर आयी हूँ। अभी बेचारे ने कुछ खाया भी नहीं। सवेरे से वैसे ही है। चूल्हे मे जाय वह तमाशा! उसी के लिए टिकट लेने जाते थे। न घर से निकलते न यह बला सिर पडती।

देवी०—जो उधर से पराग भेज दिया तो?

जग्गो—तो चिट्ठी तो आवेगी ही। चलकर वहीं देख आवेंगे।

देवी०—(आँखों मे आँसू भरकर) सजा हो जायगी तो?

जग्गो—रुपया जमा कर देंगे तब काहे को सजा होगी। सरकार अपने रुपये ही तो लेगी ?

देवी०—नहीं पगली, ऐसा नही होता। चोर माल लौटा दे तो वह छोड थोड़े ही दिया जायगा।

जग्गो ने परिस्थिति की कठोरता का अनुभव करके कहा—दरोगा जी .

वह अभी बात भी पूरी न करने पायी थी कि दरोगाजी की मोटर सामने आ पहुँची। इन्स्पेक्टर साहब भी थे। रमा इन दोनों को देखते ही मोटर से उतरकर आया और प्रसन्न मुख से बोला—तुम यहाँ देर से बैठे हो क्या दादा ? आओ कमरे मे चलो। अम्मा, तुम कब आयीं ?

दरोगा जी ने विनोद करके कहा—कहो चौधरी लाये रुपये ?

देवी०—जब कह गया कि मैं थोडी देर मे आता हूँ तो आपको मेरी राह देख लेनी चाहिए थी। चलिए अपने रुपये लीजिए।

दरोगा—खोदकर निकाले होगे ?

देवी०—आपके अकबाल से हजार-पाँच सौ अभी ऊपर ही निकल सकते है। जमीन खोदने की जरूरत नहीं पडी। चलो भैया, बुढ़िया कब से खडी है, मैं रुपये चुकाकर आता हूँ। यह तो इसपिट्टर साहब थे न ? पहले इसी थाने मे थे।

दरोगा—तो भई, अपने रुपये ले जाकर उसी हाँडी मे रख दो। अफसरों की सलाह हुई कि इन्हे छोडना न चाहिए। मेरे बस की बात नहीं है।

इन्स्पेक्टर साहब तो पहले ही दफ्तर मे चले गये थे। ये तीनों आदमी बाते करके उसके बगलवाले कमरे मे गये।

देवीदीन ने दरोगा की बात सुनी, तो उसकी भौहे तिरछी हो गयीं। बोला—दरोगाजी मरदों की एक बात होती है, मैं तो यही जानता हूँ। मैं रुपये आपके हुक्म से लाया हूँ। आपको अपना कौल पूरा करना पडेगा। कहके मुकर जाना नीचों का काम है।

इतने कठोर शब्द सुनकर दरोगाजी को भन्ना जाना चाहिए था; पर उन्होंने जरा भी बुरा न माना। हँसते हुए बोले—भई, अब चाहे नीच कहो चाहे दगाबाज; पर हम छोड़ नहीं सकते। ऐसे शिकार रोज

नहीं मिलते। कौल के पीछे अपनी तरक्की नहीं छोड सकता।

दरोगा के हँसने पर देवीदीन और भी तेज हुआ—तो आपने कहा किस मुँह से था ?

दरोगा—कहा तो इसी मुंह से था, लेकिन मुँह हमेशा एक-सा तो नही रहता। इसी मुँह से जिसे गाली देता हूँ, उसकी इसी मुँह से तारीफ भी करता हूँ।

देवी०—(तिनककर) यह मूछे मुड़वा डालिये।

दरोगा—मुझे बडी खुशी से मंजूर है ! नीयत तो मेरी पहले ही थी; पर शर्म के मारे न मुडवाता था। अब तुमने दिल मजबूत कर दिया।

देवी०—हँसिए मत दरोगाजी, आप हँसते है और मेरा खून जला जाता है। मुझे चाहे जेहल क्यों न हो जाय; लेकिन मैं कप्तान साहब से जरूर कह दूँगा। हूँ तो टके का आदमी, पर आपके अकबाल से बडे-बड़े अफसरों तक पहुँच है !

दरोगा—अरे यार, तो क्या सचमुच कप्तान साहब से मेरी शिकायत कर दोगे ?

देवीदीन ने समझा कि धमकी कारगर हुई। अकड़कर बोला—आप जब किसी की नही सुनते, बात कहकर मुकर जाते है, तो दूसरे भी अपनी-सी करेंगे ही। मेमसाहब तो रोज ही दूकान पर आती हैं।

दरोगा—अगर तुमने साहब या मेम साहब से मेरी कुछ भी शिकायत की, तो कसम खाकर कहता हूँ, घर खुदवाकर फेंक दूँगा।

देवी०—जिस दिन मेरा घर खुदेगा, उस दिस यह पगड़ी और चपरास भी न रहेगी हुजूर।

दरोगा—अच्छा तो मारो हाथ पर हाथ ! हमारी तुम्हारी दो-दो चोटे हो जायँ, यही सही !

देवी—पछताओगे सरकार, कहे देता हूँ पछताओगे।

रमा अब ज़ब्त न कर सका। अब तक वह देवीदीन के बिगड़ने का तमाशा देखने के लिए भीगी बिल्ली-सा बना खड़ा था। कहकहा मारकर बोला—दादा, दरोगाजी तुम्हे चिढ़ा रहे है। हम लोगों मे ऐसी सलाह हो गयी है कि मैं बिना कुछ दिये-लिये ही छूट जाऊँगा, ऊपर से नौकरी भी

मिल जायगी। साहब ने पक्का वायदा किया है। मुझे अब यहीं रहना होगा।

देवीदीन ने रास्ता भटके हुए आदमी की भाँति कहा—कैसी बात है भैया, क्या कहते हो? क्या पुलिसवालों के चकमे मे आ गये? इसमे कोई-न-कोई चाल जरूर छिपी होगी।

रमा ने इतमीनान के साथ कहा—और कोई बात नहीं, एक मुकदमे मे शहादत देनी पडेगी।

देवीदीन ने संशय से सिर हिलाकर कहा—झूठा मुकदमा होगा।

रमा०—नहीं दादा, बिल्कुल सच्चा मामला है। मैंने पहले ही पूछ लिया है।

देवीदीन की शंका शान्ति न हुई। बोला—मैं इस बारे मे कुछ नहीं कह सकता भैया, जरा सोच-समझकर काम करना। अगर मेरे रुपये को डरते हो तो यही समझ लो कि देवीदीन ने अगर रुपयों की परवाह की होती, तो आज लखपती होता। इन्हीं हाथों से सौ-सौ रुपये रोज कमाये और सबके-सब उड़ा दिये हैं। किस मुकदमे मे शहादत देनी है? कुछ मालूम हुआ?

दरोगाजी ने रमा को जवाब देने का अवसर न देकर कहा—वही डकैतियोंवाला मुआमला है जिसमें कई गरीब आदमियों की जान गयी थी। इन डाकुओं ने सूबे-भर मे हंगामा मचा रखा था। उनके डर के मारे कोई आदमी गवाही देने पर राजी नहीं होता।

देवीदीन ने उपेक्षा के भाव से कहा—अच्छा, तो यह कहो मुखबिर बन गये? यह बात है! इसमे तो जो पुलिस सिखायेगी वही तुम्हें कहना पड़ेगा, भैया। मैं छोटी समझ का आदमी हूँ, इन बातों का मरम क्या जानूं; पर मुखबिर बनने को कहा जाता, तो मैं न बनता, चाहे कोई लाख रुपये देता। बाहर के आदमी को क्या मालूम कौन अपराधी है, कौन बेकसूर है। दो-चार अपराधियों के साथ दो-चार बेकसूर भी जरूर होंगे।

दरोगा—हर्गिज नहीं। जितने आदमी पकडे गये हैं, सब पक्के डाकू हैं।

देवी०—यह तो आप कहते है न, हमे क्या मालूम।

दरोगा—हम लोग बेगुनाहों को फँसायेंगे ही क्यो? यह तो सोचो।

देवी०—यह सब भुगते बैठा हूँ, दारोगाजी। इससे तो यही अच्छा है कि आप इनका चालान करदें। साल-दो-साल का जेहल ही तो होगा। एक

अधरम के डण्ड से बचने के लिये बेगुनाहों का खून तो सिर पर न चढ़ेगा।

रमा ने भीरुता से कहा—मैंने खूब सोच लिया है दादा, सब कागज देख लिये हैं, इसमे कोई बेगुनाह नही है।

देवीदीन ने उदास होकर कहा—होगा भाई। जान भी तो प्यारी होती है।

यह कहकर वह पीछे घूम पड़ा। अपने मनोभावो को इससे स्पष्ट रूप मे वह प्रकट न कर सकता था।

एकाएक उसे एक बात याद आ गयी। मुडकर बोला—तुम्हे कुछ रुपये देता जाऊँ?

रमा ने खिसियाकर कहा—क्या जरूरत है?

दारोगा—आज से इन्हे यहीं रहना पडेगा।

देवीदीन ने कर्कश स्वर मे कहा—हुजूर, इतना जानता हूँ। इनकी दावत होगी, बँगला रहने को मिलेगा, नौकर मिलेंगे, मोटर मिलेगी। यह सब जानता हूँ। कोई बाहर का आदमी इनसे न मिलने पायेगा, न यह अकेले कहीं आ-जा सकेंगे। यह सब देख चुका हूँ।

यह कहता हुआ देवीदीन तेजी से कदम उठाता हुआ चल दिया, मानों यहाँ उसका दम घुट रहा हो। दारोगा ने उसे पुकारा, पर उसने फिर कर न देखा। उसके मुख पर पराभूत वेदना छायी हुई थी। जग्गो ने कहा—भैया नहीं आ रहे हैं?

देवीदीन ने सड़क की ओर ताकते हुए कहा—भैया अब नहीं आवेंगे। जब अपने ही अपने न हुए तो बेगाने तो बेगाने हैं ही।

वह चला गया। बुढ़िया भी पीछे-पीछे भुनभुनाती चली।

(३५)

रुदन मे कितना उल्लास, कितनी शान्ति, कितना बल है। जो कभी एकात मे बैठकर, किसी की स्मृति, किसी के वियोग मे सिसक-सिसक और बिलख-बिलख कर नहीं रोया, वह जीवन के ऐसे सुख से वंचित है, जिस पर सैकडों हँसियाँ न्योछावर हैं। उस मीठी वेदना का आनन्द उन्हीं से पूछो जिन्होंने यह सौभाग्य प्राप्त किया है। हँसी के बाद मन खिन्न हो जाता है, आत्मा क्षुब्ध हो जाती है, मानो हम थक गये हों, पराभूत हो

गये हों। रुदन के पश्चात् एक नवीन स्फूर्ति, एक नवीन जीवन, एक नवीन उत्साह का अनुभव होता है। जालपा के पास 'प्रजा-मित्र' कार्यालय का पत्र पहुँचा, तो उसे पढ़कर वह रो पड़ी। पत्र एक हाथ मे लिये, दूसरे हाथ से चौखट पकड़े, वह खूब रोयी। क्या सोचकर रोयी, यह कौन कह सकता है? कदाचित् अपने उपाय की इस आशातीत सफलता ने उसकी आत्मा को विह्वल कर दिया, आनन्द की उस गहराई पर पहुँचा दिया, जहाँ पानी है या उस ऊँचाई पर जहाँ उष्णता हिम बन जाती है। आज छः महीने के बाद यह सुख संवाद मिला। इतने दिनों वह छलमयी आशा और कठोर दुराशा का खिलौना बनी रही। आह! कितनी बार उसके मन मे तरङ्ग उठी कि इस जीवन का क्यों न अंत कर दूँ! कहीं मैंने सचमुच प्राण त्याग दिये होते, तो उनके दर्शन भी न पाती। पर उनका हिया कितना कठोर है। छ: महीने से वहाँ बैठे है, एक पत्र भी नहीं लिखा, खबर तक नहीं ली। आखिर यह न समझ लिया होगा, कि बहुत होगा रो-रोकर मर जायगी। उन्होंने मेरी परवा ही कब की! दस-बीस रुपये तो आदमी यार-दोस्तो पर भी खर्च कर देता है। वह प्रेम नहीं है। प्रेम हृदय की वस्तु है, रुपये की नहीं। जब तक रमा का कुछ पता न था, जालपा सारा इलजाम अपने सिर पर रखती थी; पर आज उनका पता पाते ही उसका मन अकस्मात् कठोर हो गया। तरह-तरह के शिकवे पैदा होने लगे। वहाँ क्या समझकर बैठे है? इसीलिए तो कि वह स्वाधीन हैं, आजाद है, किसी का दिया नहीं खाते। इसी तरह मैं कहीं बिना कहे-सुने चली जाती, तो वह मेरे साथ किस तरह पेश आते? शायद तलवार लेकर गर्दन पर सवार हो जाते या जिन्दगी भर मुँह न देखते। वहीं खड़े-खड़े जालपा ने मन-ही-मन शिकायतों का दफ्तर खोल दिया।

सहसा रमेश बाबू ने द्वार पर पुकारा—गोपी, गोपी जरा इधर आना।

मुंशीजी ने अपने कमरे मे पड़े-पड़े कराहकर कहा—कौन है भाई, कमरे मे आ जाओ। अरे आप है रमेश बाबू! बाबूजी, मैं तो मरकर जिया हूँ। बस, यही समझिये कि नयी जिन्दगी हुई। कोई आशा न थी। कोई आगे न कोई पीछे; दोनों लौंडे आवारा है, मरूँ या जीऊँ उनसे मतलब

नहीं, उनकी माँ को मेरी सूरत देखते डर लगता है। बस, बेचारी बहू ने मेरी जान बचायी। वह न होती, तो अब तक चल बसा होता।

रमेश बाबू ने कृत्रिम समवेदना दिखाते हुए कहा—आप इतने बीमार हो गये और मुझे खबर तक न हुई। मेरे यहाँ रहते आपको इतना कष्ट हुआ! बहू ने मुझे एक पुरजा न लिख दिया। छुट्टी लेनी पड़ी होगी?

मुशीजी—छुट्टी के लिए दरख्वास्त तो भेज दी थी; मगर साहब, मैंने डाक्टरी सार्टीफिकेट नहीं भेजी। सोलह रुपये किसके घर से आता। एक दिन सिविल सर्जन के पास गया; मगर उन्होंने चिट्ठी लिखने से इन्कार किया। आप तो जानते ही है, वह बिना फीस लिए बात नहीं करते। मैं चला आया और दरख्वास्त भेज दी। मालूम नही, मजूर हुई या नही। यह तो डाक्टरो का हाल है। देख रहे है, कि आदमी मर रहा है; पर बिना भेंट लिए कदम न उठायेंगे।

रमेश बाबू ने चिन्तित होकर कहा—यह तो आपने बड़ी बुरी खबर सुनायी। अगर आपकी छुट्टी नामंजूर हुई तो क्या होगा?

मुंशीजी ने माथा ठोककर कहा—होगा क्या, घर बैठ रहूँगा। साहब पूछेंगे तो साफ कह दूँगा, मैं सर्जन के पास गया था, उसने चिट्ठी नही दी। आखिर इन्हे क्यों सरकार ने नौकर रखा है। महज कुरसी की शोभा बढ़ाने के लिए? मुझे डिसमिस हो जाना मजूर है, पर सार्टीफिकेट न दूँगा। लौंडे गायब है। आपके लिए पान तक लानेवाला कोई नहीं। क्या करूँ।

रमेश ने मुसकरकर कहा—मेरे लिए आप तरद्दुद न करें। मैं आज पान खाने नहीं, भर पेट मिठाई खाने आया हूँ। (जालपा को पुकारकर) बहूजी, तुम्हारे लिए खुशखबरी लाया हूँ। मिठाई मँगवा लो।

जालपा ने पान की तश्तरी उनके सामने रखकर कहा—पहले वह खबर सुनाइए। शायद आप जिस खबर को नयी समझ रहे हों, वह पुरानी हो गयी हो!

रमेश—जी, कहीं हो न! रमानाथ का पता चल गया। कलकत्ते मे है।

जालपा—मुझे पहले ही मालूम हो चुका है।

मुन्शीजी झपटकर उठ बैठे। उनका ज्वर मानो भागकर उत्सुकता की आड़ मे जा छिपा। रमेश का हाथ पकड़कर बोले—मालूम हो गया कलकत्ते मे हैं? कोई खत आया था?

रमेश—खत नहीं था, एक पुलिस इंक्वायरी थी। मैंने कह दिया, उन पर किसी तरह का इल्जाम नहीं है। तुम्हे कैसे मालूम हुआ बहूजी?

जालपा ने अपनी स्कीम बयान की। 'प्रजा-मित्र' कार्यालय का पत्र भी दिखाया। पत्र के साथ रुपयों की एक रसीद थी जिस पर रमा का हस्ताक्षर था।

रमेश—दस्तखत तो रमा बाबू का है, बिल्कुल साफ। धोखा हो ही नहीं सकता। मान गया बहूजी तुम्हे वाह, क्या हिकमत निकाली है! हम सबके कान काट लिये। किसी को न सूझी। अब सोचते हैं, तो मालूम होता है, कितनी आसान बात थी। किसी को जाना चाहिए जो बचा को पकड़कर घसीट लाये।

यही बातचीत हो रही थी कि रतन आ पहुँची—जालपा उसे देखते ही वहाँ से निकली और उसके गले से लिपटकर बोली—बहन, कलकत्ते से पत्र आ गया है। वहीं हैं।

रतन—मेरे सिर की कसम?

जालपा—हाँ, सच कहती हूँ। खत देखो न!

रतन—तो तुम आज ही चली जाओ।

जालपा—यही तो मैं भी सोच रही हूँ; तुम चलोगी?

रतन—चलने को तो मैं तैयार हूँ; लेकिन अकेला घर किस पर छोड़ूँ बहन, मुझे मणिभूषण पर कुछ शुबहा होने लगा है। उसकी नियत अच्छी नहीं मालूम होती। बैंक मे बीस हजार रुपये से कम न थे। सब न जाने कहाँ उड़ा दिये। कहता है, क्रिया-कर्म मे खर्च हो गये। हिसाब माँगती हूँ, तो आँखें दिखाता है। दफ्तर की कुन्जी अपने पास रखे हुए हैं। माँगती हूँ, तो टाल जाता है। मेरे साथ कोई कानूनी चाल चल रहा है। डरती हूँ, मैं उधर जाऊँ इधर यह सब-कुछ ले-देकर चलता बने। बंगले के गाहक आ रहे है। मैं भी सोचती हूँ, गाँव मे जाकर

शांति से पड़ी रहूँ। बँगला बिक जायगा तो नकद रुपये हाथ आ जायँगे। मैं न रहूँगी, तो शायद ये रुपये मुझे देखने को भी न मिलें। गोपी को साथ लेकर आज ही चली जाओ। रुपये का इन्तजाम मैं कर दूँगी।

जालपा—गोपीनाथ तो शायद न जा सकें। दादा की दवा-दारू के लिए भी तो कोई चाहिये।

रतन—वह मैं कर दूँगी। मैं रोज सवेरे आ जाऊँगी और दवा देकर चली जाऊँगी। शाम को भी एक बार देख जाया करूँगी।

जालपा ने मुसकराकर कहा—और दिन भर उनके पास बैठा कौन रहेगा?

रतन—मैं थोडी देर बैठी भी रहा करूँगी; मगर तुम आज ही जाओ। बेचारे वहाँ न-जाने किस दशा मे होंगे। तो यही तय रही न?

रतन मुन्शीजी के कमरे मे गयी, तो रमेश बाबू उठकर खड़े हो गये और बोले—आइए देवीजी, रमा बाबू का पता चल गया।

रतन—इसमे आधा श्रेय मेरा है।

रमेश—आपकी सहायता से तो हुआ ही होगा। अब उन्हे यहाँ लाने की फिक्र करनी है।

रतन—जालपा चली जायँ और पकड़ लायें। गोपी को साथ लेती जाये। आपको इसमे कोई आपत्ति तो नहीं है, दादाजी?

मुन्शीजी को आपत्ति तो थी, उनका बस चलता तो इस अवसर पर दस-पाँच आदमियों को और जमा कर लेते, फिर घर के आदमियों के चले जाने पर क्यों आपत्ति न होती। मगर समस्या ऐसी आ पड़ी थी, कि कुछ बोल न सके।

गोपी कलकत्ते की सैर का ऐसा अच्छा अवसर पाकर क्यों न खुश होता। विश्वम्भर दिल मे ऐंठकर रह गया। विधाता ने उसे छोटा न बनाया होता, तो आज उसकी यह हकतलफी न होती। गोपी ऐसे कहाँ के बडे होशियार है, जहाँ जाते है कोई-न-कोई चीज खो आते है। हाँ, मुझसे बडे है। इस दैवी विधान ने उसे मजबूर कर दिया।

रात को सात बजे जालपा चलने को तैयार हुई। सास-ससुर के चरणों पर सिर झुकाकर आशीर्वाद लिया, विश्वम्भर रो रहा था, उसे

गले लगाकर प्यार किया और मोटर पर बैठी। रतन स्टेशन तक पहुँ-चाने आयी थी।

मोटर चली तो जालपा ने कहा—बहन, कलकत्ता तो बहुत बड़ा शहर होगा। वहाँ कैसे पता चलेगा।

रतन—पहले 'प्रजा-मित्र' के कार्यालय मे जाना। वहाँ पता चल जायगा। गोपी बाबू तो है ही।

जालपा—ठहरूँगी कहाँ?

रतन—धर्मशाला है। नहीं तो होटल मे ठहर जाना। देखो, रुपये की जरूरत पड़े, तो मुझे तार देना; कोई-न-कोई इन्तजाम करके भेजूगी। बाबूजी आ जायँ, तो मेरा बडा उपकार हो। मणिभूषण मुझे तबाह कर देगा।

जालपा—होटलवाले बदमाश तो न होंगे?

रतन—कोई जरा भी शरारत करे तो ठोकर मारना। बस, कुछ पूछना मत। ठोकर जमाकर तब बात करना। (कमर से एक छुरी निकाल-कर) इसे अपने पास रख लो। कमर मे छिपाये रखना। मैं जब कभी बाहर निकलती हूँ, तो इसे अपने पास रख लेती हूँ, इससे दिल बड़ा मजबूत रहता है। जो मर्द किसी स्त्री को छेडता है, उसे समझ लो पल्ले सिरे का कायर, नीच और लम्पट है। तुम्हारी छुरी की चमक और तुम्हारे तेवर देखकर उसकी रूह फ़ना हो जायेगी। सीधा दुम दबाकर भागेगा; लेकिन अगर ऐसा मौका आ ही पड़े जब तुम्हें छुरी से काम लेने के लिए मजबूर हो जाना पड़े, तो जरा भी मत झिझकना। छुरी लेकर पिल पड़ना। इसकी बिलकुल फिक्र मत करना, कि क्या होगा क्या न होगा। जो कुछ होना होगा, हो जायगा।

जालपा ने छुरी ले ली; पर कुछ बोली नहीं। उसका दिल भारी हो रहा था। इतनी बाते सोचने और पूछने की थीं, कि उनके विचार से ही उसका दिल बैठा जाता था।

स्टेशन आ गया। कुलियों ने असबाब उतारा। गोपी टिकट लाया। जालपा पत्थर की मूर्ति की भाँति प्लेटफार्म पर खड़ी रही, मानो चेतना-शून्य हो गयी हो। किसी बड़ी परीक्षा के पहले हम मौन हो जाते हैं,

हमारी सारी शक्तियाँ उस संग्राम की तैयारी मे लग जाती हैं।

रतन ने गोपी से कहा—होशियार रहना।

गोपी इधर कई महीनो से कसरत करता था। चलता तो मोढ़े और छाती को देखा करता। देखनेवालो को तो वह ज्यों-का-त्यों मालूम होता है, पर अपनी नजर मे वह कुछ और हो गया था। शायद उसे आश्चर्य होता था, कि उसे आते देखकर क्यों-लोग रास्ते से नहीं हट जाते, क्यों उसके डील-डौल से भयभीत नहीं हो जाते। अकड़कर बोला—किसी ने जरा भी चीं-चपड़ की तो हड्डी तोड़ दूँगा।

रतन मुसकराई और बोली—यह तो मुझे मालूम है। सो मत जाना।

गोपी—पलक तक तो झपकेगी नहीं। मजाल है, नींद आ जाय!

गाडी आ गयी। गोपी ने एक डिब्बे मे घुसकर कब्जा जमाया। जालपा की आँखो मे आँसू भरे हुए थे। बोली—बहन, आशीर्वाद दो कि उन्हे लेकर कुशल से लौट आऊँ।

इस समय उसका दुर्बल मन कोई आश्रय, कोई सहारा, कोई बल, ढूढ़ रहा था और आशीर्वाद और प्रार्थना के सिवा वह बल उसे और कौन प्रदान करता। यही बल और शान्ति का वह आश्रय-भण्डार है जो किसी को निराश नही करता, जो सबकी बाँह पकड़ता है, सबका बेड़ा पार लगाता है।

इंजिन ने सीटी दी। दोनों सहेलियाँ गले मिलीं। जालपा गाड़ी मे बैठी।

रतन ने कहा—जाते-ही-जाते खत भेजना।

जालपा ने सिर हिलाया।

'अगर मेरी जरूरत मालूम हो, तो तुरन्त लिखना। मैं सब-कुछ छोड़कर चली आऊँगी।

जालपा ने सिर हिला दिया।

'रास्ते मे रोना मत।'

जालपा हँस पड़ी। गाड़ी चल दी।

(३६)

देवीदीन ने चाय की दूकान उसी दिन से बन्द कर दी थी; और दिन

भर उस अदालत की खाक छानता फिरता था जिसमें डकैती का मुकदमा पेश था और रमानाथ की शहादत हो रही थी। तीन दिन रमा की शहादत बराबर होती रही और तीनों दिन देवीदीन ने न कुछ खाया और न सोया। आज भी उसने घर आते-ही-आते कुरता उतार दिया और एक पंखिया लेकर झलने लगा। फागुन लग गया था और कुछ-कुछ गर्मी शुरू हो गई थी; पर इतनी गर्मी न थी कि पसीना बहे या पंखे की जरूरत हो। अफसर लोग तो जाड़ों के कपड़े पहने हुए थे; लेकिन देवीदीन पसीने में तर था। उसका चेहरा, जिस पर निष्कपट बुढ़ापा हँसता रहता था, खिसियाया हुआ था, मानों बेगार से लौटा हो!

जग्गो ने लोटे मे पानी लाकर रख दिया और बोली—चिलम रख दूँ? देवीदीन की आज तीन दिन से खातिर हो रही थी। इसके पहले बुढ़िया कभी चिलम रखने को न पूछती। देवीदीन इसका मतलब समझता था। बुढ़िया को सदय नेत्रों से देखकर बोला—नहीं रहने दो, न पीऊँगा।

'तो मुँह-हाथ तो धो लो, गर्द पड़ी हुई है।'

'धो लूँगा, जल्दी क्या है!'

बुढ़िया आज का हाल जानने को उत्सुक थी; पर डर रही थी, कहीं देवीदीन झुँझला न पड़े। वह उसकी थकान मिटा देना चाहती थी, जिससे देवीदीन प्रसन्न होकर आप-ही-आप सारा वृत्तान्त कह चले।

'तो कुछ जलपान कर लो। दोपहर को भी तो कुछ नहीं खाया था। मिठाई लाऊँ? लाओ, पंखी मुझे दे दो।

देवीदीन ने पंखिया दे दी। बुढ़िया झलने लगी। दो-तीन मिनट आँखे बन्द करके बैठे रहने के बाद देवीदीन ने कहा—आज भैया की गवाही खतम हो गयी।

बुढ़िया का हाथ रुक गया। बोली—तो कल से घर आ जायँगे?

देवी०—अभी नहीं छुट्टी मिली जाती। यही बयान दिपानी मे देना पड़ेगा। और अब वह यहाँ आने ही क्यों लगे। कोई अच्छी जगह मिल जायगी। घोडे पर चढ़े-चढ़े घूमेगे; मगर है बड़ा पक्का मतलबी। पन्द्रह बेगुनाहो को फँसा दिया। पाच-छः को तो फाँसी हो ज़ायगी, औरों को

तो दस-दस बारह-बारह साल की सजा मिली रखी है। इसी के बयान से मुकदमा साबित हो गया। कोई कितनी ही जिरह करे, क्या मतलब, जो जरा भी हिचकिचाये। अब एक भी न बचेगा। किसने कर्म किया किसने नहीं किया, इसका हाल दैव जाने, पर मारे सब जायेंगे। घर से भी सरकारी रुपया खाकर भागा था। हमे धोखा हुआ।

जग्गो ने मीठे तिरस्कार से देखकर कहा—अपनी नेकी-बदी अपने साथ है। मतलबी तो संसार है, फिर कौन किसके लिए मरता है।

देवीदीन ने तीव्र स्वर मे कहा—अपने मतलब के लिए जो दूसरों का गला काटे उसको जहर दे देना भी पाप नहीं है!

सहसा दो प्राणी आकर खडे हो गये। एक गोरा, खबसूरत लड़का था, जिसकी उम्र पन्द्रह-सोलह से ज्यादा न थी। दूसरा अधेड़ था और सूरत से चपरासी मालूम होता था।

देवीदीन ने पूछा—किसे खोजते हो?

चपरासी ने कहा—तुम्हारा ही नाम देवीदीन है न? मैं 'प्रजा-मित्र' के दफ्तर से आया हूँ। यह बाबू उन्हीं रमानाथ के भाई हैं, जिन्हें शत-रंज का इनाम मिला था। यह उन्हीं की खोज मे दफ्तर गये थे। सम्पा-दकजी ने तुम्हारे पास भेज दिया। तो मैं जाऊँ न?

यह कहता हुआ वह चला गया। देवीदीन ने गोपी को सिर से पाँव तक देखा। आकृति रमा से मिलती थी। बोला—आओ बेटा, बैठो। कब आए घर से?

गोपी ने एक खटिक की दूकान पर बैठना शान के खिलाफ समझा। खडा-खड़ा बोला—आज ही तो आया हूँ! भाभी साथ हैं। धर्मशाला मे ठहरा हुआ हूँ।

देवीदीन ने खडे होकर कहा—जाकर बहू को यहीं लाओ न! ऊपर तो रमा बाबू का कमरा है ही, आराम से रहो। धर्मशाला में क्यों रहोगे? नहीं, चलो, मैं भी चलता हूँ। यहाँ सब तरह का आराम है।

उसने जग्गो को यह खबर सुनायी और ऊपर झाड़ू लगाने को कह-कर गोपी के साथ धर्मशाले चल दिया। बुढ़िया ने तुरन्त ऊपर झाड़ू लगायी, हलवाई की दूकान से मिठाई और दही लायी। सुराही मे पानी

भरकर रख दिया। फिर अपना हाथ-मुँह धोया, एक रङ्गीन साड़ी निकाली गहने पहने और बन-ठनकर बहू की राह देखने लगी।

इतने मे फिटन भी आ पहुँची। बुढ़िया ने जाकर जालपा को उतारा। जालपा पहले तो साग-भाजी की दूकान देखकर कुछ झिझकी; पर बुढ़िया का स्नेह-स्वागत देखकर उसकी झिझक दूर हो गयी। उसके साथ ऊपर गयी, तो हर एक चीज इस तरह अपनी जगह पर पायी मानो अपना ही घर हो।

जग्गो ने लोटे मे पानी रखकर कहा—इसी घर मे भैया रहते थे, बेटी! आज पन्द्रह रोज से घर सूना पड़ा हुआ है। मुँह-हाथ धोकर दही-चीनी खा लो न, बेटी। भैया का हाल तो अभी तुम्हें न मालूम हुआ होगा।

जालपा ने सिर हिलाकर कहा—कुछ ठीक-ठीक नहीं मालूम हुआ। वह जो पत्र छपता है, वहाँ मालूम हुआ था कि पुलिस ने गिरफ़्तार कर लिया है।

देवीदीन भी ऊपर आ गया था। बोला—गिरफ्तार तो किया था; पर अब तो वह एक मुकदमे मे सरकारी गवाह हो गये। परागराज मे अब उन पर कोई मुकदमा न चलेगा और साइत नौकरी-चाकरी भी मिल जाय।

जालपा ने गर्व से कहा—क्या इसी डर से सरकारी गवाह हो गये है? वहाँ तो उन पर कोई मामला ही नहीं है। मुकदमा क्यों चलेगा?

देवीदीन ने डरते-डरते कहा—कुछ रुपये-पैसे का मुआमला था न?

जालपा ने मानो आहत होकर कहा—वह कोई बात न थी। ज्योंही हम लोगों को मालूम हुआ कि कुछ सरकारी रकम इनसे खर्च हो गयी है, उसी वक्त पहुँचा दी। यह व्यर्थ घबराकर चले आये, और फिर ऐसी चुप्पी साधी कि अपनी खबर तक न दी।

देवीदीन का चेहरा जगमगा उठा, मानो किसी व्यथा से आराम मिल गया हो, बोला—तो यह हम लोगों को क्या मालूम! बार-बार समझाता कि घर खत-पत्तर भेज दो, लोग घबराते होंगे; पर मारे शरम के लिखते ही न थे। धोखे में पड़े रहे कि परागराज में मुकदमा चल गया

होगा। जानते तो सरकारी गवाह क्यों बनते ?

'सरकारी गवाह' का आशय जालपा से छिपा न था। समाज में उसकी जो निन्दा और अपकीर्ति होती है, यह भी उससे छिपी न थी। सरकारी गवाह क्यों बनाये जाते है, किस तरह उन्हे प्रलोभन दिया जाता है, किस भाँति वह पुलिस के पुतले बनकर अपने ही मित्रो का गला घोटते है, यह उसे मालूम था। अगर कोई आदमी अपने बुरे आचरण पर लज्जित होकर सत्य का उद्‌घाटन करे, छल और कपट का आवरण हटा दे, तो वह सज्जन है, उसके साहस की जितनी प्रशंसा की जाय, कम है; मगर शर्त यही कि अपनी गोष्ठी के साथ किये का फल भोगने को तैयार रहे, हँसता-खेलता फाँसी पर चढ़ जाय। वही सच्चा वीर है। लेकिन अपने प्राणों की रक्षा के लिए स्वार्थ के नीच विचार से, दंड की कठोरता से भयभीत अपने साथियो से दगा करे, आस्तीन का साँप बन जाय, तो वह कायर है, पतित है, बेहया है। विश्वासघात डाकुओं और समाज के शत्रुओं मे भी उतना ही हेय है जितना किसी अन्य क्षेत्र मे। ऐसे प्राणी को समाज कभी क्षमा नहीं करता, कभी नहीं। जालपा इसे खूब समझती थी। यहाँ तो समस्या और भी जटिल हो गयी थी। रमा ने दंड के भय से अपने किये हुए पापों का पर्दा नहीं खोला था। उसमे कम-से-कम सच्चाई तो होती, निन्द्य होने पर भी आंशिक सच्चाई का एक गुण तो होता। यहाँ तो पापों का पर्दा खोला गया था, जिनकी हवा तक उसे न लगी थी। जालपा को सहसा इसका विश्वास न आया। अवश्य कोई-न-कोई बात और होगी जिसने रमा को सरकारी गवाह बनने पर मजबूर कर दिया होगा। सकुचाती हुई बोली—क्या यहाॅ भी कोई कोई बात हो गयी थी ?

देवीदीन उसकी मनोव्यथा का अनुभव करता हुआ बोला—कोई बात नहीं। यहाॅ वह मेरे साथ ही परागराज से आये। जबसे आये यहाँ से कही गये नहीं। बाहर निकलते ही न थे। बस, एक दिन निकले और उसी दिन पुलिस ने पकड़ लिया। एक सिपाही को आते देखकर डरे कि मुझी को पकड़ने आ रहा है, भाग खड़े हुए। उस सिपाही को खटका हुआ। उसने शुबहा से गिरफ़्तार कर लिया। मैं भी उनके पीछे थाने

मे पहुँचा। दारोगा पहले रिसवत माँगते थे; मगर जब मैं घर से रुपये लेकर गया, तो वहाँ और ही गुल खिल गया था। अफसरो मे न जाने क्या बातचीत हुई। उन्हे सरकारी गवाह बना लिया। मुझसे तो भैया ने यही कहा कि मुआमले मे बिलकुल झूठ न बोलना पडेगा! पुलिस का मुकदमा सच्चा है। सच्ची बात कह देने मे क्या हरज़ है। मैं चुप हो रहा। क्या करता।

जग्गो—न जाने सबो ने कौन-सी बूटी सुंघा दी। भैया तो ऐसे न थे। दिन भर अम्मा अम्मा करते रहते थे। दूकान पर सभी तरह के लोग आते थे, मर्द भी औरत भी। क्या मजाल, कि किसी की ओर आँख उठाकर देखा हो।

देवी०—कोई बुराई न थी। मैंने तो ऐसा लड़का ही नहीं देखा। उसी धोखे मे आ गये।

जालपा ने एक मिनट सोचने के बाद कहा—क्या उनका बयान हो गया?

'हाँ, तीन दिन बराबर होता रहा। आज खतम हो गया।'

जालपा ने उद्विग्न होकर कहा—तो अब कुछ नहीं हो सकता? मैं उनसे मिल सकती हूँ?

देवीदीन जालपा के इस प्रश्न पर मुसकरा पड़ा। बोला—हाँ और क्या, जिसमे जाकर भंडाफोड़ कर दो, सारा खेल बिगाड़ दो! पुलिस ऐसी गधी नहीं है। आजकल कोई भी उनसे मिलने नहीं पाता। कड़ा पहरा रहता है।

इस प्रश्न पर इस समय और कोई बातचीत न हो सकती थी। इस गुत्थी को सुलझाना आसान न था। जालपा ने गोपी को बुलाया। वह छज्जे पर खड़ा सडक का तमाशा देख रहा था। ऐसा शरमा रहा था, मानों ससुराल आया हो, धीरे-धीरे आकर खड़ा हो गया।

जालपा ने कहा—मुँह-हाथ धोकर कुछ खा तो लो। दही तो तुम्हे बहुत अच्छा लगता है।

गोपी लजाकर फिर चला गया।

देवीदीन ने मुसकराकर कहा—हमारे सामने न खायँगे। हम दोनों

चले जाते है। तुम्हे जिस चीज की जरूरत हो, हमसे कह देना, बहूजी। तुम्हारा ही घर है। भैया को तो हम अपना ही समझते थे। और हमारे कौन-बैठा हुआ है?

जग्गो ने गर्व से कहा—वह मेरे हाथ का बनाया खा लेते थे जरूर।

जालपा ने मुसकराकर कहा—अब तुम्हे भोजन न बनाना पडेगा माजी, मैं बना दिया करूँगी।

जग्गो ने आपत्ति की—हमारी बिरादरी मे दूसरों के हाथ का खाना मना है बहू। अब चार दिन के लिए बिरादरी मे नक्कू क्यो बनूँ।

जालपा—हमारी बिरादरी मे भी तो दूसरो का खाना मना है।

जग्गो—तुम्हे यहाँ कौन देखने आता है। फिर पढ़े-लिखे आदमी इन बातों पर विचार भी तो नहीं करते। हमारी बिरादरी तो मूरख लोगों की है।

जालपा—यह तो अच्छा नही लगता कि तुम बनाओ और मैं खाऊँ। जिसे बहू बनाया, उसके हाथ का खाना पडेगा। नहीं खाना था, तो बहू क्यों बनाया?

देवीदीन ने जग्गो की ओर प्रशंसा-सूचक नेत्रो से देखकर कहा—बहू ने बात तो पते की कह दी। इसका जवाब सोचकर देना। अभी इन लोगों को जरा आराम करने दो।

दोनों नीचे चले गये तो गोपी ने आकर कहा—भैया इसी खटिक के यहाँ रहते थे क्या? खटिक ही तो मालूम होते हैं।

जालपा ने फटकारकर कहा—खटिक हो या चमार हो, लेकिन हमसे और तुमसे सौ-गुने अच्छे है। एक परदेशी को छः महीने तक अपने घर मे ठहराया, खिलाया-पिलाया। हममे है इतनी हिम्मत? यहाँ तो कोई मेहमान आ जाता है, तो वह भारी हो जाता है। अगर यह नीच है तो हम इनसे कहीं नीच है।

गोपी मुँह हाथ धो चुका था। मिठाई खाता हुआ बोला—किसी को ठहरा लेने से कोई ऊँचा नहीं हो जाता। चमार कितना ही दान-पुण्य करे, पर रहेगा तो चमार ही।

जालपा—मैं उस चमार को उस पण्डित से अच्छा समझूँगी जो

हमेशा दूसरों का धन खाया करता है।

जलपान करके गोपी नीचे चला गया। शहर घूमने की उसकी बड़ी इच्छा थी। जालपा की इच्छा कुछ खाने को न हुई। उसके सामने एक जटिल समस्या खडी थी—रमा को कैसे इस दलदल से निकाले। उस निन्दा और उपहास की कल्पना ही से उसका अभिमान आहत हो उठता था। हमेशा के लिए वह सबकी आँखों मे गिर जायँगे, किसी को मुँह न दिखा सकेंगे।

फिर, बेगुनाहों का खून किसकी गर्दन पर होगा। अभियुक्तो मे न जाने कौन अपराधी है, कौन निरपराध है; कितने द्वेष के शिकार हैं, कितने लोभ के; सभी सजा पा जायँगे। शायद दो-चार को फाँसी भी हो जाय किस पर यह हत्या पडेगी?

उसने फिर सोचा, मानो किसी पर हत्या न पडगी। कौन जानता है, हत्या पड़ती है या नहीं। लेकिन अपने स्वार्थ के लिए—ओह! कितनी बडी नीचता है? यह कैसे इस बात पर राजी हुए? अगर म्युनिसिपैलिटी के मुकदमा चलने का भय भी था, तो दो-चार साल की कैद के सिवा और क्या होता। उससे बचने के लिये इतनी घोर नीचता पर उत्तर आये।

अब अगर मालूम भी हो जाय, कि म्युनिसिपैलिटी कुछ नहीं कर सकती, तो अब हो ही क्या सकता है। इनकी शहादत तो हो ही गयी।

सहसा एक बात किसी भारी कील की तरह उसके हृदय मे चुभ गयी!

क्यों न यह अपना बयान बदल दें? उन्हे मालूम हो जाय कि म्युनिसिपैलिटी उनका कुछ नहीं कर सकती, तो शायद खुद ही अपना बयान बदल दे। यह बात उन्हे कैसे बतायी जाय? किस तरह सम्भव है?

वह अधीर होकर नीचे उतर आयी और देवीदीन को इशारे से बुलाया। बोली—क्यों दादा, उनके पास कोई खत भी नहीं पहुँच सकता? पहरेवालों को दस-पाँच रुपये देने से तो शायद खत पहुँच जाय।

देवीदीन ने गर्दन हिलाकर कहा—मुश्किल है। पहरे पर बडे जँचे हुए आदमी रखे गये हैं। मैं दो बार गया था। सबों ने फाटक के सामने खडे भी न होने दिया।

'उस बँगले के आस-पास क्या है ?'

'एक ओर तो दूसरा बँगला है; एक ओर एक कलमी आम का बाग है, और सामने सड़क है ।'

'वह शाम को घूमने-घामने तो निकलते ही होंगे ?'

'हाँ, नाहर कुरसी डालकर बैठते हैं । पुलिस के दो-एक अफसर भी साथ रहते हैं ।'

'अगर कोई उस बाग मे छिपकर बैठे, तो कैसा हो । जब उन्हे अकेले देखे, खत फेंक दे । वह जरूर उठा लेंगे ।'

देवीदीन ने चकित होकर कहा—हाँ, हो तो सकता है; लेकिन अकेले मिले तब तो ।

जरा और अंधेरा हुआ, तो जालपा ने देवीदीन को साथ लिया और रमानाथ का बँगला देखने चली । एक पत्र लिखकर जेब मे रख लिया था । बार-बार देवीदीन से पूछती, अब कितनी दूर है ? अच्छा ! अभी इतनी ही दूर और ! वहाँ हाते मे रोशनी तो होगी ही । उसके दिल मे लहरें-सी उठने लगीं । रमा अकेले टहलते हुए मिल जायँ, तो क्या पूछना । रूमाल मे बाँधकर खत उनके सामने फेंक दूँ । उनकी सूरत बदल गयी होगी ।

सहसा उसे एक शंका हो गयी—कहीं वह पत्र पढ़कर भी अपना बयान न बदलें, तब क्या होगा ? कौन जाने अब मेरी याद भी उन्हे है या नहीं । कहीं मुझे देखकर वह मुँह फेर लें तो ? इस शंका से वह सहम उठी । देवीदीन से बोली—क्यों दादा, वह कभी घर की चर्चा करते थे ?

देवीदीन ने सिर हिलाकर कहा—कभी नहीं । मुझसे तो कभी नहीं की । उदास बहुत रहते थे ।

इन शब्दों ने जालपा की शंका को और भी सजीव कर दिया । शहर की घनी बस्ती से ये लोग दूर निकल आये थे । चारों ओर सन्नाटा था । दिन भर वेग से चलने के बाद इस समय पवन भी विश्राम कर रहा था । सड़क के किनारे के वृक्ष और मैदान चन्द्रमा के मन्द प्रकाश मे हतोत्साह, निर्जीव से मालूम होते थे । जालपा को ऐसा आभास होने लगा कि उसके

प्रयास का कोई फल नहीं है, उसकी यात्रा का कोई लक्ष्य नहीं है। इस अनन्त मार्ग मे उसकी दशा उस अनाथ की-सी है, जो मुट्ठी भर अन्न के लिए द्वार-द्वार फिरता है। वह जानता है, अगले द्वार पर उसे अन्न न मिलेगा, गालियाँ ही मिलेगी फिर भी वह हाथ फैलाता है, बढती मनाता है। उसे आशा का अवलम्ब नहीं, निराशा ही का अवलम्ब है।

एकाएक सड़क के दाहिनी तरफ बिजली का प्रकाश दिखाई दिया।

देवीदीन ने एक बँगले की ओर उँगली उठाकर कहा—यही उनका बँगला है।

जालपा ने डरते-डरते उधर देखा, मगर बिल्कुल सन्नाटा छाया हुआ था। कोई आदमी न था। फाटक पर ताला पड़ा हुआ था।

जालपा बोली—यहाँ तो कोई नहीं है।

देवीदीन ने फाटक के अन्दर झाककर कहा—हाँ, शायद यह बँगला छोड दिया।

'कहीं घूमने गये होंगे।'

'घूमने जाते, तो द्वार पर पहरा होता। यह बँगला छोड़ दिया।'

'तो लौट चलें।'

'नहीं, जरा पता लगाना चाहिए, गये कहाँ।'

बँगले की दाहिनी तरफ आमों के बाग मे प्रकाश दिखायी दिया। शायद खटिक बागों की रखवाली कर रहा था। देवीदीन ने बाग मे आकर पुकारा—कौन है यहाँ? किसने यह बाग लिया है?

एक आदमी आमों की झुरमुट से निकल आया। देवीदीन ने उसे पहचानकर कहा—अरे, तुम हो जंगली? तुमने यह बाग लिया है?

जंगली ठिगना-सा गठीला आदमी था, बोला—हाँ दादा ले लिया; पर कुछ है नही। दड ही भरना पडेगा। तुम यहाँ कैसे आ गये?

'कुछ नहीं; योंही चला आया था। इस बँगलेवाले आदमी क्या हुए?'

जंगली ने इधर-उधर देखकर कनबतियों मे कहा—इसमे वही मुखबिर टिका हुआ था। आज सब चले गये। सुनते हैं, पन्द्रह-बीस दिन में आयेंगे, जब फिर हाईकोर्ट में मुकदमा पेश होगा। पढ़े-लिखे आदमी भी ऐसे दगाबाज होते है दादा! सरासर झूठी गवाही दी। न जाने इसके

बाल-बच्चे हैं या नहीं; भगवान् को भी नहीं डरा !

जालपा वही खड़ी थी। देवीदीन ने जगली को और जहर उगलने का अवसर न दिया। बोला—तो पन्द्रह-बीस दिन मे आयेंगे, खूब मालूम है ?

जंगली—हाँ, पहरेवाले कह रहे थे।

'कुछ मालूम हुआ कहाँ गये है ?'

'वहीं मौका देखने गये है जहाँ वारदात हुई थी।'

देवीदीन चिलम पीने लगा और जालपा सडक पर आकर टहलने लगी। रमा की यह निन्दा सुनकर उसका हृदय टुकडे-टुकडे हुआ जाता था। उसे रमा पर क्रोध न आया, ग्लानि न आयी; उसे हाथों का सहारा देकर इस दलदल से निकालने के लिए उसका मन विकल हो उठा। रमा चाहे उसे दुत्कार ही क्यों न दे, उसे ठुकरा ही क्यो न दे, वह उसे अपयश के अँधेरे खड्ड मे न गिरने देगी।

जब दोनों यहाँ से चले तो जालपा ने पूछा—इस आदमी से कह दिया न कि जब वह आ जायँ तो हमे खबर दे दे ?

'हाँ, कह दिया हे।'

(३७)

एक महीना गुजर गया। गोपीनाथ पहले तो कई दिन कलकत्ते की सैर करता रहा, मगर चार-पाँच दिन मे ही यहाँ से उसका जी ऐसा उच्चाट हुआ कि घर की रट लगानी शुरू की। आखिर जालपा ने उसे लौटा देना ही अच्छा समझा। यहाँ तो वह छिप-छिपकर रोया करता था।

जालपा कई बार रमा के बँगले तक हो आयी। वह जानती थी कि अभी रमा नहीं आये है फिर भी वहाँ का एक चक्कर लगा आने मे उसको एक विचित्र संतोष होता।

जालपा कुछ पढ़ते-पढ़ते या लेटे-लेटे थक जाती, तों एक क्षण के लिए खिड़की के सामने आ खडी होती थी। एक दिन शाम को वह खिड़की के सामने आयी, तो सड़क पर मोटरो की एक कतार नजर आयी। कुतूहल हुआ, इतनी मोटरे कहाँ जा रही है। गौर से देखने लगी, छः मोटरे थीं। उसमे पुलिस के अफसर बैठे हुए थे। एक मे सब सिपाही

थे। आखिरी मोटर पर जब उसकी निगाह पड़ी तो मानो उसके सारे शरीर मे विजली की लहर दौड़ गयी। वह ऐसी तन्मय हुई, कि खिड़की से जीने तक दौड़ आयी, मानो मोटर को रोक लेना चाहती हो, पर इसी एक पल मे उसे मालूम हो गया कि मेरे नीचे उतरते-उतरते मोटर निकल जायेगी। वह फिर खिड़की के सामने आयी। रमा अब विल्कुल सामने आ गया था। उसकी आँखे खिड़की की ओर लगी हुई थीं। जालपा ने इशारे से कुछ कहना चाहा, पर संकोच ने रोक दिया। ऐसा मालूम हुआ, कि रमा की मोटर कुछ धीमी हो गयी है। देवीदीन की आवाज भी सुनायी दी। मगर मोटर रुकी नहीं। एक ही क्षण मे वह आगे बढ़ गयी, पर रमा अब भी रह-रहकर खिड़की की ओर ताकता जाता था।

जालपा ने जीने पर आकर कहा—दादा!

देवीदीन ने सामने आकर कहा—भैया आ गये! वह क्या मोटर जा रही है।

यह कहता हुआ वह ऊपर आ गया। जालपा ने उत्सुकता को संकोच से दवाते हुए कहा—तुमने कुछ कहा?

देवी०—और क्या कहते, खाली राम-राम की। मैंने कुशल पुछी हाथ से दिलासा देते चले गये। तुमने देखा कि नही?

जालपा ने सिर झुकाकर कहा—देखा क्यों नहीं। खिड़की पर जरा खड़ी थी।

'उन्होंने भी तुम्हे देखा होगा?'

'खिड़की ओर ताकते तो थे।'

'वहुत चकराये होंगे, कि यह कौन है!'

'कुछ मालूम हुआ मुकदमा कब पेश होगा?'

'कल ही तो।'

'कल ही! इतनी जल्द? तब तो जो कुछ करना है, आज ही करना होगा किसी तरह मेरा खत उन्हे मिल जाता, तो काम बन जाता।'

देवीदीन ने इस तरह ताका मानो कह रहा है, तुम इस काम को जितना आसान समझती हो उतना आसान नहीं है।

जालपा ने उसके मन का भाव ताड़कर कहा—क्या तुम्हें संदेह है

कि वह अपना बयान बदलने पर राजी न होंगे ?

देवीदीन को अब इसे स्वीकार करने के सिवा और कोई उपाय न सूझा। बोला—हाँ बहूजी, मुझे इसका बहुत अन्देशा है और सच पूछो तो है भी जोखिम। अगर वह बयान बदल भी दे, तो पुलिस के पजे से नहीं छूट सकते। वह कोई दूसरा इल्जाम लगाकर उन्हे पकड़ लेगी फिर और नया मुकदमा चलायेगी।

जालपा ने ऐसी नजरो से देखा, मानो वह इस बात से जरा भी नहीं डरती। फिर बोली—दादा, मै उन्हे पुलिस के पंजे से बचाने का बीड़ा नहीं लेती। मैं केवल यह चाहती हूँ कि अपयश से उन्हे बचा लूं। उनके हाथों इतने घरों को बरबादी होते नहीं देख सकती। अगर वह सचमुच डकैतियो मे शरीक होते, तब भी मैं यही चाहती कि वह अन्त तक अपने साथियो के साथ रहे, और जो सिर पर पडे उसे खुशी से झेले। मैं यह कभी पसन्द न करती, कि वह दूसरों को दगा देकर मुखबिर बन जाय। लेकिन यह मामला तो बिल्कुल झूठा है। मैं यह किसी तरह नही बर्दास्त कर सकती कि वह अपने स्वार्थ के लिए झूठी गवाही दे। अगर उन्होंने खुद अपना बयान न बदला, तो मैं अदालत मे जाकर सारा कच्चा चिट्ठा खोल दूंगी, चाहे नतीजा कुछ भी हो। वह हमेशा के लिए मुझे त्याग दे, मेरी सूरत न देखे, यह मुझे मंजूर है; पर यह नहीं हो सकता कि इतना बड़ा कलंक माथे पर लगाये। मैंने अपने पत्र मे सब लिख दिया है।

देवीदीन ने उसें आदर की दृष्टि से देखकर कहा—तुम सब कर लोगी बहू, अब मुझे विश्वास हो गया। जब तुमने कलेजा इतना मज-बूत कर लिया है, तो तुम सब कुछ कर सकती हो।

'तो यहाँ से नौ बजे चले ?'

'हाँ, मैं तैयार हूँ !'

(३८)

वह रमानाथ जो पुलिस के भय से बाहर न-निकलता था; जो देवी-दीन के घर मे चोरों की तरह पड़ा जिन्दगी के दिन पूरे कर रहा था, आज दो महीनो से राजसी भोग-विलास मे डूबा हुआ है। रहने को सुन्दर सजा हुआ बँगला है, सेवा-टहल के लिए चौकीदारों का एक दल, सवारी

के लिए मोटर, भोजन पकाने के लिए एक कश्मीरी बबर्ची। बड़े-बड़े अफसर उसका मुँह ताका करते हैं। उसके मुँह से बात निकली नहीं, कि पूरी हुई। इतने ही दिनों मे उसके मिजाज मे इतनी नफासत आ गयी है, मानो वह खानदानी रईस हो। विलास ने उसकी विवेक-बुद्धि को सम्मोहन-सा कर दिया है। उसे कभी इसका खयाल भी नहीं आता, कि मैं क्या कर रहा हूँ और मेरे हाथों कितने बेगुनाहों का खून हो रहा है। उसे एकान्त-विचार का अवसर ही नहीं दिया जाता। रात को सैर होती है। मनोरजन के नित्य नये सामान होते रहते हैं। जिस दिन अभियुक्तों को मैजिस्ट्रेट ने सेशन सुपुर्द किया, सबसे ज्यादा खुशी उसी को हुई। उसे अपना सौभाग्य सूर्य उदय हुआ मालूम होता था।

पुलिस को मालूम था, कि सेशन जज के इजलास मे यह बहार न होगी। संयोग से जज हिन्दुस्तानी थे और निष्पक्षता के लिए बदनाम। पुलिस हो या चोर, उनकी निगाह में दोनों बराबर थे। वह किसी के साथ रू-रिआयत न करते। इसलिए पुलिस ने रमा को एक बार उन-स्थानों की सैर कराना जरूरी समझा जहाँ वारदात हुई थी। एक जमीदार की सजी-सजाई कोठी मे डेरा पड़ा। दिन भर लोग शिकार खेलते, रात को ग्रामोफोन सुनते, ताश खेलते और बजरों पर नदियो की सैर करते। ऐसा जान पड़ता था, कि कोई राजकुमार शिकार खेलने निकला है।

इस भोग विलास मे रमा को अगर कोई अभिलाषा थी, तो यह कि जालपा भी यहाँ होती। अब तक वह पराश्रित था, दरिद्र था, उसकी विलासेन्द्रियाँ मानो मूर्छित हो रही थीं। इन शीत झोकों ने उन्हे फिर सचेत कर दिया। वह कल्पना में मग्न था, कि यह मुकदमा खत्म होते ही उसे अच्छी जगह मिल जायेगी। तब वह जाकर जालपा को मना लायेगा और आनन्द से जीवन-सुख भोगेगा। हाँ, वह नये प्रकार का जीवन होगा, उसकी मर्यादा कुछ और होगी, सिद्धात कुछ और होंगे, उसमें कठोर सयम होगा और पक्का नियंत्रण, अब उसके जीवन का कुछ उद्देश्य होगा, कुछ आदर्श होगा। केवल खाना, सोना, और रुपये के लिए हाय-हाय करना ही जीवन का व्यवहार न होगा। इसी मुकदमे के साथ इस मार्ग-हीन जीवन का अन्त हो जायेगा। दुर्बल इच्छा ने उसे यह दिन दिखाया था और अब

एक नये और सुसंस्कृत जीवन का स्वप्न दिखा रही थी। शराबियों की तरह ऐसे मनुष्य भी रोज ही संकल्प करते हैं; लेकिन उन संकल्पों का अन्त क्या होता है ? नये-नये प्रलोभन सामने आते रहते हैं, सकल्प की अवधि भी बढ़ती चली जाती है। नये प्रभात का उदय कभी नही होता।

एक महीने देहात की सैर करने के बाद रमा पुलिस के सहयोगियों के साथ अपने बँगले पर जा रहा था। रास्ता देवीदीन के घर के सामने से था। कुछ दूर ही से उसे कमरा दिखायी दिया। अनायास ही उसकी निगाह ऊपर उठ गयी। खिड़की के सामने कोई खड़ा था। इस वक्त देवीदीन वहाँ क्या कर रहा है ? उसने जरा ध्यान से देखा। यह तो कोई और है ! मगर औरत कहाँ से आयी ? क्या देवीदीन ने वह कमरा किराये पर तो नहीं उठा दिया ? ऐसा तो उसने कभी नहीं किया।

मोटर जरा और समीप आयी, तो उस औरत का चेहरा साफ नजर आने लगा। रमा चौक पड़ा। यह जालपा है! वेशक जालपा है ! मगर, नहीं-नहीं जालपा यहाँ कैसे आयेगी ? मेरा पता-ठिकाना उसे कहाँ मालूम ! बुड्ढे ने उसे खत तो नहीं लिख दिया ? जालपा ही है ? नायब दरोगा मोटर चला रहा था। रमा ने बड़ी मिन्नत के साथ कहा—सरदार साहब, एक मिनट के लिए रुक जाइए। मैं जरा देवीदीन से एक बात कर लूँ। नायब ने मोटर जरा धीमी कर दी; लेकिन फिर कुछ सोचकर उसे आगे बढ़ा दिया।

रमा ने तेज होकर कहा—आप तो मुझे कैदी बनाये हुए हैं।

नायब ने खिसियाकर कहा—आप तो जानते हैं, डिप्टी साहब कितने जल्द जामे से बाहर हो जाते हैं।

बँगले पर पहुँचकर रमा सोचने लगा, जालपा से कैसे मिलू। वहाँ जालपा ही थी, इसमे अब उसे कोई शुबहा न था ! आँखों को कैसे धोखा देता। हृदय मे एक ज्वाला-सी उठी हुई थी, क्या करूँ ? कैसे जाऊँ। उसे कपडे उतारने की सुधि भी न रही। पन्द्रह मिनट तक वह कमरे के द्वार पर खड़ा रहा। कोई हिकमत न सूझी। लाचार पलग पर लेट रहा।

जरा ही देर में वह फिर उठा और सामने सहन मे निकल आया। सड़क पर उसी वक्त बिजली की रोशनी हो गयी। फाटक पर चौकीदार

खड़ा था। रमा को उस पर इस समय इतना क्रोध आया कि गोली मार दे। अगर मुझे कोई अच्छी जगह मिल गयी, तो एक-एक से समझूँगा। तुम्हें तो डिसमिस कराके छोड़ूँगा। कैसे शैतान की तरह सिर पर सवार है। मुँह तो देखो जरा! मालूम होता है, बकरी की दुम है। वाह रे, आपकी पगड़ी! गोया बोझ ढोनेवाला कुली है! अभी कुत्ता भूँक पड़े, तो आप दुम दबा कर भागेंगे; मगर यहाँ ऐसे डटे खड़े हैं, मानो किसी किले के द्वार की रक्षा कर रहे हैं!

एक चौकीदार ने आकर कहा—इन्सपेक्टर साहब ने बुलाया है। कुछ नये तवे मगवाये हैं।

रमा ने झल्लाकर कहा—मुझे इस वक्त फुरसत नहीं है।

फिर सोचने लगा—जालपा यहाँ कैसे आयी? अकेले ही आयी है, या कोई साथ है? जालिम ने बुड्ढे से एक मिनट भी बात न करने दिया। जालपा पूछेगी तो जरूर, कि क्यों भागे थे? साफ-साफ कह दूँगा, उस समय और कर ही क्या सकता था, पर इन थोड़े दिन के कष्ट ने जीवन का प्रश्न तो हल कर दिया। अब आनन्द से जिन्दगी कटेगी। कोशिश करके उसी तरफ अपना तबादला करवा लूँगा. यह सोचने-सोचते रमा को खयाल आया, कि जालपा भी यहाँ मेरे साथ रहे, तो क्या हरज है। बाहरवालों से मिलने की रोक-टोक है। जालपा के लिए क्या रुकावट हो सकती है? लेकिन इस वक्त इस प्रश्न का छेड़ना उचित नहीं। कल इसे तय करूँगा। देवीदीन भी विचित्र जीव है। पहले तो कई बार आया; पर आज उसने भी सन्नाटा खींच लिया। कम-से-कम इतना तो हो ही सकता था, कि आकर पहरेवाले कांसटेबल से जालपा के आने की खबर मुझे देता। फिर मैं देखता कि कौन जालपा को नहीं आने देता। पहले इस तरह की कैद जरूर थी; पर अब तो मेरी परीक्षा पूरी हो चुकी। शायद सब लोग खुशी से राजी हो जायँगे।

रसोइया थाली लाया। मास एक तरह का था। रमा थाली देखते ही झल्ला गया। इन दिनों रुचिकर भोजन देखकर ही उसे भूख लगती थी। जब तक चार-पाँच प्रकार का मास न हो, चटनी-अचार न हो, उसकी तृप्ति न होती थी।

बिगड़कर बोला—क्या खाऊँ तुम्हारा सिर ? थाली उठा ले जाओ!

रसोइये ने डरते-डरते कहा—हुजूर, इतनी जल्द और चीज़े कैसे बनाता। अभी कुल दो घंटे आये हुए है।

'दो घटे तुम्हारे लिए थोड़े होते है ?'

'अब हुजूर से क्या कहूँ।'

'मत बको! डैम!'

'हुजूर ....'

'मत बको ! डैम !'

रसोइये ने फिर कुछ न कहा। बोतल लाया, बर्फ तोडकर ग्लास मे डाली और पीछे हटकर खड़ा हो गया।

रमा को इतना क्रोध आ रहा था, कि रसोइये को नोच खाये। उसका मिजाज इन दिनों बहुत तेज हो गया था।

शराब का दौर शुरू हुआ, तो रमा का गुस्सा और भी तेज हुआ। लाल-लाल आँखों से उसे देखकर बोला—चाहूँ तो अभी तुम्हारा कान पकड़कर निकाल दूँ। अभी, इसी दम। तुमने समझा क्या है!

उसका क्रोध बढ़ता देखकर रसोइया चुपके-से सरक गया। रमा ने ग्लास लिया और दो-चार लुकमे खाकर बाहर सहन मे टहलने लगा। यही धुन सवार थी, कैसे यहाँ से निकल जाऊँ!

एकाएक उसे ऐसा जान पड़ा, कि तार के बाहर वृक्षों की आड़ मे कोई है। हाँ, कोई खडा उसकी तरफ ताक रहा है। शायद इशारे से अपनी तरफ बुला रहा है। रमानाथ का दिल धड़कने लगा। कहीं षड्यंत्रकारियो ने उसके प्राण लेने की तो नहीं ठानी है। यह शका उसे सदैव बनी रहती थी। इस ख्याल से वह रात को बँगले के बाहर बहुत कम निकलता था। आत्म-रक्षा के भाव ने उसे अन्दर चले जाने की प्रेरणा की। उसी वक्त एक मोटर सड़क पर से निकली! उसके प्रकाश मे रमा ने देखा, वह अँधेरी छाया स्त्री है। उसकी साड़ी साफ नजर आ रही थी। फिर उसे मालूम हुआ कि वह स्त्री उसकी ओर आ रही है। उसे फिर शंका हुई, कोई मर्द वह वेष बदलकर मेरे साथ छल तो नहीं कर रहा है ? वह ज्यों-त्यो पीछे हटता गया, वह छाया उसकी ओर

बढ़ती गयी, यहाँ तक कि तार के पास आकर उसने कोई चीज रमा की तरफ फेंकी। रमा चीख मारकर पीछे हट गया, मगर वह केवल एक लिफाफा था। उसे तस्कीन हुई। उसने फिर जो सामने देखा तो वह छाया अंधकार में विलीन हो गयी थी। रमा ने लपककर वह लिफ़ाफा उठा लिया। भय भी था और कुतूहल भी। भय कम था, कुतूहल अधिक। लिफाफे को जेब में छिपाये वह कमरे में आया. दोनों ओर के द्वार बन्द कर लिये और लिफाफे को हाथ में लेकर देखने लगा। सिरनामा देखते ही उसके हृदय में फुरेरियाँ-सी उड़ने लगीं। लिखावट जालपा की थी। उसने फौरन लिफाफा खोला। जालपा की ही लिखावट थी। उसने एक ही साँस में पत्र पढ़ डाला और तब एक लम्बी साँस ली। उसी साँस के साथ चिन्ता का वह भीषण भार जिसने आज छः महीने से उसकी आत्मा को दबा कर रखा था, वह सारी मनोव्यथा जो उसका जीवन-रक्त चूस रही थी, वह सारी दुर्बलता, लज्जा, ग्लानि मानो उड़ गयी, छूमन्तर हो गयी। इतनी स्फूर्ति, इतना गर्व इतना आत्म-विश्वास उसे कभी न हुआ था। पहली सनक यह सवार हुई, अभी चलकर दारोगा से कह दूँ, मुझे इस मुकदमे से कोई सरोकार नहीं है, लेकिन फिर ख्याल आया बयान तो अब हो ही चुका, जितना अपयश मिलना था, मिल ही चुका था, अब उसके फल से क्यों हाथ धोऊँ; मगर इन सबों ने मुझे कैसा चकमा दिया है! और अभी तक मुगालते में डाले हुए हैं। सब-के-सब मेरी दोस्ती का दम भरते हैं, मगर अभी तक असली बात मुझसे छिपाये हुए हैं। अभी इन्हें मुझ पर विश्वास नहीं। अभी इसी बात पर अपना बयान बदल दूँ, तो आटे-दाल का भाव मालूम हो। यही न होगा, मुझे कोई जगह न मिलेगी, बला से; इन लोगों के मनसूबे तो खाक में मिल जायँगे। इस दगाबाजी की सजा तो मिल जायगी। और यह कुछ न सही, इतनी बड़ी बदनामी से तो बच जाऊँगा। यह सब शरारत जरूर करेंगे; लेकिन झूठा इलजाम लगाने के सिवा और कर ही क्या सकते हैं। जब मेरा यहाँ रहना साबित ही नहीं, तो मुझ पर दोष क्या लग सकता है। सबों के मुँह में कालिख लग जायगी। मुँह तो दिखाया न जायगा, मुकदमा क्या चला देंगे।

मगर नहीं। इन्होंने मुझसे चाल चली है, तो मैं भी इनसे वही चाल चलूँगा। कह दूँगा, अगर मुझे आज कोई अच्छी जगह मिल जायेगी, तो मैं शहादत दूँगा, वरना साफ कह दूँगा, इस मामले से मेरा कोई सबंध नहीं। नहीं तो पीछे से किसी छोटे-मोटे थाने मे नायब दारोगा बनाकर भेज दें और वहाँ सड़ा करूँ। लूँगा इंसपेक्टरी और कल दस बजे मेरे पास नियुक्ति का परवाना आ जाना चाहिए। वह चला कि इसी वक्त दारोगा से कह दूँ, लेकिन फिर रुक गया। एक बार जालपा से मिलने के लिए उसके प्राण तड़प रहे थे। उसके प्रति इतना अनुराग, इतनी श्रद्धा उसे कभी न हुई थी, मानो वह कोई दैवी शक्ति हो जिसे देवताओ ने उसकी रक्षा के लिए भेजा हो।

दस बज गये थे। रमानाथ ने बिजली गुल कर दी और बरामदे मे आकर जोर से किवाड़ बन्द कर दिये, जिसमे पहरे वाले सिपाही को मालूम हो अन्दर से किवाड़ बन्द करके सो रहे हैं। वह अँधेरे बरामदे मे एक मिनट खड़ा रहा। तब आहिस्ता से उतरा और काँटेदार फेंसिंग के पास आकर सोचने लगा, उस पार कैसे जाऊँ शायद अभी जालपा बगीचे मे हो। देवीदीन जरूर उसके साथ होगा। केवल यही तार उसकी राह रोके हुए था। उसे फाँद जाना असंभव था। उसने तारों के बीच से होकर निकल जाने का निश्चय किया। अपने सब कपड़े समेट लिए और काँटे को बचाते। हुए सिर और कन्धे को तार के बीच मे डाला; पर न जाने कैसे कपड़े फँस गये। उसने हाथ से कपड़ों को छुड़ाना चाहा तो आस्तीन काँटों मे फँस गयी। धोती तो उलझी हुई थी। बेचारा बड़े संकट मे पड़ा। न इस पार जा सकता था, न उस पार। जरा भी असावधानी हुई और काँटे उसकी देह मे चुभ जायेंगे।

मगर इस वक्त उसे कपड़ों की परवा न थी। उसने गर्दन और आगे बढ़ाई और कपड़ों मे लम्बा चीरा लगता हुआ उस पार निकल गया। सारे कपडे तार-तार हो गये, पीठ मे कुछ खरोंचें लगीं; इस समय कोई बन्दूक का निशाना बाँधकर भी उसके सामने खड़ा हो जाता तो भी वह पीछे न हटता। फटे हुए कुरते को उसने वहीं फेंक दिया। गले की चादर फट जाने पर भी काम दे सकती थी, उसे उसने ओढ़ लिया, धोती

समेट ली और बगीचे में घूमने लगा। सन्नाटा था। शायद रखवाला खटिक खाना खाने गया हुआ था। उसने दो-तीन बार धीरे-धीरे जालपा का नाम लेकर पुकारा भी। किसी की आहट न मिली; पर एक निराशा होने पर भी मोह ने उसका गला न छोड़ा। उसने एक पेड़ के नीचे जाकर देखा। समझ गया, जालपा चली गयी। वह उन्हीं पैरों देवीदीन के घर की ओर चला; उसे जरा भी शोक न था। बला से किसी को मालूम हो जाय कि मैं बँगले से निकल आया हूँ। पुलिस मेरा कर ही क्या सकती है। मैं कैदी नहीं हूँ, गुलामी नही लिखायी है।

आधी रात हो गयी थी। देवीदीन भी आध घंटे पहले लौटा था और खाना खाने जा रहा था, कि एक नंगे धडगे आदमी को देखकर चौंक पड़ा। रमा ने सिर पर चादर बाँध ली थी और देवीदीन को डराना चाहता था।

देवीदीन ने सशंक होकर कहा—कौन है ?

मगर फिर सहसा पहचान गया और झपटकर उसका हाथ पकड़ता हुआ बोला—तुमने तो भैया, खूब भेस बनाया है। कपड़े क्या हुए ?

रमा०—तार से निकल रहा था, सब उसके काँटे मे उलझकर फट गये।

देवी०—राम-राम ! देह मे तो काँटे नहीं चुभे ?

रमा०—कुछ नहीं, दो-एक खरोंचे लग गयीं। मैं बहुत बचाकर निकला।

देवी०—बहू की चिट्ठी मिल गयी न ?

रमा०—हाँ, उसी वक्त मिल गयी। क्या तुम्हारे साथ थी ?

देवी०—वह मेरे साथ नहीं थी, मैं उनके साथ था। जब से तुम्हे मोटर पर आते देखा, तभी से जाने-जाने लगाये हुए थीं।

रमा०—तुमने कोई खत लिखा था ?

देवी०—हमने कोई खत-पत्तर नहीं लिखा भैया। जब वह आयीं तो मुझे आप ही अचम्भा हुआ, कि बिना जाने-बूझे कैसे आ गयीं। पीछे से उन्होंने बताया। यह सतरंजवाला नकशा उन्होंने पराग से भेजा था और इनाम भी वहीं से आया था।

रमा की आँखे फैल गयीं। जालपा की चतुराई ने उसे विस्मय मे

डाल दिया। इसके साथ ही पराजय के भाव ने उसे कुछ खिन्न कर दिया, वहाँ भी इस बुरी तरह उसकी हार हुई।

बुढ़िया उपर गयी हुई थी। देवीदीन ने जीने के पास जाकर कहा—अरे क्या करती है? बहू से कह दे, एक आदमी उनसे मिलने आया है।

यह कहकर देवीदीन ने फिर रमा का हाथ पकड़ लिया और बोला—चलो, अब सरकार मे तुम्हारी पेसी होगी। बहुत भागे थे। बिना वारंट के पकड़ गये। इतनी आसानी से पुलिस भी न पकड सकती।

रमा का मनोल्लास द्रवित हो गया था। लज्जा से गड़ा जाता था। जालपा के प्रश्नो का उसके पास क्या जवाब था। जिससे वह भागा था, उसने अन्त मे उसका पीछा करके परास्त ही कर दिया। वह जालपा के सामने सीधी आँखे भी तो न कर सकता था। उसने हाथ छुडा लिया और जीने के पास ठिठक गया। देवीदीन ने पूछा—क्यों रुक गये?

रमा ने सिर खुजलाते हुए कहा—चलो मैं आता हूँ।

बुढ़िया ने ऊपर ही से कहा—पूछो कौन आदमी है, कहाँ से आया है?

देवीदीन ने विनोद किया—कहता है, मैं जो कुछ कहूँगा बहू से ही कहूँगा।

'कोई चिट्ठी लाया है?'

'नहीं!'

सन्नाटा हो गया। देवीदीन ने एक क्षण के बाद पूछा—कह दूं लौट जाय?

जालपा जीने पर आकर बोली—कौन आदमी है, पूछती तो हूँ।

कहता है, बड़ी दूर से आया हूँ।

'है कहाँ?'

'यह क्या खडा है?'

'अच्छा, बुला लो।'

रमा चादर ओढे कुछ झिझकता-झेपता, कुछ डरता, जीने पर चढ़ा। जालपा ने उसे देखते ही पहचान लिया। तुरन्त दो कदम पीछे हट गयी।

देवीदीन वहाँ न होता तो वह दो कदम और आगे बढ़ी होती।

उसकी आँखों मे कभी इतना नशा न था, अंगों मे कभी इतनी

चपलता न थी, कपोल कभी इतने न दमके थे, हृदय मे कभी इतना मृदु-कम्पन न हुआ था। आज उसकी तपस्या सफल हुई।

(३६)

वियोगियों के मिलन की रात बटोहियों के पड़ाव की रात है, जो बातों मे कट जाती है। रमा और जालपा दोनों ही को अपनी छः महीने की कथा कहनी थी। रमा ने अपना गौरव बढ़ाने के लिए अपने कष्टों को खूब बढ़ा-चढ़ाकर बयान किया। जालपा ने अपनी कथा मे कष्टों की चर्चा तक न आने दी। वह डरती थी इन्हें दुःख होगा; लेकिन रमा को रुलाने मे विशेष आनन्द आ रहा था। वह क्यों भागा, किस लिए भागा, कैसे भागा —यह सारी गाथा उसने करुण शब्दों मे कही और जालपा ने सिसक-सिसक कर सुनी। वह अपनी बातों से प्रभावित करना चाहता था। अब तक सभी बातों में उसे परास्त होना पड़ा था। जो बात उसे असह्य मालूम हुई, उसे जालपा ने चुटकियों मे पूरा कर दिखाया। शतरंजवाली बात को वह खूब नमक-मिर्च लगाकर बयान कर सकता था; लेकिन वहाँ भी जालपा ही ने नीचा दिखाया। फिर उसकी कीर्ति-लालसा को इसके सिवा और क्या उपाय था कि अपने कष्टों को राई का पर्वत बनाकर दिखाये?

जालपा ने सिसककर कहा—तुमने यह सारी आफतें झेलीं, पर हमे एक पत्र तक न लिखा। क्यों लिखते, हमसे नाता ही क्या था! मुँह देखे की प्रीति थी? आँख ओट पहाड़ ओट।

रमा ने हसरत से कहा—यह बात नहीं थी जालपा, दिल पर जो कुछ गुजरती थी, दिल ही जानता है, लेकिन लिखने का मुँह भी तो हो। जब मुँह छिपाकर घर से भागा, तो अपनी विपत्ति-कथा क्या लिखने बैठता। मैंने तो सोच लिया था, जब तक खूब रुपये न कमा लूंगा, एक शब्द भी न लिखूंगा।

जालपा ने आँसू-भरी आँखों मे व्यंग भरकर कहा—ठीक ही था, रुपये आदमी से ज्यादा प्यारे होते हैं! हम तो रुपये के यार हैं; तुम चाहे चोरी करो, डाका मारो, जाली नोट बनाओ, झूठी गवाही दो या भीख माँगो, किसी उपाय से रुपये लाओ। तुमने हमारे स्वभाव को कितना ठीक समझा है, कि वाह! गोसाईं जी भी तो कह गये हैं—स्वारथ लाइ

करहिं सब प्रीती ।

रमा ने झेंपते हुए कहा—नहीं प्रिये, यह बात न थी । मैं यही सोचता था कि इन फटे हालों जाऊँगा कैसे । सच कहता हूँ मुझे सबसे ज्यादा डर तुम्हीं से लगता था । सोचता था, तुम मुझे कितना कपटी, झूठा, कायर समझ रही होगी । शायद मेरे मन मे यह भाव था, कि रुपये की थैली देखकर तुम्हारा हृदय कुछ तो नर्म होगा ।

जालपा ने व्यथित कण्ठ से कहा—मैं शायद उस थैली को हाथ से छूती भी नहीं । आज मालूम हो गया, तुम मुझे कितनी नीच, कितनी स्वार्थिनी, कितनी लोभी समझते हो । इसमे तुम्हारा कोई दोष नही, सरासर मेरा दोष है । अगर मै भली होती, तो आज यह दिन ही क्यो आता ? जो पुरुष तीस-चालीस रुपये महीने का नौकर हो, उसकी स्त्री अगर दो-चार रुपये रोज खर्च करे, हजार-दो-हजार के गहने पहनने की नीयत रखे, तो वह अपनी और उसकी तबाही का सामान कर रही है । अगर तुमने मुझे इतना धन-लोलुप समझा, तो कोई अन्याय नहीं किया; मगर एक बार जिस आग मे जल चुकी, उसमे फिर न कूदूँगी । इन महीनों मे मैंने उन पापों का कुछ प्रायश्चित किया है, और शेष जीवन के अन्त समय तक करूँगी । यह मैं नहीं कहती कि भोग-विलास से मेरा जी भर गया, या गहने-कपडे से मैं ऊब गयी या सैर-तमाशे से मुझे घृणा हो गयी । यह सब अभिलाषाएँ ज्यो-की-त्यों हैं । पुरुषार्थ से, अपने परिश्रम से, अपने सदुद्योग से उन्हे पूरा कर सकी, तो क्या कहना ; लेकिन नीयत खोटी करके, आत्मा को कलुषित करके एक लाख भी लाओ, तो मैं ठुकरा दूँगी । जिस वक्त मुझे मालूम हुआ कि तुम पुलिस के गवाह बन गये हो, मुझे इतना दुःख हुआ कि मैं उसी वक्त दादा को साथ लेकर तुम्हारे बँगले तक गयी ; मगर उसी दिन तुम बाहर चले गये थे और आज लौटे हो । मैं इतने आदमियों का खून अपनी गर्दन पर नहीं लेना चाहती । तुम अदालत मे साफ-साफ कह दो, कि मैंने पुलिस के चकमे मे आकर गवाही दी थी, मेरा मुआमले से कोई सबंध नहीं है ।

रमा ने चिन्तित होकर कहा—जब से तुम्हारा खत मिला तभी से मैं इस प्रश्न पर विचार कर रहा हूँ ; लेकिन समझ में नहीं आता क्या

करूँ। एक बात कहकर मुकर जाने का साहस मुझमे नहीं है।

'बयान तो बदलना ही पड़ेगा।'

'आखिर कैसे?'

'मुश्किल क्या है? जब तुम्हे मालूम हो गया कि म्युनिसिपैलिटी तुम्हारे ऊपर कोई मुकदमा नही चला सकती, तो फिर किस बात का डर?'

'डर न हो, झेप भी तो कोई चीज है। जिस मुँह से एक बात कही, उसी मुँह से मुकर जाऊँ, यह तो मुझसे न होगा। फिर मुझे अच्छी जगह मिल जायगी। आराम से जिन्दगी बसर होगी। मुझमे गली-गली ठोकर खाने का बूता नहीं है।'

जालपा ने कोई जवाब न दिया। वह सोच रही थी, आदमी में स्वार्थ की मात्रा कितनी अधिक होती है।

रमा ने फिर धृष्टता से कहा—और कुछ मेरी ही गवाही पर तो सारा फैसला नहीं हुआ जाता? मैं बदल भी जाऊँ, तो पुलिस कोई दूसरा आदमी खड़ा कर देगी। अपराधियो की जान तो किसी तरह नहीं बच सकती। हाँ मैं, मुफ्त मे मारा जाऊँगा।

जालपा ने त्योरी चढ़ाकर कहा—कैसी बेशर्मी करते हो जी? क्या तुम इतने गये बीते हो कि अपनी रोटियों के लिए दूसरों का गला काटो? मैं इसे नही सह सकती। मुझे मजदूरी करना, भूखों मर जाना मंजूर है। बड़ी-से-बडी विपत्ति जो संसार मे है, वह सिर पर ले सकती हूँ; लेकिन किसी का अनभल करके स्वर्ग का राज भी नहीं ले सकती।

रमा इस आदर्शवाद से चिढ़कर बोला—तो क्या तुम चाहती हो कि मैं यहाँ कुलीगीरी करूँ?

जालपा—नही, मैं यह नहीं चाहती; लेकिन कुलीगीरी भी करनी पडे, तो वह खून से तर रोटियाँ खाने से कहीं बढ़कर है।

रमा ने शान्त भाव से कहा—जालपा, तुम मुझे जितना नीच समझ रही हो, मैं उतना नीच नहीं हूँ। बुरी बात सभी को बुरी लगती है! इसका दुःख मुझे भी है कि मेरे हाथों इतने आदमियों का खून हो रहा है; लेकिन परिस्थिति ने मुझे भी लाचार कर दिया है। मुझमे अब ठोकरें खाने की शक्ति नहीं है। न मैं पुलिस से रार मोल ले सकता हूँ।

दुनिया मे सभी थोडे ही आदर्श पर चलते हैं। मुझे क्यों ऊँचाई पर चढ़ाना चाहती हो, जहाँ पहुँचने की शक्ति मुझमे नहीं है ?

जालपा ने तीक्ष्ण स्वर मे कहा—जिस आदमी मे हत्या करने की शक्ति हो, उसमे हत्या न करने की शक्ति का न होना अचम्भे की बात है। जिसमे दौड़ने की शक्ति हो, उसमे खडे रहने की शक्ति न हो, इसे कौन मानेगा ? जब हम कोई काम करने की इच्छा करते है, तो शक्ति आप-ही-आप आ जाती है ! तुम यह निश्चय कर लो कि तुम्हे बयान बद-लना है, बस और सारी बाते आप-ही-आप आ जायगी।

रमा सिर झुकाये हुए सुनता रहा।

जालपा ने और आवेश मे आकर कहा—अगर तुम्हे यह पाप की खेती करनी है, तो मुझे आज ही यहाँ से बिदा कर दो। मैं मुँह मे कालिख लगाकर यहाँ से चली जाऊँगी और फिर तुम्हे दिक करने न आऊँगी। तुम आनन्द से रहना। मैं अपना पेट मेहनत-मजूरी करके भर लूँगी। अभी प्रायश्चित पूरा नही हुआ है, इसलिए यह दुर्बलता हमारे पीछे पड़ी हुई है ? मैं देख रही हूँ, यह हमारा सर्वनाश करके छोडेगी।

रमा के दिल पर कुछ चोट लगी। सिर खुजलाकर बोला—चाहता तो मैं भी हूँ कि किसी तरह मुसीबत से जान बचे।

'तो बचाते क्यों नहीं ? अगर तुम्हे कहते शर्म आती हो, तो मैं चलूं। यही अच्छा होगा। मैं भी चली चलूगी और तुम्हारे सुपरिटेडेट साहब से सारा वृत्तान्त साफ-साफ कह दूँगी।'

रमा का सारा पशोपेश गायब हो गया। अपनी इतनी दुर्गति वह न कराना चाहता था कि उसकी स्त्री जाकर उसकी वकालत करे। बोला—तुम्हारे चलने की जरूरत नहीं है जालपा, मैं उन लोगों को समझा दूँगा।

जालपा ने जोर देकर कहा—साफ बताओ, अपना बयान बदलोगे, या नहीं ?

रमा ने मानो कोने मे दबकर कहा—कहता तो हूँ, बदल दूँगा !

'मेरे कहने से या अपने दिल से ?'

'तुम्हारे कहने से नहीं अपने दिल से ! मुझे खुद ही ऐसी बातों से

घृणा है। सिर्फ जरा हिचक थी। वह तुमने निकाल दी।'

फिर और बाते होने लगीं। कैसे पता चला कि रमा ने रुपये उड़ा दिये है? रुपये अदा कैसे हो गये? और लोगो को ग़बन की खबर हुई या घर ही मे दबकर रह गयी? रतन पर क्या गुजरी? गोपी क्यों इतनी जल्दी चला गया? दोनों कुछ पढ रहे हैं या उसी तरह आवारा फिरा करते है? आखिर मे अम्मा और दादा का जिक्र आया। फिर जीवन के मन्सूबे बाँधे जाने लगे। जालपा ने कहा—घर चलकर रतन से थोड़ी-सी जमीन ले ले और आनन्द से खेती-बारी करे। रमा ने कहा—उससे कहीं अच्छा है, कि यहाँ चाय की दूकान खोले। इस पर दोनों मे मुबा-हसा हुआ। आखिर रमा को हार माननी पडी! यहाँ रहकर वह घर की देखभाल न कर सकता था, भाइयों को शिक्षा न दे सकता था, और न माता-पिता की सेवा-सत्कार कर सकता था। आखिर घरवालों के प्रति भी तो उसका कुछ कर्तव्य था। रमा निरुत्तर हो गया।

(४०)

रमा मुँह अँधेरे अपने बँगले पर पहुँचा। किसी को कानोंकान खबर न हुई।

नाश्ता करके रमा ने खत साफ किया, कपडे पहने और दरोगा के पास जा पहुँचा। त्योरियाँ चढ़ी हुई थीं। दारोगा ने पूछा—खैरियत तो है, नौकरों ने कोई शरारत तो नहीं की?

रमा ने खड़े-खड़े कहा—नौकरों ने नहीं, आपने शरारत की है; आपके मातहतों, अफसरों और सब ने मिलकर मुझे उल्लू बनाया है।

दारोगा ने कुछ घबराकर कहा—आखिर बात क्या है, कहिए तो?

रमा०—बात यही है, कि मैं इस मुआमले मे अब कोई शहादत न दूँगा। उससे मेरा ताल्लुक नही। आप लोगों ने मेरे साथ चाल चली और वारट की धमकी देकर मुझे शहादत देने पर मजबूर किया। अब मुझे मालूम हो गया, कि मेरे ऊपर कोई इल्जाम नहीं। आप लोगों का चकमा था। मैं अब पुलिस की तरफ से शहादत नहीं देना चाहता, मैं आज जज साहब से साफ कह दूँगा। बेगुनाहों का खून अपनी गर्दन पर न लूंगा।

दारोगा ने तेज होकर कहा—आपने खुद ग़बन तस्लीम किया था।

रमा०—मीजान की गलती थी, ग़बन न था। म्युनिसिपैलिटी ने मुझ पर कोई मुकदमा नही चलाया।

'यह आपको मालूम कैसे हुआ?'

'इससे आपको कोई बहस नहीं। मैं शहादत न दूँगा। साफ-साफ कह दूंगा, पुलिस ने मुझे धोखा देकर शहादत दिलवायी है। जिन तारीखों का वह वाकया है, उन तारीखो मे मैं इलाहाबाद मे था। म्युनिसिपल आफिस की हाजिरी मौजूद है।'

दारोगा ने इस आपत्ति को हँसी मे उड़ाने की चेष्टा करके कहा—अच्छा साहब, पुलिस ने धोखा ही दिया; लेकिन उसका खातिरख्वाह इनाम देने को भी तो हाजिर है, कोई अच्छी जगह मिल जायगी, मोटर पर बैठे हुए सैर करोगे। खुफिया पुलिस मे कोई जगह मिल गयी, तो चैन-ही-चैन है। सरकार की नजरों मे इज्जत और रसूल कितना बढ़ गया। यों मारे-मारे फिरते। शायद किसी दफ्तर मे क्लर्की मिल जाती, वह भी बड़ी मुश्किल से। यहाँ तो बैठे-बिठाये तरक्की का दरवाजा खुल गया। अच्छी कारगुजारी होगी, तो एक दिन राय बहादुर मुंशी रमानाथ डिप्टी सुपरिंटेडंट हो जाओगे। तुम्हे हमारा एहसान मानना चाहिए! और आप उल्टे खफा होते है।

रमा पर इस प्रलोभन का कुछ भी असर न हुआ, बोला—मुझे क्लर्क बनना मजूर है, इस तरह की तरक्की नहीं चाहता। यह आप ही को मुबारक रहे।

इतने मे डिप्टी साहब और इंस्पेक्टर भी आ पहुँचे। रमा को देखकर इंस्पेक्टर साहब ने फरमाया—हमारे बाबू साहब तो पहले से तैयार बैठे है। बस, इसी कारगुजारी पर वारा-न्यारा है।

रमा ने इस भाव से कहा, मानो मैं भी अपना नफा-नुकसान समझता हूँ—जी हाँ, आज वारा-न्यारा कर दूँगा। इतने दिनों तक आप लोगों के इशारे पर चला। अब अपनी आँखों से देखकर चलूँगा।

इंस्पेक्टर ने दारोगा का मुँह देखा, दारोगा ने डिप्टी का मुँह देखा, डिप्टी ने इंस्पेक्टर का मुँह देखा। यह कहता क्या है? इन्स्पेक्टर साहब

विस्मित होकर बोले—क्या बात है ? हलफ से कहता हूँ, आप कुछ नाराज मालूम होते हैं।

रमा०—मैंने फैसला किया है; कि आज अपना बयान बदल दूँगा। बेगुनाहों का खून नही कर सकता।

इन्स्पेक्टर ने दया-भाव से उसकी तरफ देखकर कहा—आप बेगुनाहों का खून नहीं कर रहे है, अपनी तकदीर की इमारत खड़ी कर रहे है। हलफ से कहता हूँ, ऐसे मौके बहुत कम आदमियों को मिलते हैं; आज क्या बात हुई कि आप इतने खफा हो गये ? आपको कुछ मालूम है दारोगा साहब ? आदमियों ने तो कोई शोखी नही की ? अगर किसी ने आपके मिजाज के खिलाफ कोई काम किया हो तो, तो उसे गोली मार दीजिए, हलफ से कहता हूँ।

दारोगा—मैं अभी जाकर पता लगाता हूँ।

रमा०—आप तकलीफ न करे। मुझे किसी से शिकायत नहीं है। मैं थोडे से फायदे के लिए अपने ईमान का खून नहीं कर सकता।

एक मिनट सन्नाटा रहा। किसी को कोई बात न सूझी। दारोगा कोई दूसरा चकमा सोच रहे थे, इन्स्पेक्टर कोई दूसरा प्रलोभन। डिप्टी एक दूसरी ही फिक्र मे था। रूखेपन से बोला—रमा बाबू यह अच्छी बात न होगी।

रमा ने भी गर्म होकर कहा—आपके लिए न होगी, मेरे लिए तो सबसे अच्छी यही बात है।

डिप्टी—नहीं ! आपका वास्ते इससे बुरा दूसरा बात नहीं है। हम तुमको छोडेगा नहीं। हमारा मुकदमा चाहे बिगड़ जाय; लेकिन हम तुमको ऐसा 'लेसन' दे देगा कि उमिर भर न भूलेगा। आपको वही गवाही देना होगा जो आप दिया। अगर तुम कुछ गड़बड़ करेगा, कुछ भी गोलमाल किया, तो तोमारे साथ दोसरा बर्ताव करेगा। एक रिपोर्ट मे तुम यों (कलाइयों को ऊपर नीचे रखकर) चला जायगा।

यह कहते हुए उसने आँखे निकालकर रमा को देखा, मानो कच्चा ही खा जायगा। रमा सहम उठा। इन आतंक से भरे शब्दों ने उसे विच-लित कर दिया। यह सब कोई झूठा मुकदमा चलाकर उसे फंसा दे, तो

उसकी कौन रक्षा करेगा। उसे यह आशा न थी, कि डिप्टी साहब जो शील और विनय के पुतले बने हुए थे, एकबारगी यह रुद्ररूप धारण कर लेंगे; मगर वह इतनी आसानी से दबने वाला न था। तेज होकर बोला—आप मुझसे जबरदस्ती शहादत दिलायेंगे?

डिप्टी ने पैर पटकते हुए कहा—हाँ जबरदस्ती दिलायेगा।

रमा०—यह अच्छी दिल्लगी है!

डिप्टी—तोम पुलिस को धोखा देना दिल्लगी समझता है। अभी दो गवाह देकर साबित कर सकता है, कि तुम राजद्रोह का बात कर रहा था। बस चला जायगा सात साल के लिए। चक्की पीसते-पीसते हाथ मे घट्टा पड़ जायगा। यह चिकना-चिकना गाल नहीं रहेगा।

रमा जेल से डरता था। जेल-जीवन की कल्पना से ही उसके रोएँ खडे होते थे। जेल ही के भय से उसने यह गवाही देनी स्वीकार की थी। वही भय इस वक्त भी उसे कातर करने लगा। डिप्टी भाव-विज्ञान का ज्ञाता था। आसन का पता पा गया, बोला—वहाँ हलवा, पूरी नहीं पायगा। धूल मिला हुआ आटा की रोटी, गोभी के सडे हुए पत्तो का रसा, और अरहर की दाल का पानी खाने को पावेगा। काल कोठरी का चार महीना भी हो गया, तो तुम बच भी नही सकता, वहीं मर जायगा। बात-बात पर वार्डर गाली देगा, जूतों से पीटेगा, तुम समझता क्या है!

रमा का चेहरा फीका पड़ने लगा। मालूम होता था, प्रतिक्षण उसका खून सूखता चला जाता है। अपनी दुर्बलता पर उसे इतनी ग्लानि हुई कि वह रो पडा। काँपती हुई आवाज से बोला—आप लोगों की यह इच्छा है, तो यही सही! भेज दीजिए जेल! मर ही जाऊँगा न? फिर तो आप लोगों से मेरा गला छूट जायगा। जब आप यहाँ तक मुझे तबाह करने पर आमादा है, तो मैं भी मरने को तैयार हूँ। जो कुछ होना होगा, होगा।

उसका मन दुर्बलता की उस दशा को पहुँच गया था, जब जरा-सी सहानुभूति, जरा-सी सहृदयता सैकड़ों धमकियों से कही कारगर हो जाती है। इंस्पेक्टर साहब ने मौका ताड़ लिया। उसका पक्ष लेकर डिप्टी से बोले—हलफ से कहता हूँ, आप लोग आदमी को पहचानते तो हैं नहीं,

लगते हैं रोब जमाने। इस तरह गवाही देना हर एक समझदार आदमी को बुरा मालूम होगा। कुदरती बात है। जिसे जरा भी इज्जत का खयाल है, वह पुलिस के हाथो की कठपुतली बनना पसंद न करेगा। बाबू साहब की जगह मैं होता, तो मैं भी ऐसा करता, लेकिन इनका मतलब यह नहीं कि हमारे खिलाफ शहादत देगे। आप लोग अपना काम कीजिए, बाबू साहब की तरफ से बेफिक्र रहिए, हलफ से कहता हूँ।

उसने रमा का हाथ पकड लिया और बोला—आप मेरे साथ चलिए बाबूजी, आपको अच्छे रिकार्ड सुनाऊँ!

रमा ने रूठे हुए बालक की तरह हाथ छुड़ाकर कहा—मुझे दिक न कीजिए, इंस्पेक्टर साहब। अब तो मुझे जेलखाने मे मरना है।

इंस्पेक्टर ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा—आप क्यों ऐसी बातें मुँह से निकालते है साहब! जेलखाने मे मरें आपके दुश्मन!

डिप्टी ने तसमा भी बाकी न छोडना चाहा। बडे कठोर स्वर मे बोला, मानो रमा से कभी का परिचय नहीं है—साहब, यों हम बाबू साहब के साथ सब तरह का सलूक करने को तैयार हैं; लेकिन जब वह हमारे खिलाफ़ गवाही देगा, हमारा जड खोदेगा, तो हम भी अपनी कार्रवाई करेगा। जरूर से करेगा। कभी छोड नही सकता।

इसी वक्त सरकारी एडवोकेट और बैरिस्टर मोटर से उतरे।

(४१)

रतन पत्रों मे जालपा को तो ढाढ़स देती रहती थी; पर अपने विषय में कुछ न लिखती थी। जो आप ही व्यथित हो रहा हो, उसे अपनी व्यथाओं की कथा क्या सुनाते! वही रतन जिसने रुपयों की कभी कोई हकीकत न समझी, इस एक ही महीने मे रोटियों की भी मुहताज हो गयी थी। उसका वैवाहिक जीवन बहुत सुखी न हो, पर उसे किसी बात का अभाव न था। मरियल घोड़े पर सवार होकर भी यात्रा पूरी हो सकती है अगर सड़क अच्छी हो, नौकर-चाकर, रुपये-पैसे और भोजन आदि की सामग्री साथ हो। घोड़ा भी तेज हो, तो पूछना ही क्या। रतन की दशा उसी सवार की-सी थी, उसी सवार की भाँति वह मन्दगति से अपनी जीवन-यात्रा कर रही थी। कभी-कभी वह घोड़े पर झुझलाती होगी, दूसरे

सवारों को उडे जाते देखकर उसकी भी इच्छा होती होगी कि मैं भी इसी तरह उडती; लेकिन वह दुःखी न थी, अपने नसीबों को रोती न थी। वह उस गाय की तरह थी, जो एक पतली सी पगहिया के बन्धन मे पड़कर, अपनी नाँद के भूसे-खली मे मग्न रहती है। सामने हरे-हरे मैदान हैं, उसमे सुगन्धमय घासे लहरा रही हैं; पर वह पगहिया तुड़ाकर कभी उधर नहीं जाती। उसके लिए उस पगहिया और लोहे की जंजीर मे कोई अन्तर नहीं। यौवन को प्रेम की इतनी क्षुधा नहीं होती, जितनी आत्मप्रदर्शन की। प्रेम की क्षुधा पीछे आती है। रतन को आत्मप्रदर्शन के सभी साधन मिले हुए थे। उसकी युवती-आत्मा अपने शृंगार और प्रदर्शन मे मग्न थी। हंसी-विनोद, सैर-सपाटा, खाना-पीना यही उसका जीवन था, प्रायः जो सभी मनुष्यों का होता है। इससे गहरे जल मे जाने की उसे न इच्छा थी; न प्रयोजन। सम्पन्नता बहुत-कुछ मानसिक व्यथाओं को शात करती है। उसके पास अपने दुःखो को भुलाने के कितने ही ढङ्ग हैं—सिनेमा है, थिएटर है, देश-भ्रमण है, ताश है, पालतू जानवर है, संगीत है, लेकिन विपन्नता को भुलाने का मनुष्य के पास कोई साधन नहीं, इसके सिवा कि वह रोये, अपने तकदीर को कोसे या ससार से विरक्त होकर आत्मा-हत्या कर ले। रतन की तकदीर ने पलटा खाया था। सुख का स्वप्न भंग हो गया था और विपन्नता का कङ्काल अब उसे खड़ा घूर रहा था।

और यह सब हुआ अपने ही हाथों। पंडितजी उन प्राणियों मे थे, जिन्हें मौत की फिक्र नहीं होती। उन्हे किसी तरह भ्रम हो गया था, कि दुर्बल स्वास्थ्य के मनुष्य अगर पथ्य और विचार से रहे तो बहुत दिनों तक जी सकते हैं। वह पथ्य और विचार की सीमा के बाहर कभी न जाते। फिर मौत को उनसे क्या दुश्मनी थी, जो ख्वामख्वाह उसके पीछे पड़ती। अपनी वसीयत लिख डालने का ख्याल उन्हे उस वक्त आया, जब वह मरणासन्न हुए, लेकिन रतन वसीयत का नाम सुनते ही इतनी शोकातुर, इतनी भयभीत हुई कि पंडितजी ने उस वक्त टाल जाना ही उचित समझा। तब से फिर उन्हे इतना होश न आया, कि वसीयत लिखवाते।

पंडितजी के देहावसान के बाद रतन का मन इतना विरक्त हो गया,

कि किसी बात की भी सुध-बुध न रही। इस भाँति सतर्क रहना चाहिए था, मानो दुश्मनों ने उसे घेर रखा हो; पर उसने सब मणिभूषण पर छोड़ दिया। और उसी मणिभूषण ने धीरे-धीरे उसकी सारी संपत्ति अपहरण कर ली, ऐसे-ऐसे षड्यन्त्र रचे कि सरला रतन को उसके कपट व्यवहार का आभास तक न हुआ! फन्दा जब खूब कस गया, तो उसने एक दिन आकर कहा—आज बँगला खाली करना होगा। मैंने इसे बेच दिया है।

रतन ने जरा तेज होकर कहा—मैंने तो तुमसे कहा था, कि मैं अभी बँगला न बेचूँगी।

मणिभूषण ने विनय का आवरण उतार फेंका और त्योरी चढ़ाकर बोला—आपमे बातें भूल जाने की बुरी आदत है। इसी कमरे मे मैंने आपसे जिक्र किया था और आपने हामी भरी थी। जब मैंने बेच दिया तो आप यह स्वाँग खडा करती हैं। बंगला आज खाली करना होगा और आपको मेरे साथ चलना होगा।

'मैं अभी यहीं रहना चाहती हूँ।'

'मैं आपको यहाँ न रहने दूँगा।'

'मैं तुम्हारी लौंडी नही हूँ।'

'आपकी रक्षा का भार मेरे ऊपर है। अपने कुल की मर्यादा-रक्षा के लिए मैं आपको अपने साथ ले जाऊँगा।'

रतन ने ओठ चबाकर कहा—मैं अपनी मर्यादा की रक्षा आप कर सकती हूँ। तुम्हारी मदद की जरूरत नहीं। मेरी मर्जी के बगैर तुम यहाँ की कोई चीज नहीं बेच सकते।

मणिभूषण ने वज्र-सा मारा—आपका इस घर पर और चाचाजी की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं। वह मेरी सम्पत्ति है। आप मुझसे केवल गुजारे का सवाल कर सकती है।

रतन ने विस्मित होकर कहा—तुम कुछ भंग तो नही खा गये हो?

मणिभूषण ने कठोर स्वर मे कहा—मैं इतनी भंग नहीं खाता कि बे सिर-पैर की बात करने लगूँ। आप तो पढ़ी-लिखी है, एक बड़े वकील की धर्मपत्नी थीं। कानून की बहुत-सी बातें जानती होंगी। सम्मिलित परिवार

मे बिधवा का अपने पुरुष की संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता। चाचाजी और मेरे पिताजी मे कभी अलगौझा नहीं हुआ। चाचाजी यहाँ थे, हम लोग इंदौर मे थे; पर इससे यह नहीं सिद्ध होता कि हममे अलगौझा था। अगर चाचा अपनी सपत्ति आपको देना चाहते, तो कोई वसीयत अवश्य लिख जाते, और यद्यपि वह वसीयत कानून के अनुसार कोई चीज न होती, पर हम उसका सम्मान करते। उनका कोई वसीयत न करना साबित कर रहा है कि वह कानून के साधारण व्यवहार मे कोई बाधा न डालना चाहते थे। आज आप को बँगला खाली करना होगा। मोटर और अन्य वस्तुएँ भी नीलाम कर दी जायेंगी। आपकी इच्छा हो, मेरे साथ चले या यहाँ रहे। यहाँ रहने के लिए आपको दस-ग्यारह रुपये का मकान काफी होगा। गुजारे के लिए पचास रुपये महीने का प्रबन्ध मैंने कर दिया है। लेना-देना चुका लेने के बाद इससे ज्यादा की गुंजाइश ही नहीं।

रतन ने कोई जवाब न दिया। कुछ देर वह हतबुद्धि-सी बैठी रही, फिर मोटर मँगाई और सारे दिन वकीलों के पास दौड़ती फिरी। पडित जी के कितने ही वकील मित्र थे। सभी ने उसका वृत्तान्त सुनकर खेद प्रकट किया और वकील साहब के वसीयत न लिख जाने पर हैरत करते रहे। अब उसके लिए एक ही उपाय था। वह यह सिद्ध करने की चेष्टा करे, कि वकील साहब और उनके भाई मे अलहदगी हो गयी थी। अगर यह सिद्ध हो गया, और यह सिद्ध हो जाना बिल्कुल आसान था, तो रतन उस संपत्ति की स्वामिनी हो जायगी। अगर वह यह सिद्ध न कर सकी, तो उसके लिए कोई चारा न था।

अभागिनी रतन लौट आयी! उसने निश्चय किया, जो कुछ मेरा नहीं है, उसे लेने के लिए मैं झूठ का आश्रय न लूंगी। किसी तरह नहीं। मगर ऐसा कानून बनाया किसने? क्या स्त्री इतनी नीच, इतनी तुच्छ इतनी नगण्य है? क्यो!

दिन भर रतन चिन्ता मे डूबी, मौन बैठी रही। इतने दिनों वह अपने को इस घर की स्वामिनी समझती रही। कितनी बड़ी भूल थी। पति के जीवन मे जो लोग उसका मुँह ताकते थे, वे आज उसके भाग्य के विधाता हो गये। यह घोर अपमान रतन-जैसी मानिनी स्त्री के लिए असह्य था। माना, कमाई पंडितजी की थी, पर यह गाँव तो उसी ने खरीदा था

इनमें कई मकान तो उसके सामने ही बने। उसने यह एक क्षण के लिए भी न खयाल किया था, कि एक दिन यह जायदाद मेरी जीविका का आधार होगी। इतनी भविष्य चिन्ता वह कर ही न सकती थी। उसे इस जायदाद के खरीदने में, उसके संवारने और सजाने में वही आनन्द आता था, जो माता अपनी सन्तान को फूलते-फलते देखकर पाती है। उसमे स्वार्थ का भाव न था, केवल अपनेपन का गर्व था, वही ममता थी; पर पति की आँखे बन्द होते ही उसके पाले और गोद के खेलाये बालक भी उसकी गोद से छीन लिये गये। उसका उन पर कोई अधिकार ही नहीं। अगर वह जानती कि एक दिन यह कठिन समस्या आयेगी, तो वह चाहे रुपये लुटा देती या दान कर देती, पर संपत्ति की कील अपनी छाती पर न गाडती। पंडितजी की ऐसी कौन बहुत बड़ी आमदनी थी। क्या गर्मियों मे वह शिमले न जा सकती थी? दो-चार नौकर न रखे जा सकते थे? अगर वह गहने ही बनवाती, तो एक-एक मकान के मूल्य का एक-एक गहना बनवा सकती थी; पर उसने इन बातों को कभी उचित सीमा से आगे न बढ़ने दिया। केवल यही स्वप्न देखने के लिए? यही स्वप्न? इसके सिवा और था ही क्या? जो कल उसका था, उसकी ओर आज आँखे उठाकर वह अब देख भी नहीं सकती? कितना मंहगा था वह स्वप्न! हाँ, वह अब अनाथिनी थी। कल तक दूसरों को भीख देती थी। आज उसे खुद भीख माँगनी पडेगी और कोई आश्रय नहीं! पहले भी वह आनाथिनी थी, केवल भ्रम-वश अपने को स्वामिनी समझ रही थी। अब उस भ्रम का सहारा भी नहीं रहा।

सहसा उसके विचारों ने पलटा खाया। मैं क्यों अपने को अनाथिनी समझ रही हूँ? क्यों दूसरे के द्वार भीख माँगूं। संसार मे लाखों ही स्त्रियाँ मेहनत-मजूरी करके जीवन-निर्वाह करती है। क्या मैं कोई काम नहीं कर सकती? क्या मैं कपड़ा नहीं सी सकती, किसी चीज की छोटी-मोटी दुकान नहीं रख सकती? लड़के भी पढ़ा सकती हूँ। यही न होगा, लोग हँसेंगे; मगर मुझे उस हँसी की क्या परवा। वह मेरी हँसी नहीं है, अपने समाज की हँसी है।

शाम को द्वार पर कई ठेलेवाले आ गये। मणिभूषण ने आकर

कहा—चाचीजी आप जो-जो चीजें कहे लदवाकर भेजवा दूँ। मैंने एक मकान ठीक कर लिया है।

रतन ने कहा—मुझे किसी चीज की जरूरत नही। न तुम मेरे लिए मकान लो। जिस चीज पर मेरा कोई अधिकार नहीं, मैं हाथ से भी नही छू सकती। मैं अपने घर से कुछ लेकर नहीं आयी थी। उसी तरह लौट जाऊँगी।

मणिभूषण ने लज्जित होकर कहा—आपका सब कुछ है। यह आप कैसे कहती हैं, कि आपका कोई अधिकार नही। आप वह मकान देख लें। पन्द्रह रुपया किराया है। मैं तो समझता हूँ, आपको कोई कष्ट न होगा। जो-जो चीजें आप कहे यहाँ से पहुँचा दूं।

रतन ने व्यंगमय आँखों से देखकर कहा—तुमने पन्द्रह रुपये का मकान मेरे लिए व्यर्थ लिया। इतना बड़ा मकान लेकर मैं क्या करूँगी। मेरे लिए एक कोठरी काफी है, जो दो रुपये मे मिल जायगी। सोने के लिये जमीन है ही। दया का बोझ सिर पर जितना कम हो उतना ही अच्छा।

मणिभूषण ने बड़े विनम्र भाव से कहा—आखिर आप चाहती क्या हैं? कहिए तो!

रतन उत्तेजित होकर बोली—मैं कुछ नहीं चाहती। मैं इस घर का एक तिनका भी अपने साथ न ले जाऊँगी। जिस पर मेरा कोई अधिकार नही, वह मेरे लिए वैसे ही है जैसे किसी गैर आदमी की चीज। मैं दया की भिखारिणी, न बनूंगी। तुम इन चीजों के अधिकारी हो, ले जाओ। मैं जरा भी बुरा नहीं मानती। दया की चीज न जबरदस्ती ली जा सकती है, न जबरदस्ती दी जा सकती है। ससार मे हजारों विधवाएँ है, जो मेहनत-मजूरी करके अपना निर्वाह कर रही हैं। मैं भी वैसी ही हूं। मैं भी उसी तरह मजूरी करूँगी और अगर न कर सकूँगी, तो किसी गड्ढे में डूब मरूँगी। जो अपना पेट भी न पाल सके उसे जीते रहने का, दूसरो का बोझ बनने का कोई हक नहीं है।

यह कहती हुई रतन घर से निकली और द्वार की ओर चली।

मणिभूषण ने उसका रास्ता रोक कर कहा—अगर आपकी इच्छा न हो तो मैं बँगला न बेचूं।

रतन ने जलती हुई आँखों से उसकी ओर देखा। उसका चेहरा तमतमाया हुआ था, आँसुओं के उमड़ते हुए वेग को रोककर बोली—मैंने कह दिया, इस घर की चीज से मेरा नाता नहीं है। मैं किराये की लौंडी थी। लौंडी का घर से क्या संबंध है? न जाने किस पापी ने यह कानून बनाया था। अगर ईश्वर कहीं है और उसके यहाँ कोई न्याय होता है तो एक दिन उसी के सामने उस पापी से पूछूंगी, क्या तेरे घर मे माँ-बहने न थीं। तुझे उनका अपमान करते लज्जा न आयी? अगर मेरी जबान मे इतनी ताकत होती कि सारे देश में उसकी आवाज पहुँचती, तो मैं सब स्त्रियों से कहती—बहनों, किसी सम्मिलित परिवार में विवाह मत करना और अगर करना, तो जब तक अपना घर अलग न बना लो, चैन की नींद मत सोना। यह मत समझो कि तुम्हारे पति के पीछे उस घर मे तुम्हारा मान के साथ पालन होगा। अगर तुम्हारे पुरुष ने कोई तरका नहीं छोड़ा, तो तुम अकेली रहो, चाहे परिवार में, एक ही बात है। तुम अपमान और मजूरी से नहीं बच सकतीं। अगर तुम्हारे पुरुष ने कुछ छोड़ा है, तो अकेली रहकर भोग सकती हो, परिवार मे रहकर तुम्हे उससे हाथ धोना पडेगा। परिवार तुम्हारे लिए फूलों की सेज नहीं, काँटों की शैय्या है; तुम्हारा पार लगाने वाली नौका नहीं, तुम्हे निगल जाने वाला जन्तु है।

संध्या हो गयी थी। गर्द भरी हुई फागुन की वायु चलनेवालों की आँखों मे धूल झोंक रही थी। रतन चादर संभालती सड़क पर चली जा रही थी। रास्ते मे कई परिचित स्त्रियों ने उसे टोंका, कई ने अपनी मोटर रोक ली और उसे बैठने को कहा; पर रतन को उनकी सहृदयता इस समय वाण-सी लग रही थी। वह तेजी से कदम उठाती हुई जालपा के घर चली जा रही थी। आज उसका वास्तविक जीवन आरंभ हुआ।

(४२)

ठीक दस बजे जालपा और देवीदीन कचहरी पहुँच गये। दर्शकों की काफी भीड़ थी। ऊपर गैलरी दर्शकों से भरी हुई थी। कितने ही आदमी बरामदों मे और सामने के मैदान में खड़े थे। जालपा उपर गैलरी मे जा बैठी। देवीदीन बरामदे मे खड़ा हो गया।

इजलास पर जज साहब के एक तरफ अहलमद था और दूसरी तरफ पुलिस के कई कर्मचारी खडे थे। सामने कटघरे के बाहर दोनों तरफ के वकील खडे मुकदमा पेश होने का इन्तजार कर रहे थे। मुलजिमो की सख्या पन्द्रह से कम न थी। सब कटघरे के बगल मे जमीन पर बैठे हुए थे। सभी के हाथो मे हथकड़ियाँ थीं, पैरों मे बेडियाँ। कोई लेटा था, कोई बैठा था, कोई आपस मे बातें कर रहा था। दो पजे लडा रहे थे। दो मे किसी विषय पर बहस हो रही थी। सभी प्रसन्न चित्त थे। घबराहट, निराशा, या शोक का किसी के चेहरे पर चिह्न न था।

ग्यारह बजते-बजते अभियोग की पेशी हुई। पहले जाब्ते की कुछ बात हुई, फिर दो-एक पुलिस की शहादतें हुई। अन्त मे तीन बजे रमानाथ गवाहों के कटघरे मे लाया गया। दर्शकों मे सनसनी-सी फैल गयी। कोई तम्बोली की दूकान से पान खाता हुआ भागा, किसी ने समाचार-पत्र को मरोड़कर जेब मे रखा और सब इजलास के कमरे मे जमा हो गये। जालपा भी सभलकर बार्जे पर खडी हो गयी। वह चाहती थी कि एक बार रमा की आँखे उठ जातीं और उसे देख लेतीं, लेकिन रमा सिर झुकाये खड़ा था, मानो वह इधर-उधर देखते डर रहा हो। उसके चेहरे का रंग उड़ा हुआ था। कुछ सहमा हुआ, कुछ घबराया हुआ इस तरह खड़ा था, मानो उसे किसी ने बाँध रखा है और भागने की कोई राह नहीं है। जालपा का कलेजा धक्-धक् कर रहा था, मानो उसके भाग्य का निर्णय हो रहा हो।

रमा का बयान शुरू हुआ। पहला ही वाक्य सुनकर जालपा सिहर उठी, दूसरे वाक्य ने उसकी त्योरियों पर बल डाल दिये, तीसरे वाक्य ने उसके चेहरे का रंग फक कर दिया, और चौथा वाक्य सुनते ही वह एक लम्बी साँस खींचकर पीछे रखी हुई कुरसी पर टिक गयी; मगर दिल फिर न माना। जंगले पर झुककर फिर उधर कान लगा दिये। वही पुलिस की सिखायी हुई शहादत थी जिसका आशय वह देवीदीन के मुँह से सुन चुकी थी। अदालत मे सन्नाटा छाया हुआ था। जालपा ने कई बार खासा, कि शायद अब भी रमा की आँखे ऊपर उठ जायँ, लेकिन रमा का सिर और भी झुक गया। मालूम नहीं, उसने जालपा के खाँसने की

आवाज पहचान ली या आत्म-ग्लानि का भाव उदय हो गया। उसका स्वर भी कुछ धीमा हो गया।

एक महिला ने जो जालपा के साथ बैठी थीं, नाक सिकोड़कर कहा —जी चाहता है, इस दुष्ट को गोली मार दे। ऐसे-ऐसे स्वार्थी भी इस अभागे देश मे पडे हैं, जो नौकरी या थोड़े-से धन के लोभ में निरपराधों के गले पर छुरी फेरने से भी नहीं हिचकते!

जालपा ने कोई जवाब न दिया!

एक दूसरी महिला ने जो आँखों पर ऐनक लगाये हुए थीं, निराशा के भाव से कहा—इस अभागे देश का ईश्वर ही मालिक है। गवर्नरी तो लाला को कहीं मिली नही जाती! अधिक-से-अधिक कही क्लर्क हो जायंगे। उसी के लिए अपनी आत्मा की हत्या कर रहे है। मालूम होता है, कोई मरभुखा नीच आदमी है; पल्ले सिरे का कमीना और छिछोरा।

तीसरी महिला ने ऐनकवाली देवी से मुसकराकर पूछा—आदमी फैशनेबुल है और पढ़ा-लिखा भी मालूम होता है। भला तुम इसे पा जाओ तो क्या करो?

ऐनकबाज देवी ने उद्दण्डता से कहा—नाक काट लूँ! बस, नकटा बनाकर छोड़ दूँ!

'और जानती हो, मैं क्या करूँ?'

'नही। शायद गोली मार दोगी।'

'न! गोली न मारूँ। सरे बाजार खड़ा करके पाँच सौ जूते लगवाऊँ!'

'चाँद गजी हो जाय!'

'उस पर तुम्हें जरा भी दया न आयेगी?'

'यह कुछ कम दया है? इसकी पूरी सजा तो यह है कि किसी ऊँची पहाडी से ढकेल दिया जाय; अगर यह महाशय अमेरिका मे होते, तो जिन्दा जला दिये जाते।'

एक वृद्धा ने इन युवतियों का तिरस्कार करके कहा—क्यों व्यर्थ मे मुँह खराब करती हो? यह आदमी घृणा के योग्य नहीं, दया के योग्य है। देखती नही हो, उसका चेहरा कैसा पीला हो गया है, जैसे कोई उसका गला दबाये हुए हो। अपनी माँ या बहन को देख ले, तो जरूर

रो पड़े। आदमी दिल का बुरा नहीं है। पुलिस ने धमकाकर उसे सीधा किया है। मालूम होता है, एक-एक शब्द उसके हृदय को चीर-चीर कर निकल रहा हो।

ऐनकवाली महिला ने व्यंग किया—जब अपने पाँव में काँटा चुभता है, तब आह निकलती है

जालपा अब वहाँ न ठहर सकी। एक-एक बात चिनगारी की तरह उसके दिल पर फफोले डाल देती थी। ऐसी जी चाहता था कि इसी वक्त उठकर कह दे यह महाशय बिल्कुल झूठ बोल रहे है, सरासर झूठ; और इसी वक्त इसका सबूत दे दे। वह इस आवेश को पूरे बल से दबाये हुए थी। उसका मन अपनी कायरता पर उसे धिक्कार रहा था। क्यो वह इसी वक्त सारा वृत्तान्त नही कह सुनाती? पुलिस उसकी दुश्मन हो जायगी, हो जाय। कुछ तो अदालत को खयाल होगा। कौन जाने, इन गरीबों की जान बच जाय। जनता को तो मालूम हो जायगा कि यह झूठी शहादत है। उसके मुँह से एक बार आवाज निकलते-निकलते रह गयी। परिणाम के भय ने उसकी जबान पकड ली।

आखिर उसने वहाँ से उठकर चले जाने ही मे कुशल समझी।

देवीदीन उसे उतरते देखकर बरामदे मे चला आया और दया से सने हुए स्वर मे बोला—क्या घर चलती हो बहूजी?

जालपा ने आँसुओं के वेग को रोक कर कहा—हाँ, यहाँ अब नही बैठा जाता।

हाते के बाहर निकलकर देवीदीन ने जालपा को सान्त्वना देने के इरादे से कहा—पुलिस ने जिसे एक बार बूटी सुघा दी, उस पर किसी दूसरी चीज का असर नहीं हो सकता।

जालपा ने घृणा के भाव से कहा—यह सब कायरों के लिए है।

कुछ दूर दोनों चुपचाप चलते रहे। सहसा जालपा ने कहा—क्यों दादा, अब और तो कहीं अलोपी न होगी! कैदियों का यहीं फैसला हो जायगा?

देवीदीन इस प्रश्न का आशय समझ गया। बोला—नहीं, हाईकोर्ट मे अपील हो सकती है।

फिर कुछ दूर तक दोनों चुपचाप चलते रहे। जालपा एक वृक्ष की छाँह में खड़ी हो गयी और बोली—दादा, मेरा जी चाहता है, आज जज साहब से मिलकर सारा हाल कह दूँ! शुरू से जो कुछ हुआ सब कह सुनाऊँ। मैं सबूत दे दूँगी, तब तो मानेंगे?

देवीदीन ने आँख फाड़कर कहा—जज साहब से!

जालपा ने उसकी आँखों से आँखें मिला कर कहा—हाँ!

देवीदीन ने दुविधे में पड़कर कहा—मैं इस बारे में कुछ नहीं कह सकता बहूजी। हाकिम का वास्ता, न-जाने चित पड़े या पट।

जालपा बोली—क्या वह पुलिसवालों से यह नहीं कह सकता, कि तुम्हारा गवाह बनाया हुआ है, झूठा है?

'कह तो सकता है।'

'तो आज मैं उनसे मिलूं? मिल तो लेता है?'

'चलो, दरियाफ्त करेंगे; लेकिन मामला जोखिम है।'

'क्या जोखिम है बताओ!'

'भैया पर कहीं झूठी गवाही का इलजाम लगाकर सजा कर दे तो?'

'तो कुछ नहीं। जो जैसा करे, वैसा भोगे।'

देवीदीन ने जालपा की इस निर्ममता पर चकित होकर कहा—एक दूसरा खटका है। सबसे बड़ा डर उसी का है।

जालपा ने उद्धत भाव से पूछा—वह क्या?

देवी०—पुलिसवाले बड़े कायर होते हैं। किसी का अपमान कर डालना तो इनकी दिल्लगी है। जज साहब पुलिस कमिश्नर को बुलाकर यह सब कहेंगे जरूर। कमिसनर सोचेंगे कि यह औरत सारा खेल बिगाड़ रही है। इसी को गिरफ्तार कर लो। जज अंग्रेज होता तो निडर होकर पुलिस को तंबीह करता। हमारे भाई तो ऐसे मुकदमों में चूँ करते डरते हैं, कि कहीं हमारे ही ऊपर न बगावत का इलजाम लग जाय। यही बात है। जज साहब पुलिस कमिसनर से जरूर कह सुनावेंगे। फिर यह तो न होगा कि मुकदमा उठा लिया जाय, यही होगा कि कलई न खुलने पावे। कौन जाने तुम्हीं को गिरफ्तार कर लें? कभी-कभी जब गवाह बदलने लगता है या कलई खोलने पर उतारू हो जाता है, पुलिस-

वाले उसके घरवालो को दबाते है। इनकी माया अपरम्पार है।

जालपा सहम उठी। अपनी गिरफ्तारी का उसे भय न था, लेकिन कहीं पुलिसवाले रमा पर अत्याचार न करें। इस भय ने उसे कातर कर दिया। उसे इस समय ऐसी थकान मालूम हुई, मानों सैकड़ों कोस की मंजिल मारकर आयी हो। उसका उत्साह बर्फ के समान पिघल गया।

कुछ दूर और आगे चलने के बाद उसने देवीदीन से पूछा—अब तो उनसे मुलाकात न हो सकेगी?

देवीदीन ने पूछा—भैया से?

'हाँ।'

'किसी तरह नहीं। पहरा और कडा कर दिया गया होगा। चाहे उस बँगले को छोड़ दिया हो। और अब उनसे मुलाकात हो ही गयी तो क्या फायदा? अब किसी तरह अपना बयान नहीं बदल सकते। दरोग-हलफी मे फँस जायँगे।

कुछ दूर और चलकर जालपा ने कहा—मैं सोचती हूँ, घर जाऊँ। यहाँ रहकर अब क्या करूँगी?

देवीदीन ने करुणा भरी हुई आँखों से उसे देखकर कहा—नहीं, अभी मैं न जाने दूँगा। तुम्हारे बिना हमारा यहाँ-पल भर जी न लगेगा। बुढ़िया तो रो-रोकर परान ही दे देगी। अभी यहाँ रहो, देखो क्या फैसला होता है। भैया को मैं इतना कच्चे दिल का आदमी नहीं समझता था। तुम लोगों की बिरादरी मे सभी सरकारी नौकरी पर जान देते हैं। मुझे तो कोई सौ रुपया भी तलब दे, तो नौकरी न करूँ। अपने रोजगार की बात दूसरी ही है। इसमें आदमी कभी थकता नहीं। नौकरी मे जंहाँ पाँच छः घंटे हुए कि देह टूटने लगी, जम्हाइयाँ आने लगीं।

रास्ते मे और कोई बातचीत न हुई। जालपा का मन अपनी हार मानने के लिये किसी तरह राजी न होता था। वह परास्त होकर भी दर्शक की भाँति यह अभिनय देखने से संतुष्ट न हो सकती थी। वह अभिनय मे सम्मिलित होने और अपना पार्ट खेलने के लिए विकल हो रही थी। क्या एक बार फिर रमा से मुलाकात न होगी? उसके हृदय में उन जलते हुए शब्दों का एक सागर उमड़ रहा था, जो वह उससे कहना चाहती

थी। उसे रमा पर जरा भी दया न आती थी, उससे रत्ती भर सहानुभूति न होती थी; वह उससे कहना चाहती थी—तुम्हारा धन और वैभव तुम्हे मुबारक हो, जालपा उसे पैरो से ठुकराती है। तुम्हारे खून से रंगे हुए हाथों के स्पर्श से मेरी देह में छाले पड जायँगे। जिसने धन और पद के लिए अपनी आत्मा बेच दी, उसे मैं मनुष्य नहीं समझती। तुम मनुष्य नहीं हो, तुम पशु भी नही, तुम कायर हो! कायर!

जालपा का मुखमंडल तेजमय हो गया। गर्व से उसकी गर्दन तन गयी। वह शायद समझते होंगे, जालपा जिस वक्त मुझे झब्बेदार पगड़ी बाँधे घोडे पर सवार देखेगी, फूली न समायेगी। जालपा इतनी नीच नहीं है। तुम घोड़े पर नहीं, आसमान मे उड़ो, मेरी आँखो मे हत्यारे हो, पूरे हत्यारे, जिसने अपनी जान बचाने के लिए इतने आदमियों की गर्दन पर छुरी चलाई। मैंने चलते-चलते समझाया था, उसका कुछ असर न हुआ? ओह! इतने धन लोलुप हो, इतने लोभी! कोई हरज नहीं। जालपा अपने पालन और रक्षा के लिए तुम्हारी मुहताज नहीं। इन्हीं सन्तप्त भावनाओं मे डूबी हुई जालपा घर पहुँची।

एक महीना गुजर गया। जालपा कई दिन तक बहुत विकल रही। कई बार उन्माद-सा हुआ कि अभी सारी कथा किसी पत्र मे छपवा दूँ, सारी कलई खोल दूँ, सारे हवाई किले ढा दूँ; धीरे-धीरे यह सभी उद्वेग शान्त हो गये। आत्मा की गहराइयो मे छिपी हुई शक्ति उसकी जबान बन्द कर देती थी। रमा को उसने हृदय से निकाल दिया था। उसके प्रति अब उसे क्रोध न था, द्वेष न था, दया भी न थी, केवल उदासीनता थी। उसके मर जाने की सूचना पाकर भी शायद वह न रोती। हाँ, इसे ईश्वरीय विधान की एक लीला, माया का एक निर्मम हास्य, एक क्रूर क्रीडा समझकर थोडी देर के लिए वह दुःखी हो जाती। प्रणय का वह बंधन जो उसके गले ढाई साल पहले पडा था, टूट चुका था; पर उसका निशान बाकी था। रमा को इस बीच मे उसने कई बार मोटर पर अपने घर के सामने से जाते देखा। उसकी आँखें किसी को खोजती हुई मालूम होती थीं। उन आँखों मे कुछ लज्जा थी, कुछ क्षमा याचना; पर जालपा ने कभी उसकी तरफ आँख न उठायी। वह शायद इस वक्त आकर उसके

पैरो पर गिर पड़ता, तो भी वह उसकी ओर न ताकती। रमा की इस घृणित कायरता और महान् स्वार्थपरता ने जलपा के हृदय को मानो चीर डाला था। फिर भी उस प्रणय-बन्धन का निशान अभी बना हुआ था। रमा की वह प्रेम-विह्वल मूर्ति, जिसे देखकर एक दिन वह गद्गद हो जाती थी, कभी-कभी उसके हृदय मे छाये हुए अँधेरे मे-क्षीण, मलीन, निरानन्द ज्योत्स्ना की भाँति प्रवेश करती और एक क्षण के लिए वह स्मृतियाँ विलाप कर उठतीं। फिर उसी अन्धकार और नीरवता का पर्दा पड जाता। उसके लिए भविष्य की मृदु स्मृतियाँ न थीं, केवल कठोर नीरस वर्तमान विकराल रूप से खडा घूर रहा था।

वह जालपा, जो अपने घर बात-बात-बात पर मान किया करती थी, अब सेवा, त्याग और सहिष्णुता की मूर्ति थी। जग्गो मना करती, पर वह मुँह अँधेरे सारे घर मे झाडू लगा आती, चौका-बरतन कर डालती, आटा गूंथ कर रख देती, जला देती। तब बुढ़िया का काम केवल रोटियाँ सेकना था। छूत-विचार को भी उसने ताक पर रख दिया था। बुढ़िया उसे ठेलठालकर रसोई मे ले जाती और कुछ-न-कुछ खिला देती। दोनों मे माँ-बेटी का-सा प्रेम हो गया था।

मुकदमे की सब कार्रवाई समाप्त हो चुकी थी। दोनों पक्ष के वकीलों की बहस हो चुकी थी। केवल फैसला सुनाना बाकी था। आज उसकी तारीख थी। आज बडे सवेरे घर के काम-धन्धो से फुर्सत पाकर जालपा दैनिक-पत्र वाले की आवाज पर कान लगाये बैठी थी, मानो आज उसी का भाग्य-निर्णय होने वाला है। इतने मे देवीदीन ने पत्र लाकर उसके सामने रख दिया। जालपा पत्र पर टूट पड़ी और फैसला पढ़ने लगी। फैसला क्या था, एक खयाली कहानी थी, जिसका प्रधान नायक रमा था। जज ने बार-बार उसकी प्रशंसा की थी। सारा अभियोग उसके बयान पर अवलम्बित था।

देवीदीन ने पूछा—फैसला छपा है?

जालपा ने पत्र पढ़ते हुए कहा—हाँ, है तो।

'किसकी सजा हुई?'

'कोई नहीं छूटा। एक को फाँसी की सजा मिली, पाँच को दस-दस

साल और आठ को पाँच-पाँच साल की। उसी दिनेश को फाँसी हुई।'

यह कह कर उसने समाचार-पत्र रख दिया और एक लम्बी साँस लेकर बोली—इन बेचारो के बाल-बच्चो का न जाने क्या हाल होगा?

देवीदीन ने तत्परता से कहा—तुमने जिस दिन मुझसे कहा था, उसी दिन से मैं सबों का पता लगा रहा हूँ। आठ आदमियों का तो अभी तक ब्याह ही नहीं हुआ, और उनके घरवाले मजे मे हैं। किसी बात की तकलीफ नहीं है। पाँच आदमियों का विवाह तो हो गया है; पर घर के खुश है। किसी के घर रोजगार होता है, कोई जमींदार है, किसी के बाप-चाचा नौकर है। मैंने कई आदमियों से पूछा। यहाँ कुछ चन्दा भी किया गया है। अगर उनके घरवाले लेना चाहे तो दिया जायगा। खाली दिनेश तबाह है। दो छोटे-छोटे बच्चे हैं, बुढ़िया माँ है, और औरत। यहाँ किसी स्कूल मे मास्टर था। एक मकान किराये पर लेकर रहता था। उसी की खराबी है।

जालपा ने पूछा—उसके घर का पता लगा सकते हो?

'हाँ, इसका पता लगाना कौन मुसकिल है।'

जालपा ने याचना-भाव से कहा—तो कब चलोगे? मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी? अभी तो वक्त है। चलो, जरा देखें।

देवीदीन ने आपत्ति करके कहा—पहले मैं देख तो आऊँ। इस तरह उटक्करलैस मेरे साथ कहाँ-कहाँ दौड़ती फिरोगी?

जालपा ने मन को दबाकर लाचारी से सिर झुका लिया और कुछ न बोली।

देवीदीन चला गया। जालपा फिर समाचार-पत्र देखने लगी; पर ध्यान दिनेश की ओर लगा हुआ था। बेचारा फाँसी पा जायगा। जिस वक्त उसने फाँसी का हुक्म सुना होगा, उसकी क्या दशा हुई होगी। उसकी बूढ़ी माँ और स्त्री यह खबर सुनकर छाती पीटने लगी होंगी। बेचारा स्कूल मास्टर ही तो था, मुश्किल से रोटियाँ चलती होंगी। और क्या सहारा होगा? उनकी विपत्ति की कल्पना करके उसे रमा के प्रति ऐसी उत्तेजना-पूर्ण घृणा हुई कि उदासीन न रह सकी। उसके मन मे ऐसा उद्वेग उठा कि इस वक्त वह आ जाय तो ऐसा धिक्कारूँ, कि वह

भी याद करे। तुम मनुष्य हो? कभी नहीं। तुम मनुष्य के रूप में राक्षस हो, राक्षस! तुम इतने नीच हो, कि उसको प्रगट करने के लिए कोई शब्द नहीं है। तुम इतने नीच हो, कि आज कमीने-से-कमीना आदमी भी तुम्हारे ऊपर थूक रहा है। तुम्हे किसी ने पहले ही क्यों न मार डाला? इन आदमियों की जान तो जाती ही; पर तुम्हारे मुँह मे कालिख न लगती! तुम्हारा इतना पतन हुआ कैसे! जिसका पिता इतना सच्चा, इतना ईमानदार हो, वह इतना लोभी, इतना कायर!

शाम हो गयी पर देवीदीन न आया। जालपा बार-बार खिडकी पर खड़े हो-होकर इधर-उधर देखती थी; पर देवीदीन का पता न था। धीरे-धीरे आठ बज गये और देवीदीन न लौटा। सहसा एक मोटर द्वार पर आकर रुकी और रमा उतरकर जग्गो से पूछा—सब कुशलमङ्गल है न, दादी! दादा कहाँ गये है?

जग्गो ने एक बार उसकी ओर देखा और मुह फेर लिया। केवल इतना बोली—कहीं गये होंगे, मैं नहीं जानती।

रमा ने सोने की चार चूडियॉ जेब से निकालकर जग्गो के पैरों पर रख दीं और बोला—यह तुम्हारे लिए लाया हूँ अम्मा। पहनो, ढीली तो नहीं हैं?

जग्गो ने चूड़ियाँ जमीन पर उठाकर पटक दीं और आँखे निकाल-कर बोली—जहॉ इतना पाप समा सकता है, वहॉ चार चूडियों की जगह नहीं है? भगवान की दया से बहुत चूड़ियॉ पहन चुकी और अब भी सेर-दो-सेर सोना पडा होगा; लेकिन जो खाया, पहना, अपनी मिहनत की कमाई से, किसी का गला नहीं दबाया, पाप की गठरी सिर पर नहीं लादी, नीयत नहीं बिगाड़ी। उस कोख मे आग लगे जिसने तुम जैसे कपूत को जन्म दिया। यह पाप की कमाई लेकर तुम बहू को देने आये होगे, समझते होगे तुम्हारे रुपयों की थैली देखकर वह लट्टू हो जायगी। इतने दिन उसके साथ रहकर भी तुम्हारी लोभी आँखे उसे न पहचान सकीं। तुम जैसे राकस उस देवी के जोग न थे। अगर अपनी कुशल चाहते हो, तो इन्हीं पैरों जहॉ से आये हो वहाँ लौट जाओ, उसके सामने जाकर क्यों अपना पानी उतरवाओगे। तुम आज पुलिस के हाथों जख्मी

होकर, मार खाकर आये होते, तुम्हे सजा दी गयी होती, तुम जेहल मे डाल दिये गये होते, तो बहू तुम्हारी पूजा करती, तुम्हारे चरन धो-धोकर पीती। वह उन औरतो मे है जो चाहे मजूरी करे, उपास करे, फटे-चीथड़े पहने, पर किसी की बुराई नहीं देख सकती। अगर तुम मेरे लड़के होते, तो तुम्हे जहर दे देती। क्यो खड़े मुझे जला रहे हो? चले क्यों नहीं जाते? मैंने तुमसे कुछ ले तो नही लिया है?

रमा सिर झुकाये चुपचाप सुनता रहा। तब आहत स्वर मे बोला—अम्मा मैंने बुराई की और इसके लिए मरते दम तक लज्जित रहूँगा; लेकिन तुम मुझे जितना नीच समझ रही रही हो, उतना नीच नहीं हूँ। अगर तुम्हे मालूम होता, कि पुलिस ने मेरे साथ कैसी-कैसी धमकियाँ दीं, तो तुम मुझे राक्षस न कहतीं।

जालपा के कानो मे इन आवाजो की भनक पड़ी। उसने जीने से झाँककर देखा। रमानाथ खड़ा था। सिर पर बनारसी रेशमी साफा था, रेशम का बढ़िया कोट, आँखों पर सुनहरी ऐनक। इस एक ही महीने मे उसकी देह निखर आयी थी, रंग भी कुछ अधिक गोरा हो गया था। ऐसी काति उसके चेहरे पर कभी न दिखायी दी थी। उसके अन्तिम शब्द जालपा के कानों मे पड़ गये। बाज की तरह कूदकर धम्-धम् करती हुई नीचे आयी और जहर मे बुझे हुए नेत्रबाणों का उस पर प्रहार करती बोली—अगर तुम सख्तियों और धमकियों से इतना दब सकते हो, तो तुम कायर हो। तुम्हे अपने को मनुष्य कहने का कोई अधिकार नहीं! क्या सख्तियाँ की थीं? जरा सुनूं तो? लोगों ने हंसते-हंसते सिर कटा लिये हैं, अपने बेटों को मरते देखा है, कोल्हू में पेले जाना मंजूर किया है, पर सचाई से जौ-भर भी न हटे। तुम भी तो आदमी हो, तुम क्यों धमकी मे आ गये? क्यों नहीं छाती खोलकर खड़े हो गये, कि इसे गोली का निशाना बना लो, पर मैं झूठ न बोलूंगा। क्यों नहीं सिर झुका दिया? देह के भीतर इसीलिये आत्मा रखी गयी है, कि देह उसकी रक्षा करे। इसलिए नहीं कि उसका सर्वनाश कर दे। इस पाप का क्या पुरस्कार मिला? जरा मालूम तो हो?

रमा ने दबी हुई आवाज से कहा—अभी तो कुछ नहीं।

जालपा ने सर्पिणी की भाँति फुकारकर कहा—यह सुनकर मुझे खुशी हुई। ईश्वर करे, तुम्हे मुह मे कालिख लगाकर भी कुछ न मिले। मेरी यह सच्चे दिल से प्रार्थना है। लेकिन नही, तुम जैसे मोम के पुतले को पुलिसवाले कभी नाराज न करेंगे। तुम्हे कोई जगह मिलेगी और शायद अच्छी जगह मिले; मगर जिस जाल मे तुम फँसे हो, उसमे से निकल नहीं सकते। झूठी गवाही, झूठे मुकदमे बनाना और पाप का व्यापार करना ही तुम्हारे भाग्य मे लिखा गया। जाओ शौक से जिन्दगी के सुख लूटो। मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था और आज फिर कहती हूँ, कि मेरा तुमसे कोई नाता नही। मैंने समझ लिया, कि तुम मर गये। तुम भी समझ लो, कि मैं मर गयी। बस, जाओ। मैं औरत हूँ। मगर कोई धमकाकर मुझसे पाप कराना चाहे, तो चाहे उसे न मार सकूँ, अपनी गर्दन पर छूरी चला लूगी। क्या तुममे औरत के बराबर भी हिम्मत नही है?

रमा ने भिक्षुकों की भाँति गिड़गिड़ाकर कहा—तुम मेरा कोइ उज्र न सुनोगी।

जालपा ने अभिमान से कहा—नही।

'तो मैं मुँह मे कालिख लगा कर कहीं निकल जाऊँ?'

'तुम्हारी खुशी!'

'तुम मुझे क्षमा न करोगी?'

'कभी नहीं, किसी तरह नहीं!'

रमा एक क्षण सिर झुकाये खड़ा रहा, तब धीरे-धीरे बरामदे के नीचे जा कर जग्गो से बोला—अम्मा दादा आयें तो कह देना, मुझसे जरा देर मिल लें। जहाँ कहे, आ जाऊँ।

जग्गो ने कुछ पिघलकर कहा—कल यहीं चले आना।

रमा ने मोटर पर बैठते हुए कहा—यहाँ अब न आऊँगा, अम्मा!

मोटर चली गयी, तो जालपा ने कुत्सित भाव से कहा—मोटर दिखाने आये थे, जैसे खरीद ही तो लाये हों।

जग्गो ने भर्त्सना की—तुम्हे इतना बे-लगाम न होना चाहिए था, बहू! दिल पर चोट लगती है, तो आदमी को कुछ नहीं सूझता।

जालपा ने निष्ठुरता से कहा—ऐसे हयादार नही हैं, अम्मा! इसी सुख के लिए तो आत्मा बेची। उनसे यह सुख भला क्या छोड़ा जायगा? पूछा नहीं, दादा से मिलकर क्या करोगे? वह होते तो ऐसी फटकार सुनाते कि छठी का दूध याद आ जाता!

जग्गो ने तिरस्कार के भाव से कहा—तुम्हारी जगह मैं होती बहू, तो मेरे मुँह से ऐसी बातें न निकलतीं। तुम्हारा हिया बड़ा कठोर है। दूसरा मर्द होता तो इस तरह चुपका-चुपका न सुनता? मैं तो थर-थर काँप रही थी, कि कही तुम्हारे ऊपर हाथ न चला दे। मगर है बड़ा गमखोर!

जालपा ने उसी निष्ठुरता से कहा—इसे गमखोरी नहीं कहते दादी, यह बेहयाई है।

देवीदीन ने आकर कहा—क्या यहाँ भैया आये थे? मुझे मोटर पर रास्ते में दिखायी दिये थे।

जग्गो ने कहा—हाँ आये थे, कह गये है, दादा मुझसे जारा मिल लें।

देवीदीन ने उदासीन होकर कहा—मिल लूँगा। यहाँ कोई बात-चीत हुई?

जग्गो ने पछताते हुए कहा—बातचीत क्या हुई; पहले मैंने पूजा की और मैं चुप हुई तो बहू ने अच्छी तरह फूल-माला चढ़ाई।

जालपा ने सिर नीचा करके कहा—आदमी जैसा करेगा, वैसा भरेगा।

जग्गो—अपना ही समझकर तो मिलने आये थे।

जालपा—कोई बुलाने तो न गया था। कुछ दिनेश का पता लगा दादा?

देवी०—हाँ, सब पूछ आया। हवडे मे घर है, पता-ठिकाना सब मालूम हो गया।

जालपा ने डरते-डरते कहा—इस वक्त चलोगे या कल किसी वक्त?

देवी०—तुम्हारी जैसी मरजी। जी चाहे इसी वक्त चलो, मैं तैयार हूँ।

जालपा—थक गये होगे?

देवी०—इन कामों मे थकान नहीं होती, बेटी!

आठ बज गये थे। सड़क पर मोटरों का ताँता बँधा हुआ था। सड़क की दोनों पटरियों पर हजारों स्त्री-पुरुष बने-ठने हँसते-बोलते चले जाते थे। जालपा ने सोचा, दुनिया कैसी अपने राग-रंग मे मस्त है। जिसे उसके लिए मरना हो मरे, वह अपनी टेक न छोडेगी। हर एक अपना छोटा-सा मिट्टी का घरौंदा बनाये बैठा है। देश बह जाय, उसे परवा नही। उसका घरौंदा बचा रहे। उसके स्वार्थ मे बाधा न पडे। उसका भोला-भाला हृदय बाजार को बन्द देखकर खुश होता। काश सभी आदमी शोक से सिर झुकाये, त्योरियाँ बदले, उन्मत्त-से नजर आते। सभी के चेहरे भीतर की जलन से लाल होते। वह न जानती थी, कि इस जन-सागर मे ऐसी छोटी-छोटी कङ्कड़ियो के गिरने से एक हल्कोरा भी नहीं उठता, आवाज तक नहीं आती।

(४३)

रमा मोटर पर चला तो उसे कुछ सूझता न था। कुछ समझ मे न आता था, कहाँ जा रहा है। जाने हुए रास्ते उसके लिए अनजान हो गये थे। उसे जालपा पर क्रोध न था, जरा भी नहीं। जग्गो पर भी उसे क्रोध न था। क्रोध था अपनी दुर्बलता पर, अपनी स्वार्थ-लोलुपता पर, अपनी कायरता पर। पुलिस के वातावरण मे उसका औचित्य-ज्ञान भ्रष्ट हो गया था। वह कितना बड़ा अन्याय कर रहा है, इसका उसे केवल उस दिन ख्याल आया था जब जालपा ने समझाया था। फिर वह शका मन मे उठी ही नहीं। अफसरों ने बड़ी-बड़ी आशाएँ बँधाकर उसे बहला रखा था। वह कहते, अजी, बीबी की कुछ फिक्र न करो। जिस वक्त तुम एक जडाऊ हार लेकर पहुँचोगे, और रुपयों की एक थैली नजर कर दोगे, बेगम साहब का सारा गुस्सा भाग जायगा। अपने सूबे मे किसी अच्छी-सी जगह पर पहुँच जाओगे, आराम से जिन्दगी कटेगी। कैसा गुस्सा! इसकी कितनी ही आँखों-देखी मिसालें दी गयीं। रमा चक्कर मे आ गया। फिर उसे जालपा से मिलने का अवसर ही न मिला। पुलिस का रंग जमता गया। आज वह जडाऊ हार जेब मे रखे जालपा को अपनी विजय की खुशखबरी देने गया था। वह जानता था कि यह हार देखकर वह जरूर खुश हो जायगी। कल ही संयुक्त प्रान्त के होम-सेक्रेटरी के नाम

कमिश्नर-पुलिस का पत्र उसे मिल जायगा। दो-चार दिन यहाँ खूब सैर करके घर की राह लेगा। देवीदीन और जग्गो को भी वह अपने साथ ले जाना चाहता था। उनका एहसान वह कैसे भूल सकता था। यही मन्सूबे मन मे बाँध कर वह जालपा के पास गया था, जैसे कोई भक्त फूल और नैवेद्य लेकर देवता की उपासना करने जाय; पर देवता ने वर-दान देने के बदले उसके थाल को ठुकरा दिया, उसके नैवेद्य को पैरों से कुचल डाला। उसे कुछ कहने का अवसर ही न मिला। आज पुलिस के विषैले वातावरण से निकलकर उसने स्वच्छ वायु पायी थी और उसकी सुबुद्धि सचेत हो गयी थी। अब उसे अपनी पशुता अपने यथार्थ रूप मे दिखायी दी—कितनी विकराल, कितनी दानवी मूर्ति थी। वह स्वयं उसकी ओर ताकने का साहस न कर सकता था। उसने सोचा, इसी वक्त जज के पास चलूँ और सारी कथा कह सुनाऊँ। पुलिस मेरी दुश्मन हो जाय, मुझे जेल मे सड़ा डाले, कोई परवा नहीं। सारी कलई खोल दूँगा। क्या जज अपना फैसला नहीं बदल सकता? अभी मुलजिम हवा-लात मे हैं। पुलिसवाले खूब दाँत पीसेंगे, खूब नाचे कूदेंगे, शायद मुझे कच्चा ही खा जायँ। खा जायँ! इसी दुर्बलता ने तो मेरे मुख मे कालिख लगा दी।

जालपा की क्रोधोन्मत्त मूर्ति उसकी आँखों के सामने फिर गयी। ओह! कितने गुस्से मे थी! मैं जानता कि वह इतना बिगड़ेगी, तो चाहे दुनिया इधर-से-उधर हो जाती अपना बयान बदल देता। बड़ा चकमा दिया इन पुलिसवालों ने। अगर कहीं जज ने कुछ नहीं सुना और मुल-जिमों को बरी न किया, तो जालपा मेरा मुँह न देखेगी। मैं उसके पास कौन मुँह लेकर जाऊँगा। जिन्दा रहकर ही क्या करूँगा? किसके लिए?

उसने मोटर रोकी और इधर-उधर देखने लगा। कुछ समझ मे न आया, कहाँ आ गया। सहसा एक चौकीदार नजर आया। उसने जज साहब के बँगले का पता पूछा। चौकीदार हँसकर बोला—हजूर तो बहुत दूर निकल आये। यहाँ से तो छः-सात मील से कम न होगा, वह उधर चौरंगी की ओर रहते हैं।

रमा चौरंगी का रास्ता पूछकर फिर चला। नौ बज गये थे। उसने

सोचा, जज साहब से मुलाकात न हुई तो सारा खेल बिगड़ जायगा। बिना मिले हटूँगा ही नहीं। अगर उन्होंने सुन लिया तो ठीक ही है, नहीं कल हाईकोर्ट के जजों से कहूँगा। कोई तो सुनेगा? सारा वृत्तान्त समाचार-पत्रों में छपवा दूँगा, तब तो सबकी आँखें खुलेंगी?

मोटर तीस मील की चाल से चल रही थी। दस मिनट ही में चौरंगी आ पहुँची। यहाँ अभी तक वही चहल-पहल थी; मगर रमा उसी सन्नाटे से मोटर लिए जाता था। सहसा एक पुलिस मैन ने लालबत्ती दिखायी। वह रुक गया और सिर बाहर निकालकर देखा तो वही दरोगाजी!

दारोगाने पूछा—क्या अभी तक बँगले पर नहीं गये? इतनी तेज मोटर न चलाया कीजिए। कोई वारदात हो जायगी। कहिए बेगम साहब से मुलाकात हुई! मैंने तो समझा था, वह भी आपके साथ होगी। खुश तो खूब हुई होंगी?

रमा को ऐसा क्रोध आया कि इसकी मूँछें उखाड़ ले, पर बात बनाकर बोला—जी हाँ, बहुत खुश हुईं! बेहद!

'मैंने कहा था न? औरतों की नाराजी की यही दवा है। आप काँपे जाते थे?'

'मेरी हिमाकत थी।'

'चलिए, मैं भी आपके साथ चलता हूँ। एक बाजी ताश उडे और जरा सरूर जमे। डिप्टी साहब और इसपेक्टर साहब आयेंगे। जोहरा को बुलवा लेंगे। दो घड़ी की बहार होगी। अब आप मिसेज रमानाथ को बँगले पर ही क्यों नहीं बुला लेते। वहाँ उस खटिक के घर पड़ी हुई हैं।'

रमा ने कहा—अभी तो मुझे एक जरूरत से दूसरी तरफ जाना है। आप मोटर ले जायं। मैं पॉव-पाँव चला जाऊँगा।

दारोगा ने मोटर के अन्दर जाकर कहा—नहीं साहब, मुझे कोई जल्दी नहीं है। आप जहाँ चलना चाहें, चलिए। मैं जरा भी मुखिल न हूँगा।

रमा ने कुछ चिढ़कर कहा—लेकिन मैं अभी बँगले पर नहीं जा रहा हूँ।

दारोगा ने मुसकराकर कहा—मैं समझ रहा हूँ; लेकिन जरा भी मुखिल न हूँगा। हाँ बेगम साहब..

रमा ने बात काटकर कहा—जी नहीं, वहाँ मुझे नहीं जाना है।

दारोगा—तो क्या कोई दूसरा शिकार है? बँगले पर भी आज कुछ कम बहार न रहेगी। वहीं आपके दिल-बहलाव का कुछ सामान हाजिर हो जायगा।

रमा ने एकबारगी आँखें लाल कर कहा—क्या आप मुझे शोहदा समझते है? मैं इतना जलील नहीं हूँ।

दारोगा ने कुछ लज्जित होकर कहा—अच्छा साहब, गुनाह हुआ, माफ कीजिए। अब कभी ऐसी गुस्ताखी न होगी; लेकिन अभी आप अपने को खतरे से बाहर न समझें। मैं आपको किसी ऐसी जगह न जाने दूँगा जहाँ मुझे पूरा इतमीनान न होगा। खबर नहीं, आपके कितने दुश्मन है। मैं आप ही के फायदे के खयाल से कह रहा हूँ।

रमा ने होंठ चबाकर कहा—बेहतर हो, कि आप मेरे फायदे का खयाल न करें। आप लोगों ने मुझे मटियामेट कर दिया, और अब भी मेरा गला नहीं छोड़ते। मुझे अब अपने हाल पर मरने दीजिए। मैं इस गुलामी से तंग आ गया हूँ। मैं माँ के पीछे-पीछे चलनेवाला बच्चा नहीं बनना चाहता। आप अपनी मोटर चाहते हैं; शौक से ले जाइये। मोटर की सवारी और बँगले मे रहने के लिए पन्द्रह आदमियों को कुर्बान करना पड़ा है। कोई जगह पा जाऊँ, तो शायद पन्द्रह सौ आदमियो को कुर्बान करना पड़े। मेरी छाती इतनी मजबूत नहीं है। आप अपनी मोटर ले जाइए।

यह कहता हुआ वह मोटर से उतर पड़ा और जल्दी से आगे बढ़ गया। दारोगा ने कई बार पुकारा, जरा सुनिए, बात तो सुनिए, लेकिन उसने पीछे फिरकर देखा तक नहीं। जरा और आगे चलकर वह एक मोड़ से घूम गया। इसी सड़क पर जज का बँगला था। सड़क पर कोई आदमी न मिला। रमा कभी इस पटरी पर, और कभी उस पटरी पर जा-जाकर बँगलों के नम्बर पढ़ता चला जाता था। सहसा एक नम्बर देखकर वह रुक गया। एक मिनट तक खड़ा देखता रहा कि कोई आदमी निकले, उससे पूछूं, साहब है या नहीं। अन्दर जाने की उसकी हिम्मत न पड़ती थी। खयाल आया, जज ने पूछा, तुमने क्यों झूठी

गवाही दी, तो क्या जवाब दूंगा ! यह कहना, कि पुलिस ने मुझसे जबर-दस्ती गवाही दिलवायी, प्रलोभन दिया, मारने की धमकी दी, लज्जा-स्पद बात है ! अगर वह पूछे कि तुमने केवल दो-तीन साल की सजा से बचने के लिए इतना बडा कलक सिर पर ले लिया, इतने आदमियों की जान लेने पर उतारू हो गये, उस वक्त तुम्हारी बुद्धि कहाँ गयी थी, तो उसका मेरे पास क्या जवाब है ? ख्वाहमख्वाह लज्जित होना पडेगा। बेवकूफ बनाया जाऊँगा। वह लौट पड़ा। इस लज्जा का सामना करने की उसमे सामर्थ्य न थी। लज्जा ने सदैव वीरों को परास्त किया है। जो काल से भी नहीं डरते, वे भी लज्जा के सामने खडे होने की हिम्मत नहीं करते। आग मे कूद जाना, तलवार के सामने खड़ा हो जाना, इसकी अपेक्षा कही सहज है। लाज की रक्षा ही के लिए बडे-बडे राज्य मिट गये है, रक्त की नदियाँ बह गयी है, प्राणो की होली खेल डाली गयी है। उसी लाज ने आज रमा के पग भी पीछे हटा दिये। शायद जेल की सजा से वह इतना भयभीत न होता।

(४४)

रमा आधी राती गए सोया, तो नौ बजे दिन तक नींद न खुली। वह स्वप्न देख रहा था—दिनेश को फाँसी हो रही है। सहसा एक स्त्री तलवार लिये हुए फाँसी की ओर दौड़ी और फाँसी की रस्सी काट दी। चारों ओर हलचल मच गयी। वह औरत जालपा थी। कोई उसके सामने जाने का साहस न कर सकता था। तब उसने एक छलाँग मार-कर रमा के ऊपर तलवार चलायी। रमा घबड़ाकर उठ बैठा। देखा तो दारोगा और इन्स्पेक्टर कमरे मे खडे हैं, और डिप्टी साहब आराम-कुर्सी पर लेटे हुए सिगार पी रहे है।

दारोगा ने कहा—आज तो आप खूब सोए बाबू साहब ! कब लौटे थे ?

रमा ने एक कुर्सी पर बैठकर कहा—जरा देर बाद लौट आया था। इस मुकदमे की अपील तो हाईकोर्ट मे होगी न ?

इन्सपेक्टर—अपील क्या होगी, जाब्ते की पाबन्दी होगी। आपने मुकदमे को इतना मजबूत कर दिया है, कि वह अब किसी के हिलाये हिल नहीं सकता। हलफ से कहता हूँ, आपने कमाल कर दिया। अब

उधर से वेफिक्र हो जाइए। हाँ, अभी जब तक फैसला न हो जाय, यह मुनासिब होगा कि आपकी हिफाजत का खयाल रक्खा जाय। इसलिए फिर पहले का इन्तजाम कर दिया गया है। इधर हाईकोर्ट से फैसला हुआ, उधर आपको जगह मिली।

डिप्टी ने सिगार का धुआँ फेंककर कहा—यह डी० ओ० कमिश्नर साहब ने आपको दिया है, जिसमे आपको किसी तरह का शक न हो। देखिए, यू० पी० के होम सेक्रेटरी के नाम है। आप वहाँ ज्योंही यह डी० ओ० दिखावेंगे वह आपको कोई बहुत अच्छी जगह दे देगा।

इन्स्पेक्टर—कमिश्नर साहब आपसे बहुत खुश है, हलफ से कहता हूँ।

डिप्टी—बहुत खुश हैं। वह यू० पी० को अलग डायरेक्ट चिट्ठी भी लिखेगा। तुम्हारा भाग्य खुल गया।

यह कहते हुए उसने डी० ओ० रमा की तरफ बढ़ा दिया। रमा ने लिफाफा खोलकर देखा और एकाएक उसको फाड़कर पुरजे-पुरजे कर डाला। तीनों आदमी विस्मय से उसका मुँह ताकने लगे।

दारोगा ने कहा—रात बहुत पी गये थे क्या ? आपके हक में अच्छा न होगा।

इन्स्पेक्टर—हलफ से कहता हूँ, कमिश्नर साहब को मालूम हो जायगा तो बहुत नाराज होंगे।

डिप्टी—इसका कुछ मतलब हमारे समझ मे नहीं आया। इसका क्या मतलब है ?

रमा०—इसका यह मतलब है कि मुझे इस डी० ओ० की जरूरत नहीं और न मैं नौकरी चाहता हूँ, मैं आज ही यहाँ से चला जाऊँगा।

डिप्टी—जब तक हाईकोर्ट का फैसला न हो जाय, तब तक आप कहीं नहीं जा सकते।

रमा०—क्यों ?

डिप्टी—कमिश्नर साहब का यह हुक्म है ?

रमा०—मैं किसी का गुलाम नहीं हूँ।

इन्स्पेक्टर—बाबू रमानाथ, आप क्यों बना-बनाया खेल बिगाड़ रहे हैं ? जो कुछ होना था वह हो गया। दस-पाँच दिन मे हाईकोर्ट से फैसले

की तसदीक हो जायगी। आपकी बेहतरी इसी मे है कि जो सिला मिल रहा है, उसे खुशी से लीजिए और आराम से जिन्दगी के दिन बसर कीजिए। खुदा ने चाहा तो एक दिन आप भी किसी ऊँचे ओहदे पर पहुँच जायेंगे। इससे क्या फायदा, कि अफसरो को नाराज कीजिए और कैद की मुसीबत झेलिए। हलफ से कहता हूँ, कि जरा-सी निगाह बदल जाय तो आपका कही पता न लगे। हलफ से कहता हूँ, एक इशारे मे आपको दस साल की सजा हो जाय। आप है किस खयाल मे। हम आपके साथ शरारत नही करना चाहते। हाँ, अगर आप हमे सख्ती करने पर मजबूर करेंगे, तो हमे सख्ती करनी पडेगी। जेल को आसान न समझियेगा। खुदा दोजख मे ले जाये, पर जेल की सजा न दे। मार-धाड़, गाली-गुफ्ता, यह तो वहाँ की मामूली सजा है। चक्की मे जोत दिया तो मौत आ गयी। हलफ से कहता हूँ, दोजख से बदतर है जेल।

दारोगा—यह बेचारे अपनी बेगम साहब से मजबूर है। वह शायद इनके जान की गाहक हो रही है। उनसे इनकी कोर दबती है।

इन्स्पेक्टर—क्या हुआ, कल तो वह हार दिया था न? फिर भी राजी नहीं हुई।

रमा ने कोट की जेब से हार निकालकर मेज पर रख दिया और बोला—वह हार यह रखा हुआ है।

इन्स्पेक्टर—अच्छा, इसे उन्होंने नहीं कबूल किया।

डिप्टी—कोई 'प्राउड लेडी' है।

इन्स्पेक्टर—कुछ उनकी भी मिजाज पुरसी करने की जरूरत होगी।

दारोगा—यह तो बाबू साहब के रग-ढंग और सलीके पर मुनहसर है। अगर आप ख्वाहमख्वाह हमे मजबूर न करेंगे, तो हम आपके पीछे न पडेंगे।

डिप्टी—उस खटिक से भी मुचलका लेना चाहिए।

रमानाथ के सामने एक समस्या आ खड़ी हुई, पहले से कहीं जटिल, कहीं भीषण। संभव था, वह अपने को कर्त्तव्य की वेदी पर बलिदान कर देता, दो-चार साल की सजा के लिए अपने को तैयार कर लेता। शायद इस समय उसने अपने आत्म-समर्पण का निश्चय कर लिया था;

पर अपने साथ जालपा को भी संकट में डालने का साहस वह किसी तरह न कर सकता था। वह पुलिस के पंजे में कुछ इस तरह दब गया था कि अब उसे बेदाग निकल जाने का कोई मार्ग न दिखाई देता था। उसने देखा कि इस लडाई में मैं पेश नहीं पा सकता। उसके मिजाज की तेजी गायब हो गयी। विवश होकर बोला—आखिर आप लोग मुझसे क्या चाहते है!

इंस्पेक्टर ने दारोगा की ओर देखकर आँख मारी: मानो कह रहे हों, आ गया पंजे में! और बोले—बस इतना ही कि आप हमारे मेह-मान बने रहे, और मुकदमे के हाईकोर्ट से तय हो जाने के बाद यहाँ से रुखसत हो जायँ क्योंकि उसके बाद हम आपकी हिफाजत के जिम्मेदार न होंगे। अगर कोई सार्टिफिकेट लेना चाहेंगे तो वह दे दी जायगी; लेकिन उसे लेने या न लेने का आपको पूरा अख्तियार है। अगर आप होशियार है तो उसे लेकर फायदा उठायेंगे, नहीं इधर-उधर के धक्के खायेंगे। आपके ऊपर गुनाह बे-लज्जत की मसल सादिक आयेगी। इसके सिवा हम आपसे और कुछ नहीं चाहते। हलफ से कहता हूँ, हर-एक चीज जिसकी आपको ख्वाहिश हो, यहाँ हाजिर कर दी जायगी; लेकिन जब तक मुकदमा खत्म न हो जाय, आप आजाद नहीं हो सकते।

रमानाथ ने दीनता से पूछा—सैर करने तो जा सकूँगा, या यह भी नहीं?

इंस्पेक्टर ने सूत्ररूप से कहा—जी नहीं!

दारोगा ने उस सूत्र की व्याख्या की—आपको वह आजादी दी गयी थी; पर आपने उसका बेजा इस्तेमाल किया। जब तक इसका इत्मीनान न हो जाय कि आप उसका जायज इस्तेमाल कर सकते हैं या नहीं, आप उस हक से महरूम रहेंगे।

दारोगा ने इंस्पेक्टर की तरफ देखकर मानो इस व्याख्या की दाद चाही, जो उन्हे सहर्ष मिल गयी।

तीनों अफसर रुखसत हो गये और रमा एक सिगार जलाकर इस विकट परिस्थिति पर विचार करने लगा।

एक महीना और निकल गया। मुकदमे के हाईकोर्ट मे पेश होने की तिथि नियत हो गयी है। रमा के स्वभाव मे फिर वही पहले की-सी भीरुता और खुशामद आ गयी है, अफसरो के इशारे पर नाचता है। शराब की मात्रा पहले से बढ़ गयी है, विलासिता ने मानो पजे से दबा लिया है। कभी-कभी उसके कमरे मे एक वेश्या जोहरा भी आती है, जिसका गाना वह बड़े शौक से सुनता है।

एक दिन उसने बडी हसरत के साथ जोहरा से कहा—मैं डरता हूँ, कही तुमसे प्रेम न बढ़ जाय। उसका नतीजा इसके सिवा और क्या होगा कि रो-रोकर जिन्दगी काटूँ। तुमसे वफा की उम्मीद क्या हो सकती है!

जोहरा दिल मे खुश होकर, बड़ी-बडी रतनारी आँखों से उसकी ओर ताकती हुई बोली—हाँ साहब, हम वफा क्या जाने, अखिर वेश्या हो तो ठहरी! बेवफा भी कही वफादार हो सकती है?

रमा ने आपत्ति करके पूछा—क्या इसमे कोई शक है?

जोहरा—नहीं, जरा भी नहीं! आप लोग हमारे पास मुहब्बत से लबालब भरे दिल लेकर आते है, पर हम उसकी जरा भी कद्र नहीं करती। यही बात है न?

रमा०—बेशक।

जोहरा—मुआफ कीजिएगा, आप मर्दों की तरफदारी कर रहे है। हक यह है कि वहाँ आप लोग दिल-बहलाव के लिए जाते है, महज गम गलत करने के लिए, महज आनन्द उठाने के लिए। जब आपको वफा की तलाश ही नही होती, वह मिले क्योंकर? लेकिन इतना मैं जानती हूँ, कि हममे जितनी बेचारियाँ मरदों की बेवफाई से निराश होकर अपना आराम चैन खो बैठी हैं, उनका पता अगर दुनिया को चले, तो आँखें खुल जायँ। यह हमारी भूल है कि तमाशबीनो से वफा चाहते हैं, चील के घोंसले मे मास ढूँढते है! पर प्यासा आदमी अन्धे कुएँ की तरफ दौडे, तो मेरे खयाल मे उसका कोई कसूर नहीं।

उस दिन रात को चलते वक्त जोहरा ने दारोगा को खुशखबरी दी,

आज तो हजरत खूब मजे में आये। खुदा ने चाहा तो दो-चार दिन के बाद बीबी का नाम भी न लें।

दारोगा ने खुश होकर कहा—इसीलिए तो तुम्हें बुलाता था। मजा तो जब है कि बीबी यहाँ से चली जाय। फिर हमें कोई गम न रहेगा। मालूम होता है, स्वराज्यवालों ने उस औरत को मिला लिया है। यह सब एक ही शैतान हैं।

जोहरा की आमदोरफ्त बढ़ने लगी; यहाँ तक कि रमा खुद अपने चकमे में आ गया। उसने जोहरा से प्रेम जताकर अफसरों की नजर में अपनी साख जमानी चाही थी; पर जैसे बच्चे खेल में रो पड़ते हैं, वैसे ही उसका प्रेमाभिनय भी प्रेमोन्माद बन बैठा। जोहरा उसे अब वफा और मुहब्बत की देवी-सी मालूम होती थी। वह जालपा की-सी सुन्दरी न सही, पर बातों में उससे कहीं चतुर, हाव-भाव में कहीं कुशल, सम्मोहन कला में कहीं पटु थी। रमा के हृदय में नये-नये मनसूबे पैदा होने लगे।

एक दिन उसने जोहरा से कहा—जोहरा, जुदाई का समय आ गया है। दो-चार दिन में मुझे यहाँ से चला जाना पड़ेगा। फिर तुम्हे क्यों मेरी याद आने लगी?

जोहरा ने कहा—मैं तुम्हे न जाने दूँगी। यहीं कोई अच्छी सी नौकरी कर लेना। फिर हम तुम आराम से रहेंगे।

रमा ने अनुरक्त होकर कहा—दिल से कहती हो जोहरा? देखो तुम्हें मेरे सर की कसम, दगा मत देना।

जोहरा—अगर यह खौफ हो, तो निकाह पढ़ा लो। निकाह के नाम से चिढ़ हो तो ब्याह करा लो। पण्डितों को बुलाओ। अब इसके सिवा मैं अपनी मुहब्बत का और क्या सबूत दूँ।

रमा निष्कपट प्रेम का यह परिचय पाकर विह्वल हो उठा। जोहरा के मुँह से निकलकर इन शब्दों की सम्मोहक-शक्ति कितनी बढ़ गई थी। यह कामिनी, जिसपर बडे-बडे रईस फिदा है, मेरे लिए इतना बड़ा त्याग करने को तैयार है! जिस खान में औरों को बालू ही मिलता है, उसमें जिसे सोने के डले मिल जायँ, क्या वह परम भाग्यशाली नहीं है? रमा के मन में कई दिनों तक संग्राम होता रहा। जालपा के साथ उसका

जीवन कितना नीरस, कितना कठिन हो जायगा। वह पग-पग पर अपना धर्म और सत्य लेकर खडी हो जायगी और उसका जीवन एक दीर्घ तपस्या, एक स्थायी साधना बनकर रह जायगा। सात्विक जीवन कभी उसका आदर्श नही रहा। साधारण मनुष्यो की भाँति वह भी भोग विलास करना चहता था। जालपा की ओर से हटकर उसका विलासासक्त मन प्रबल वेग से जोहरा की ओर खिंचा। उसको व्रत-धारिणी वेश्याओं के उदाहरण याद आने लगे। उसके साथ ही चचलवृत्ति की गृहिणियों की मिसाले भी आ पहुँची। उसने निश्चय किया, यह सब ढकोसला है, न कोई जन्म से निर्दोष है, न कोई दोषी। यह सब परिस्थिति पर निर्भर है।

जोहरा रोज आती और बन्धन मे एक गाँठ और देखकर चली जाती। ऐसी स्थिति मे संयमी युवक का आसन भी डोल जाता, रमा तो विलासी था। अब तक वह केवल इसलिए इधर-उधर न फटक सका था, कि ज्योंही उसके पंख निकले, जालिये ने उसे अपने पिंजरे मे बन्द कर दिया। कुछ दिन पिंजरे से बाहर रहकर भी उसे उडने का साहस न हुआ; अब उसके सामने एक नवीन दृश्य था। वह छोटा-सा कुलियोवाला पिंजरा नहीं, बल्कि एक फूलों से लहराता हुआ बाग, जहाँ की कैद मे स्वाधीनता का आनन्द था। वह इस बाग मे क्यों न क्रीड़ा का आनन्द उठाये!

(४६)

रमा ज्यों-ज्यो जोहरा के प्रेम-पाश मे फँसता जाता था, पुलिस के अधिकारी वर्ग उसकी ओर से निश्शक होते जाते थे। उसके ऊपर जो कैद लगायी गई थी, वह धीरे-धीरे ढीली होने लगी, यहाँ तक कि एक दिन डिप्टी साहब शाम को सैर करने चले तो रमा को भी मोटर मे बिठा लिया। जब मोटर देवीदीन की दूकान के सामने से होकर निकली, तो रमा ने अपना सिर इस तरह भीतर खींच लिया कि किसी की नजर न पड़ जाय। उसके मन मे बड़ी उत्सुकता हुई कि जालपा है या चली गयी; लेकिन वह अपना सिर बाहर न निकाल सका। मन मे वह अब भी यही समझता था, कि मैंने जो रास्ता पकड़ा है, यह कोई बहुत अच्छा रास्ता नहीं है, लेकिन यह जानते हुए भी वह उसे छोड़ना न चाहता

था। देवीदीन को देखकर उसका मस्तक आप-ही-आप लज्जा से झुक जाता, वह किसी दलील से अपना पक्ष सिद्ध न कर सकता।

उसने सोचा, मेरे लिए सबसे उत्तम मार्ग यही है कि इनसे मिलना-जुलना छोड़ दूँ। उस शहर में तीन प्राणियों को छोड़कर किसी चौथे आदमी से उसका परिचय न था, जिसकी आलोचना या तिरस्कार का उसे भय होता।

मोटर इधर-उधर घूमती हुई हवड़ा ब्रिज की तरफ चली जा रही थी, कि सहसा रमा ने एक स्त्री को सिर पर गंगा-जल का कलसा रखे घाटों के ऊपर आते देखा। उसके कपड़े बहुत मैले हो रहे थे और कृशांगी ऐसी थी कि कलसे के बोझ से उसकी गरदन दबी जाती थी। उसकी चाल कुछ-कुछ जालपा से मिलती हुई जान पड़ी। सोचा, जालपा यहाँ क्या करने आवेगी? मगर एक ही पल में कार और आगे बढ़ गयी और रमा को उस स्त्री का मुँह दिखायी दिया। उसकी छाती धक् से हो गयी। यह जालपा ही थी। उसने खिड़की की बगल में सिर छिपा कर गौर से देखा। बेशक जालपा ही थी, पर कितनी दुर्बल! मानो कोई वृद्धा, अनाथा हो। न वह कान्ति थी, न वह लावण्य, न वह चंचलता, न वह गर्व। रमा हृदय-हीन न था, उसकी आँखें सजल हो गयीं। जालपा इस दशा में और मेरे जीते जी! अवश्य देवीदीन ने उसे निकाल दिया होगा और वह टहलनी बनकर अपना निर्वाह कर रही होगी। नहीं देवीदीन इतना बेमुरौवत नहीं है। जालपा ने खुद उसके आश्रय में रहना स्वीकार न किया होगा? मानती तो है ही नहीं। कैसे मालूम हो क्या बात है?

मोटर दूर निकल आयी थी। रमा की सारी चंचलता, सारी भोग-लिप्सा गायब हो गयी थी। मलिन-वसना, दुःखिनी जालपा की वह मूर्त्ति आँखों के सामने खड़ी थी। किससे कहे? क्या कहे; यहाँ कौन अपना है। जालपा का नाम भी जबान पर आ जाय, तो सबके सब चौंक पड़ें और फिर घर निकलना बन्द कर दें। ओह! जालपा के मुख पर शोक की कितनी गहरी छाया थी, आँखों में कितनी निराशा! आह, उन सिमटी हुई आँखों में जले हुए हृदय से निकलने वाली कितनी आहें

सरि पीटती हुई मालूम होती थी मानो उन पर हँसी अभी आयी ही नहीं, मानो वह कली बिना खिले ही मुरझा गयी।

कुछ देर के बाद जोहरा आयी, इठलाती, मुस्कराती, लचकाती, पर रमा आज उससे भी फटा-फटा रहा।

जोहरा ने पूछा—आज किसी की याद आ रही है क्या?

यह कहते हुए उसने अपनी गोल, नर्म, मक्खन-सी बाँह उसकी गरदन में डालकर उसे अपनी ओर खींचा। रमा ने अपनी तरफ जरा भी जोर न किया। उसके हृदय पर अपना मस्तक रख दिया, मानो अब यही उसका आश्रय है।

जोहरा ने कोमलता में डूबे हुए स्वर में पूछा—सच बताओ, आज इतने उदास क्यों हो? मुझसे किसी बात पर नाराज हो।

रमा ने आवेश से काँपते हुए स्वर में कहा—नहीं, जोहरा, तुमने मुझ अभागे पर जितनी दया की है, उसके लिए मैं हमेशा तुम्हारा एहसानमन्द रहूँगा। तुमने उस वक्त मुझे सँभाला, जब मेरे जीवन की टूटी हुई किश्ती गोते खा रही थी। ये दिन मेरी जिन्दगी के सबसे मुबारक दिन है और उनकी स्मृति को मैं अपने दिल में बराबर पूजता रहूँगा। मगर अभागों को मुसीबत बार-बार अपनी तरफ खींचती है। प्रेम का बन्धन भी उन्हें उस तरफ खिंच जाने से नहीं रोक सकता। मैंने आज जालपा को जिस सूरत में देखा है, मेरे दिल को भालों की तरह छेद रही है। वह आज फटे-मैले कपड़े पहने, सिर पर गंगा-जल का कलसा लिये चली जा रही थी। उसे इस हालत में देखकर मेरा दिल टुकड़े-टुकड़े हो गया। मुझे अपनी जिन्दगी में कभी इतना रंज न हुआ था। जोहरा, कुछ नहीं कह सकता उस पर क्या बीत रही है।

जोहरा ने पूछा—वह तो उस बुड्ढे मालदार खटिक के घर पर थीं।

रमा०—हाँ थी तो, पर नहीं कह सकता, क्यों वहाँ से चली गयी। इंस्पेक्टर साहब मेरे साथ थे। उनके सामने मैं उससे कुछ पूछ तक न सका। मैं जानता हूँ, वह मुझे देखकर मुँह फेर लेती और शायद मुझे जलील समझती मगर कम-से-कम मुझे इतना तो मालूम हो जाता कि वह इस वक्त इस दशा में क्यों है? जोहरा, तुम मुझे चाहे दिल में जो

कुछ समझ रही हो, लेकिन मैं इस खयाल मे मगन हूँ कि तुम्हें मुझसे प्रेम है। और प्रेम करने वालो से हम, कम-से-कम हमदर्दी की आशा रखते हैं? यहाँ एक भी ऐसा आदमी नहीं, जिससे मैं अपने दिल का कुछ हाल कह सकूँ। तुम भी मुझे रास्ते पर लाने के लिए भेजी गयी थीं, मगर तुम्हे मुझ पर दया आयी। शायद तुमने गिरे हुए आदमी पर ठोकर मारना मुनासिब न समझा। अगर आज हम और तुम किसी वजह से रूठ जायँ, तो क्या कल तुम मुझे मुसीबत मे देखकर मेरे साथ जरा भी हमदर्दी न करोगी? क्या मुझे भूखों मरते देख मेरे साथ उससे कुछ भी ज्यादा सलूक न करोगी, जो आदमी कुत्ते का साथ करता है? मुझे तो ऐसी आशा नहीं। जहाँ एक बार प्रेम ने वास किया हो वहाँ उदासीनता और विराग चाहे पैदा हो जाय, हिंसा का भाव नहीं पैदा हो सकता। तुम मेरे साथ जरा भी हमदर्दी न करोगी जोहरा? तुम अगर चाहो तो जालपा का पूरा पता लगा सकती हो, वह कहाँ है, क्या करती है, मेरी तरफ से उसके दिल मे क्या खयाल है, घर क्यों नहीं जाती, कब तक रहना चाहती है? अगर तुम किसी तरह जालपा को प्रयाग जाने पर राजी कर सको जोहरा, तो मैं उम्रभर तुम्हारी गुलामी करूँगा। इस हालत मे मैं उसे नहीं देख सकता। शायद आज ही रात को मैं यहाँ से भाग जाऊँ। मुझपर क्या गुजरेगी, इसका मुझे जरा भी भय नहीं। मैं बहादुर नहीं हूँ, बहुत ही कमजोर आदमी हूँ। हमेशा खतरे के सामने मेरा हौसला पस्त हो जाता है; लेकिन मेरी बेगैरती भी यह चोट नहीं सह सकती।

जोहरा वेश्या थी, उसको अच्छे-बुरे सभी तरह के आदमियों से साबिका पड़ चुका था। उसकी आँखों मे आदमियों की परख थी। उसकी इस परदेशी युवक मे और अन्य व्यक्तियों में एक बड़ा फर्क दिखायी देता था। पहले वह यहाँ भी पैसे की गुलाम बनकर आयी थी; लेकिन दो-चार दिन के बाद ही उसका मन रमा की ओर आकर्षित होने लगा। प्रौढ़ा स्त्रियाँ अनुराग की अवहेलना नहीं कर सकतीं। रमा में और सब दोष हों, पर अनुराग था। इस जीवन मे जोहरा को यह पहला आदमी ऐसा मिला था, जिसने उसके सामने अपना हृदय खोलकर रख दिया,

जिसने उससे कोई परदा न रखा। ऐसे अनुराग-रत्न को वह खोना न चाहती थी, उसकी बातें सुनकर उसे जरा भी ईर्ष्या न हुई; बल्कि उसके मन में एक स्वार्थमय सहानुभूति उत्पन्न हुई। इसी युवक को, जो प्रेम के विषय में इतना सरल था वह प्रसन्न करके हमेशा के लिए अपना गुलाम बना सकती थी। उसे जालपा से कोई शंका न थी। जालपा कितनी ही रूपवती क्यों न हो, जोहरा अपने कला-कौशल से, अपने हाव-भाव से उसका रंग फीका कर सकती थी। इसके पहले उसने कई महान् सुन्दरी खत्रानियों को रुलाकर छोड़ दिया था। फिर जालपा किस गिनती में थी?

जोहरा ने उसका हौसला बढ़ाते हुए कहा—तो इसके लिए तुम क्यों इतना रंज करते हो प्यारे! जोहरा तुम्हारे लिए सब-कुछ करने को तैयार है। मैं कल ही जालपा का पता लगाऊँगी और वह यहाँ रहना चाहेगी तो उसके आराम के सब सामान कर दूँगी, जाना चाहेगी तो रेल पर भेज दूगी।

रमा ने बड़ी दीनता से कहा—एक बार मैं उससे मिल लेता तो मेरे दिल का बोझ उतर जाता।

जोहरा चिन्तित होकर बोली—यह तो मुश्किल है, प्यारे! तुम्हें यहाँ से कौन जाने देगा?

रमा०—कोई तदबीर बताओ।

जोहरा—मैं उसे पार्क में खड़ी कर आऊँगी। तुम डिप्टी साहब के साथ वहाँ जाना और किसी बहाने से उससे मिल लेना। इसके सिवा तो मुझे और कुछ नहीं सूझता।

रमा अभी कुछ कहना ही चाहता था, कि दारोगाजी ने पुकारा—मुझे खिलवत में आने की इजाजत है?

दोनों सँभल बैठे और द्वार खोल दिया। दारोगाजी मुसकराते हुए आये और जोहरा की बगल में बैठकर बोले—यहाँ आज सन्नाटा कैसा! क्या आज खजाना खाली है? जोहरा, आज अपने दस्ते हिनाई से एक जाम भर कर दो। रमानाथ, भाई नाराज न होना।

रमा ने कुछ तुर्श होकर कहा—इस वक्त तो रहने दीजिए, दारोगा

जी। आप तो पिए हुए नजर आते हैं?

दारोगाजी ने जोहरा का हाथ पकड़कर कहा—बस, एक जाम जोहरा। और एक बात और, आज मेरी मेहमानी कबूल करो।

रमा ने तेवर बदल कर कहा—दारोगाजी, आप इस वक्त यहाँ से जायँ। मैं यह गवारा नहीं कर सकता।

दारोगा ने नशीली आँखों से देखकर कहा—क्या आपने पट्टा लिखा लिया है।

रमा ने कड़ककर कहा—जी हाँ, मैंने पट्टा लिखा लिया है।

दारोगा—तो आपका पट्टा खारिज!

रमा—मैं कहता हूँ, यहाँ से चले जाइए।

दारोगा—अच्छा! अब तो मेढ़की को भी जुकाम पैदा हुआ। क्यों न हो। चलो जोहरा, इन्हे यहाँ बकने दो।

यह कहते हुए उन्होंने जोहरा का हाथ पकडकर उठाया।

रमा ने उनके हाथ को झटका देकर कहा—मैं कह चुका, आप यहाँ से चले जायँ। जोहरा इस वक्त नहीं जा सकती। अगर वह गयी तो मैं उसका और आपका—दोनो का खून पी जाऊँगा। जोहरा मेरी है, और जब तक मैं हूँ, कोई उसकी तरफ आँखे नहीं उठा सकता—

यह कहते हुए उसने दारोगा साहब का हाथ पकड़कर दरवाजे के बाहर निकाल दिया और दरवाजा जोर से बन्द करके सिटकनी लगा दी। दारोगा जी बलिष्ठ आदमी थे; लेकिन इस वक्त नशे ने उन्हें दुर्बल कर दिया था। बाहर बरामदे मे खडे होकर वह गालियाँ बकने और द्वार पर ठोकर मारने लगे।

रमा ने कहा—कहो जाकर बचा को बरामदे से नीचे ढकेल दूँ! शैतान का बच्चा!

जोहरा—बकने दो, आप ही चला जायगा।

रमा०—चला गया!

जोहरा ने मगन होकर कहा—तुमने बहुत अच्छा किया, सूअर को निकाल बाहर किया। मुझे लेजाकर दिक करता। क्या तुम सचमुच उसे मारते?

रमा०—मैं उसकी जान लेकर छोड़ता। मैं उस वक्त अपने आपे से न था। न जाने मुझमें उस वक्त कहाँ से इतनी ताकत आ गयी थी।

जोहरा—और जो वह कल से मुझे न आने दे तो?

रमा०—कौन, अगर इस बीच में उसने जरा भी भाँजी मारी तो गोली मार दूँगा। वह देखो, ताक पर पिस्तौल रखा हुआ है। तुम अब मेरी हो, जोहरा! मैंने अपना सब कुछ तुम्हारे कदमों पर निसार कर दिया और तुम्हारा सब कुछ पाकर ही मैं सन्तुष्ट हो सकता हूँ। तुम मेरी हो, मैं तुम्हारा हूँ। किसी तीसरी औरत या मर्द को हमारे बीच में आने की मजाल नहीं है—जब तक मैं मर न जाऊँ।

जोहरा की आँखें चमक रही थीं। उसने रमा की गरदन में हाथ डालकर कहा—ऐसी बात मुँह से न निकालो प्यारे!

(४७)

सारे दिन रमा उद्वेग के जंगलों में भटकता रहा। कभी निराशा की अंधकारमय घाटियाँ सामने आ जातीं; कभी आशा की लहराती हुई हरियाली। जोहरा गयी भी होगी! यहाँ से तो लंबे-चौड़े वादे करके गयी थी। उसे क्या गरज है? आकर कह देगी, मुलाकात ही नहीं हुई। कहीं धोखा तो न देगी। जाकर डिप्टी साहब से सारी कथा कह सुनाये तो बेचारी जालपा पर बैठे-बिठाये आफत आ जाय। क्या जोहरा इतनी नीच प्रकृति हो सकती है? कभी नहीं। अगर जोहरा इतनी बेवफा दगा-बाज है, तो यह दुनिया रहने के लायक नहीं, जितनी जल्द आदमी मुँह में कालिख लगा डूब मरे, उतना ही अच्छा। नहीं, जोहरा मुझसे दगा न करेगी। उसे वह दिन याद आये जब उसके दफ्तर से आते ही जालपा उसकी जेब टटोलती थी और रुपये निकाल लेती थी। वही जालपा आज इतनी सत्यवादिनी हो गयी। तब वह प्यार करने की वस्तु थी, अब वह उपासना करने की वस्तु है। जालपा! मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। जिस ऊँचाई पर तुम मुझे ले जाना चाहती हो, वहाँ तक पहुँचने की मुझमें शक्ति नहीं है। वहाँ पहुँचकर शायद चक्कर खाकर गिर पड़ूँ। मैं अब भी तुम्हारे चरणों पर सिर झुकाता हूँ। मैं जानता हूँ, तुमने मुझे अपने हृदय से निकाल दिया है, तुम मुझसे विरक्त हो गयी हो, तुम्हें अब न

मेरे डूबने का दुख है न तैरने की खुशी; पर शायद अब भी मेरे मरने या किसी घोर संकट मे फँस जाने की खबर पाकर तुम्हारी आँखों से आँसू निकल आयेंगे। शायद तुम मेरी लाश देखने आओ। हा! प्राण ही क्यो नहीं निकल जाते कि तुम्हारी निगाह मे इतना नीच तो न रहूँ।

रमा को अब उस अपनी गलती पर पश्चात्ताप हो रहा था, जो उस ने जालपा की बात न मानकर की थी। अगर उसने उसके आदेशानुसार जज के इजलास मे अपना बयान बदल दिया होता, धमकियों मे न आता, हिम्मत मजबूत रखता, तो उसकी यह दशा क्यों होती। उसे यह विश्वास था, जालपा के साथ यह सारी कठिनाइयाँ झेल ले जाता। उसकी श्रद्धा और प्रेम का कवच पहनकर वह अजेय हो जाता। अगर उसे फाँसी भी हो जाती, तो वह हँसते-हँसते उस पर चढ़ जाता।

मगर पहले उससे चाहे जो भूल हुई, इस वक्त तो वह भूल से नहीं, जालपा की खातिर ही यह कष्ट भोग रहा था। कैद भोगनी ही है, तो उसे रो-रोकर भोगने से तो यह कहीं अच्छा है कि हँस-हँस भोगा जाय। आखिर पुलिस-अधिकारियों के दिल मे अपना विश्वास जमाने के लिए वह और क्या करता। यह दुष्ट जालपा को सताते, उसका अपमान करते, उसपर झूठा मुकदमा चलाकर उसे सजा दिलाते। वह दशा तो और भी असह्य होती। वह दुर्बल था, सब अपमान सह सकता था, जालपा तो शायद प्राण ही दे देती।

उसे आज ज्ञात हुआ कि वह जालपा को नहीं छोड सकता, और जोहरा को त्याग देना भी उसके लिए असंभव-सा जान पड़ता था। क्या वह दोनों रमणियों को प्रसन्न रख सकता था? क्या इस दशा में जालपा उसके साथ रहना स्वीकार करेगी? कभी नहीं। वह शायद उसे कभी नहीं क्षमा करेगी। अगर उसे यह मालूम भी हो जाय कि उसी के लिए वह यह यातना भोग रहा है, तो भी वह उसे क्षमा न करेगी। वह कहेगी, मेरे लिए तुमने अपनी आत्मा को क्यों कलंकित किया? मैं अपनी रक्षा आप कर सकती थी।

वह दिन भर इसी उधेड़-बुन मे पड़ा रहा। आँखें सड़क की ओर लगी हुई थीं। नहाने का समय टल गया, भोजन का समय टल गया,

किसी बात की परवा न थी। अखबार से दिल बहलाना चाहा, उपन्यास लेकर बैठा; मगर किसी काम मे चित्त न लगा। आज दारोगाजी भी नहीं आये। या तो रात की घटना से रुष्ट, या लज्जित थे। या कहीं बाहर चले गये। रमा ने किसी से इस विषय मे कुछ पूछा भी नहीं।

सभी दुर्बल मनुष्यों की भाँति रमा भी अपने पतन से लज्जित था। वह जब एकान्त मे बैठता, तो उसे अपनी दशा पर दुःख होता—क्यों उसकी विलास-वृत्ति इतनी प्रबल है? वह इतना विवेक-शून्य न था कि अधोगति मे भी प्रसन्न रहता; लेकिन ज्योंही और लोग आ जाते, शराब की बोतल आ जाती, जोहरा सामने आकर बैठ जाती, उसका सारा विवेक और धर्म-ज्ञान भ्रष्ट हो जाता।

रात के दस बज गये, पर जोहरा का कहीं पता नहीं। फाटक बन्द हो गया। रमा को अब उसके आने की आशा न रही; लेकिन फिर भी उसके कान लगे हुए थे। क्या बात हुई? क्या जालपा उसे मिली ही नहीं, या वह गयी ही नहीं? उसने इरादा किया, अगर कल जोहरा न आयी तो उसके घर किसी को भेजूंगा। उसे दो-एक झपकियाँ आयीं और सवेरा हो गया। फिर वही विकलता शुरू हुई, किसी को उसके घर भेज कर बुलवाना चाहिए। कम-से-कम यह तो मालूम हो जाय, कि वह घर पर है या नहीं।

दारोगा के पास जाकर बोला—रात तो आप आपे मे न थे।

दारोगा ने ईर्ष्या को छिपाते हुए कहा—यह बात न थी! मैं महज आपको छेड़ रहा था।

रमा०—जोहरा रात आयी नहीं, जरा किसी को भेजकर पता तो लगवाइये बात क्या है। कहीं नाराज तो नहीं हो गयी?

दारोगा ने बेदिली से कहा—उसे गरज होगी खुद आयेगी। किसी को भेजने की जरूरत नहीं है।

रमा ने फिर आग्रह न किया। समझ गया, यह हजरत आज बिगड़ गये। चुपके से चला आया। अब किससे कहे? सबसे यह बात कहना लज्जास्पद मालूम होता था। समझेंगे, यह महाशय एक ही रसिया निकले। दारोगा से तो थोडी-सी घनिष्ठता हो गयी थी।

एक हफ्ते तक उसे जोहरा के दर्शन न हुए। अब उसके आने की कोई आशा न थी। रमा ने सोचा, आखिर बेवफा निकली। उससे कुछ आशा करना मेरी भूल थी। मुमकिन है, पुलिस-अधिकारियों ने उसके आने की मनाही कर दी हो। कम-से-कम मुझे एक पत्र लिख सकती थी। मुझे कितना धोखा हुआ। व्यर्थ उससे अपने दिल की बात कही। इन लोगों से कह दे, तो उलटी आँते गले पड जायँ। मगर जोहरा बेवफाई नहीं कर सकती। रमा की अन्तरात्मा इसकी गवाही देती थी। इस बात को किसी तरह स्वीकार न करती थी। शुरू के दस-पाँच दिन तो जरूर जोहरा ने उसे लुब्ध करने की चेष्टा की थी। फिर अनायास ही उसके व्यवहार मे परिवर्तन होने लगा था। वह क्यो बार-बार सजल-नेत्र होकर कहती थी, देखो बाबूजी, मुझे भूल न जाना? उसकी वह हसरत-भरी बाते याद आ-आकर कपट की शंका को दिल से निकाल देता। जरूर कोई-न-कोई बात हो गयी है। वह अक्सर एकान्त मे बैठकर जोहरा की याद करके बच्चों की तरह रोता। शराब से उसे घृणा हो गयी। दारोगा आते, इंस्पेक्टर साहब आते; पर रमा को उनके साथ दस-पाँच मिनट बैठना भी अखरता। वह चाहता था, मुझे कोई न छेड़े, कोई न बोले। रसोइया खाने को बुलाने आता तो उसे घुड़क देता। कहीं घूमने या सैर करने की इच्छा ही न होती। यहाँ कोई उसका हम-दर्द न था, कोई उसका मित्र न था, एकान्त मे मन मारे बैठ रहने मे ही उसके चित्त को शान्ति होती थी। स्मृतियों मे भी अब कोई आनन्द न था। नहीं, वह स्मृतियाँ भी मानो उसके हृदय से मिट गयी थीं। एक प्रकार का विराग उसके दिल पर छाया रहता था।

सातवाँ दिन था। आठ बज गये थे। आज एक बहुत अच्छा फिल्म होने वाला था। एक प्रेम-कथा थी। दारोगा ने आकर रमा से कहा, तो वह चलने को तैयार हो गया। कपड़े पहन रहा था कि जोहरा आ पहुँची। रमा ने उसकी तरफ एक बार आँख उठाकर देखा, फिर आईने मे अपने बाल सँवारने लगा। न कुछ बोला, न कुछ कहा। हाँ जोहरा का वह सादा आभरणहीन स्वरूप देखकर उसे कुछ आश्चर्य अवश्य हुआ। वह केवल एक साड़ी पहने हुए थी। आभूषण का एक तार भी

उसकी देह पर न था। ओठ मुरझाये हुए और चेहरे पर क्रीड़ामय चंचलता की जगह तेजमय गम्भीरता झलक रही थी।

वह एक मिनट खडी रही, तब रमा के पास जाकर बोली—क्या मुझसे नाराज हो? बेकसूर, बिना कुछ पूछे-बूझे?

रमा ने फिर भी कुछ जवाब न दिया। जूते पहनने लगा। जोहरा ने उसका हाथ पकड़कर कहा—क्या यह खफगी इसलिए है, कि मैं इतने दिनों आयी क्यों नहीं?

रमा ने रुखाई से जवाब दिया—अगर तुम अब भी न आती, तो मेरा क्या अख्तियार था। तुम्हारी दया थी कि चली आयीं।

यह कहने के साथ उसे खयाल आया, कि मैं इसके साथ अन्याय कर रहा हूँ। लज्जित नेत्रों से उसकी ओर ताकने लगा।

जोहरा ने मुसकराकर कहा—यह अच्छी दिलल्गी है! आपने ही तो एक काम सौंपा था और जब वह काम करके लौटी, तो आप बिगड रहे है? क्या तुमने वह काम इतना आसान समझा था कि चुटकी बजाते पूरा हो जायगा? तुमने मुझे उस देवी से वरदान लेने भेजा, जो ऊपर से फूल है, पर भीतर से पत्थर; जो इतनी नाजुक होकर भी इतनी मजबूत है।

रमा ने बेदिली से पूछा—है कहाँ? क्या करती है?

जोहरा—उसी दिनेश के घर है जिसको फाँसी की सजा हो गई है। उसके दो बच्चे है, औरत है और माँ है। दिन भर उन्हीं बच्चों को खेलाती है बुढिया के लिये नदी से पानी लाती है। घर का सारा काम-काज करती हैं और उनके लिये बडे-बडे आदमियों से चन्दा माँग कर लाती हैं। दिनेश के घर मे न कोई जायदाद थी, न रुपये थे। लोग बड़ी तकलीफ मे थे। कोई मददगार तक न था, जो जाकर उन्हे ढाढ़स तो देता। जितने साथी सोहबती थे, सबके सब मुँह छिपा बैठे। दो-तीन फाके तक हो चुके थे। जालपा ने जाकर उनको जिला दिया।

रमा की सारी बेदिली काफूर हो गयी। जूता छोड़ दिया और कुरसी पर बैठकर बोला—तुम खड़ी क्यो हो, शुरू से बताओ, तुमने तो बीच में से शुरू किया। एक बात भी मत छोडना। तुम पहले उसके पास

कैसे पहुँची ? पता कैसे लगा।

जोहरा—कुछ नहीं, पहले उसी देवीदीन खटिक के पास गयी। उसने दिनेश के घर का पता दिया। चटपट पहुँची।

रमा०—तुमने जाकर उसे पुकारा ? तुम्हे देखकर कुछ चौंकी नहीं ? कुछ झिझकी तो जरूर होगी !

जोहरा मुसकराकर बोली—मैं इस रूप मे न थी। देवीदीन के घर से मैं अपने घर गयी और ब्रह्म-समाजी लेडी का स्वाग भरा। न जाने मुझमे ऐसी कौन-सी बात है जिससे दूसरों को फौरन पता चल जाता है कि मैं कौन हूँ; या क्या हूँ और ब्राह्मी लेडियों को देखती हूँ, कोई उनकी तरफ आँखे तक नहीं उठाता। मेरा पहनावा-ओढ़ाया वही है, भड़कीले कपडे या फजूल गहने बिलकुल नहीं पहनती। फिर भी सब मेरी तरफ आँखे फाड़-फाडकर देखते है। मेरी असलियत नहीं छिपती। यही खौफ मुझे था, कि कहीं जालपा भाप न जाय; लेकिन मैंने दाँत खूब साफ कर लिये थे, पान का निशान तक न था। मालूम होता था किसी कालेज की लेडी-टीचर होगी। इस शक्ल मे मैं वहाँ पहुँची। ऐसी सूरत बना ली, कि वह क्या, कोई भी न भाप सकता था। परदा ढका रह गया। मैंने दिनेश की माँ से कहा—मैं यहाँ यूनिवर्सिटी मे पढ़ती हूँ। अपना घर मुगेर बतलाया। बच्चों के लिए मिठाई ले गयी थी। हमदर्द का पार्ट खेलने गयी थी। और मेरा खयाल है कि मैंने खूब खेला। दोनों औरते बेचारी रोने लगीं। मैं भी जब्त न कर सकी। उनसे कभी-कभी मिलते रहने का वायदा किया। जालपा इसी बीच मे गंगाजल लिए पहुँची। मैंने दिनेश की माँ से बँगला मे पूछा—क्या यह कहारिन है, उसने कहा नही, यह भी तुम्हारी तरह हम लोगों के दुःख मे शरीक होने आ गई है। यहाँ इनके शौहर किसी दफ्तर मे नौकर है। और तो कुछ मालूम नही। रोज सवेरे आ जाती है, और बच्चों को खेलाने ले जाती हैं। मैं अपने हाथ से गंगाजल लाया करती थी। मुझे रोक दिया और खुद लाती है। हमे तो इन्होने जीवन-दान दिया। कोई आगे-पीछे न था। बच्चे दाने-दाने को तरसते थे। जब से यह आ गयी हैं, हमें कोई कष्ट नहीं है। न जाने किस शुभ कर्म का यह वरदान हमे मिला है।

उस घर के सामने ही एक छोटा-सा पार्क है। मुहल्ले भर के बच्चे वहीं खेला करते हैं। शाम हो गयी थी। जालपा देवी ने दोनों बच्चों को साथ लिया और पार्क की तरफ चली। मैं जो मिठाई ले गयी थी, उसमें से बूढ़ी ने एक-एक मिठाई दोनों बच्चों को दी थी। दोनों कूद-कूद नाचने लगे। बच्चों की इस खुशी पर मुझे रोना आ गया। दोनों मिठाई खाते हुए जालपा के साथ हो लिए। जब पार्क मे दोनो बच्चे खेलने लगे, तब जालपा से मेरी बातें होने लगीं।

रमा ने कुर्सी और करीब खींच ली, और आगे झुक गया। बोला—तुमने किस तरह बातचीत शुरू की ?

जोहरा—कह तो रही हूँ। मैंने पूछा—जालपा देवी, तुम कहाँ रहती हो ? घर की दोनों औरतों से तुम्हारी बड़ाई सुनकर तुम्हारे ऊपर आशिक हो गयी हूँ।

रमा०—यही लफ्ज कहा था तुमने !

जोहरा—हॉ, जरा मजाक करने की सूझी। मेरी तरफ ताज्जुब से देखकर बोली—तुम तो बगालिन नही मालूम होती। इतनी साफ हिंदी कोई बंगालिन नहीं बोलती। मैंने कहा—मैं मुंगेर की रहनेवाली हूँ और वहॉ मुसलमान औरतो के साथ बहुत मिलती-जुलती रही हूँ, आपसे कभी-कभी मिलने का जी चाहता है। आप कहॉ रहती है। कभी-कभी दो घडी के लिए चली आऊँगी। आपके पास घडी भर बैठकर मैं आदमियत सीख जाऊँगी।

जालपा ने शरमाकर कहा —तुम तो मुझे बनाने लगीं। कहाँ तुम कालेज की पढ़नेवाली, कहॉ मै अपढ़ गँवार औरत। तुमसे मिलकर मैं अलबत्ता आदमी बन जाऊँगी। जब जी चाहे, यहीं चली आना। यही मेरा घर समझो।

मैंने कहा—तुम्हारे स्वामीजी ने तुम्हे इतनी आजादी दे रखी है। बडे अच्छे ख़यालों के आदमी होंगे। किस दफ्तर मे नोकर हैं ?

जालपा ने अपने नाखूनों को देखते हुए कहा---पुलिस मे उम्मेदवार हैं ?

मैंने ताज्जुब से पूछा—पुलिस के आदमी होकर वह तुम्हे यहाँ आने की आजादी देते है ?

जालपा इस प्रश्न के लिए तैयार न मालूम होती थी। कुछ चौंककर बोली—वह मुझसे कुछ नहीं कहते..... मैंने उनसे यहाँ आने की बात नहीं कही वह घर बहुत कम आते हैं। वहीं पुलिसवालों के साथ रहते हैं।

उन्होंने एक साथ तीन जवाब दिए। फिर भी उन्हें शक हो रहा था, कि इनमें कोई जवाब इत्मीनान के लायक नहीं है। वह कुछ खिसियानी-सी होकर दूसरी तरफ ताकने लगीं।

मैंने पूछा—तुम अपने स्वामी से कहकर किसी तरह मेरी मुलाक़ात उस मुखबिर से करा सकती हो, जिसने क़ैदियों के खिलाफ़ गवाही दी है?

रमानाथ की आँखें फैल गयीं और छाती धक-धक करने लगी। जोहरा बोली—यह सुनकर जालपा ने मुझे चुभती हुई आँखों से देखकर पूछा—तुम उनसे मिलकर क्या करोगी!

मैंने कहा—तुम मुलाकात करा सकती हो या नहीं? मैं उनसे यही पूछना चाहती हूँ, कि तुमने इतने आदमियों को फँसाकर क्या पाया? देखूंगी वह क्या जवाब देते हैं।

जालपा का चेहरा सख्त पड़ गया। बोली—वह यह कह सकता है, मैंने अपने फायदे के लिए किया! सभी आदमी अपना फायदा सोचते है। मैंने भी सोचा। जब पुलिस के सैकडों आदमियों से कोई यह प्रश्न नहीं करता, तो उससे यह प्रश्न क्यों किया जाय? इससे कोई फायदा नहीं।

मैंने कहा—अच्छा मान लो, तुम्हारा पति ऐसी मुखबिरी करता तो तुम क्या करतीं?

जालपा ने मेरी तरफ सहमी हुई आँखों से देखकर कहा—तुम मुझसे यह सवाल क्यों करती हो; तुम खुद अपने दिल में इसका जवाब क्यों नहीं ढूँढती?

मैंने कहा—मैं तो उनसे कभी न बोलती; न कभी उनकी सूरत देखती।

जालपा ने गम्भीर चिन्ता के भाव से कहा—शायद मैं भी ऐसा ही समझती—या न समझती—कुछ कह नहीं सकती। आखिर पुलिस के अफ़सरों के घरों मे भी तो औरतें हैं। क्यों नहीं अपने आदमियों को

कुछ कहती ? जिस तरह उनके हृदय अपने मरदो के-से हो गये है, सम्भव है मेरा हृदय भी वैसा ही हो जाता।

इतने मे अँधेरा हो गया। जालपा देवी ने कहा—मुझे देर हो रही है बच्चे साथ है। कल हो सके तो फिर मिलियेगा। आपकी बातो मे बड़ा आनन्द आता है।

मैं चलने लगी, तो उन्होंने चलते-चलते मुझसे फिर कहा—जरूर आइयेगा। यहीं मैं मिलूँगी।

लेकिन दस कदम के बाद फिर रुककर बोलीं—मैंने आपका नाम तो पूछा ही नहीं। अभी तुमसे बाते करने से जी नही भरा। देर न हो रही हो तो आओ कुछ देर गप-शप करे।

'मैं तो चाहती ही थी। अपना नाम जोहरा बतला दिया :'

रमा ने पूछा—सच !

जोहरा—हाँ, हर्ज क्या था। पहले तो जालपा भी जरा चौंकी, पर कोई बात न समझी। समझ गयी बंगाली मुसलमान होगी। हम दोनों उसके घर गयीं। उस जरा-से कठघरे मे न जाने वह कैसे बैठती है। एक तिल भी जगह नहीं। कहीं मटके है, कही पानी, कहीं खाट, कही बिछावन। सील और बदबू से नाक फटी जाती थी। खाना तैयार हो गया था। दिनेश की बहू बरतन धो रही थी। जालपा ने उसे उठा दिया—जाकर बच्चों को खिलाकर सुला दो, मैं बरतन धोये देती हूँ। और खुद बरतन माँजने लगीं। उनकी यह खिदमत देखकर मेरे दिल पर इतना असर हुआ कि मैं भी वहीं बैठ गयी और माँजे बरतनो को धोने लगी। जालपा ने मुझे वहाँ से हट जाने के लिए कहा, पर मैं न हटी। बराबर बरतन धोती रही। जालपा ने तब पानी का मटका अलग हटाकर कहा—मैं पानी न दूँगी, तुम उठ जाओ, मुझे शर्म आती है। तुम्हे मेरी कसम, हट जाओ, यहाँ आना तो तुम्हारी सजा हो गयी; तुमने भी तो कभी न किया होगा; जब तुम करती हो, तो मेरे लिए क्या हर्ज है।

जालपा ने कहा—मेरी और बात है।

मैने पूछा—क्यों जो बात तुम्हारे लिए है, वही मेरे लिए भी है।

कोई महरी क्यों नहीं रख लेती हो ?

जालपा ने कहा—महरियाँ आठ-आठ रुपये माँगती हैं।

मैं बोली—मैं आठ रुपये महीने दे दिया करूँगी।

जालपा ने ऐसी निगाहो से मेरी तरफ देखा, जिसमें सच्चे प्रेम के साथ सच्चा उल्लास, सच्चा आशीर्वाद भरा हुआ था। वह चितवन ! आह ! कितनी पाकीजा थी, कितनी पाक करने वाली ! उनकी इस वेगरज पर खिदमत के सामने मुझे अपनी जिन्दगी कितनी जलील, कितनी काबिले-नफरत मालूम हो रही थी, उन बरतनो के धोने मे जो आनन्द मिला, उसे मैं बयान नहीं कर सकती !

बरतन धोकर उठीं, तो बुढ़िया के पाँव दाबने बैठ गयीं। मैं चुप-चाप खड़ी थी। मुझसे बोलीं—तुम्हे देर हो रही हो तो जाओ, कल फिर आना।

मैंने कहा—नहीं मैं, तुम्हे तुम्हारे घर पहुँचाकर उधर ही से निकल जाऊँगी।

गरज नौ बजे के बाद वह वहाँ से चलीं। रास्ते मे मैंने कहा—जालपा तुम सच देवी हो।

जालपा ने छूटते ही कहा—जोहरा, ऐसा मत कहो। मैं खिदमत नहीं कर रही हूँ, अपने पापों का प्रायश्चित कर रही हूँ। बहुत दुःखी हूँ। मुझसे बड़ी अभागिनी संसार मे न होगी।

मैंने अनजान बनकर कहा—इसका मतलब मैं नहीं समझी।

जालपा ने सामने ताकते हुए कहा—कभी समझ जाओगी। मेरा प्रायश्चित इस जन्म मे न पूरा होगा। इसके लिए मुझे कई जन्म लेने पड़ेंगे।

मैंने कहा—तुम तो मुझे चक्कर मे डाले देती हो बहन। मेरी समझ मे कुछ नहीं आ रहा है। जब तक तुम इसे समझा न दोगी, मैं तुम्हारा गला न छोड़ूँगी।

जालपा ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—जोहरा, किसी बात को खुद छिपाये रहना इससे ज्यादा आसान है, कि दूसरों पर वह बोझ रखूँ।

मैंने आतंकण्ठ से कहा—हाँ, पहली मुलाकात मे अगर आपको मुझ-पर इतना एतबार न हो, तो मैं आपको इलजाम न दूँगी; मगर कभी-न-

कभी आपको मुझपर एतबार करना पडेगा। मैं आपको छोड़ूँगी नहीं।

कुछ दूर तक हम दोनो चुपचाप चलती रहीं। एकाएक जालपा ने काँपती हुई आवाज मे कहा—जोहरा अगर इस वक्त तुम्हे मालूम हो जाय कि मैं कौन हूँ, तो शायद तुम नफरत से मुँह फेर लोगी और मेरे साये से भी दूर भागोगी।

इन लफ्जों मे न मालूम क्या जादू था कि मेरे सारे रोएँ खडे हो गये। यह एक रंज और शर्म से भरे हुए दिल की आवाज थी और उसने मेरी स्याह जिन्दगी की सूरत मेरे सामने खडी कर दी। मेरी आँखों में आँसू भर आये। ऐसा जी मे आ गया, कि अपना सारा स्वाँग खोल दूँ, न जाने उनके सामने मेरा दिल क्यों ऐसा हो गया था। मैंने वडे-बडे काइएँ और छँटे हुए शोहदो और पुलिस अफसरो को चपरगट्टू बनाया है; पर उसके सामने मैं जैसे भीगी बिल्ली बनी हुई थी। फिर मैंने न जाने कैसे अपने को सँभाल लिया।

मैं बोली तो मेरा भी गला भरा हुआ था—यह तुम्हारा ख्याल गलत है देवी! शायद तब मैं तुम्हारे पैरों पर गिर पड़ूँगी। अपनी या अपनों की बुराइयों पर शर्मिन्दा होना सच्चे दिलों ही का काम है।

जालपा ने कहा—लेकिन तुम मेरा हाल जानकर करोगी क्या? बस, इतना ही समझ ही लो कि एक गरीब अभागिनी औरत हूँ, जिसे अपने ही जैसे अभागे गरीब आदमियों के साथ मिलने-जुलने मे आनन्द आता है।

इसी तरह वह बार-बार टालती रही; लेकिन मैंने पीछा न छोडा। आखिर उसके मुँह से बात निकाल ही ली।

रमा ने कहा—यह नहीं सब कुछ कहना पडेगा।

जोहरा—अब आधी रात तक की कथा कहाँ तक सुनाऊँ। घण्टों लग जायँगे। जब मैं बहुत पीछे पड़ी, तो उन्होंने आखिर मे कहा—मैं उसी मुखबिर की बदनसीब औरत हूँ, जिसने इन कैदियों पर आफत ढाई है। यह कहते-कहते वह रो पड़ी। फिर जरा आवाज को सँभालकर बोली—हम लोग इलाहाबाद के रहनेवाले हैं। एक ऐसी बात हुई, कि इन्हें वहाँ से भागना पड़ा। किसी से कुछ कहा न सुना, भाग आये। कई महीनों मे पता चला, कि वह यहाँ है।

रमा ने कहा—इसका भी किस्सा है। तुमसे बताऊँगा कभी, जालपा के सिवा और किसी को यह न सूझती।

जोहरा बोली—यह सब मैंने दूसरे दिन जान लिया। अब मैं तुम्हारे रग-रग से वाकिफ हो गयी। जालपा मेरी सहेली है। शायद ही अपनी कोई बात उन्होंने मुझसे छिपाई हो।

कहने लगीं—जोहरा, मैं बड़ी मुसीबत में फँसी हुई हूँ। एक तरफ तो एक आदमी की जान और कई खानदानों की तबाही है, दूसरी तरफ अपनी तबाही है। मैं चाहूँ, तो आज इन सबों की जान बचा सकती हूँ। मैं अदालत को ऐसा सबूत दे सकती हूँ, कि फिर मुखबिर की शहादत की कोई हकीकत ही न रह जायगी; पर मुखबिर को सजा से नहीं बचा सकती। बहन, इस दुविधे में पड़ी नरक का कष्ट झेल रही हूँ। न यही होता है कि इन लोगों को मरने दूँ, और न यही हो सकता है, कि रमा को आग में झोंक दूँ। यह कहकर वह रो पड़ीं और बोलीं—बहन मैं खुद मर जाऊँगी; पर उनका अनिष्ट मुझसे न होगा। न्याय पर उन्हें भेंट नहीं कर सकती। अभी देखती हूँ, क्या फैसला होता है। नहीं कह सकती; उस वक्त मैं क्या कर बैठूँ। शायद वहीं हाईकोर्ट में सारा किस्सा कह सुनाऊँ, शायद उसी दिन जहर खाकर सो रहूँ।

इतने में देवीदीन का घर आ गया। हम दोनों बिदा हुईं। जालपा ने मुझसे बहुत इसरार किया, कि कल इसी वक्त फिर आना। दिन-भर तो उन्हें बात करने की फ़ुरसत नहीं रहती। बस यही शाम को मौका मिलता था। वह इतने रुपये जमा कर देना चाहती है, कि कम-से-कम दिनेश के घर वालों को कोई तकलीफ न हो। दो सौ रुपये से ज्यादा जमा कर चुकी हैं। मैंने भी पाँच रुपये दिये। मैंने दो-एक बार जिक्र किया, कि आप इन झगड़ों में न पड़िये अपने घर चली जाइए; लेकिन मैं साफ-साफ कहती हूँ; मैंने कभी जोर देकर यह बात न कही। जब मैंने इसका इशारा किया, उन्होंने ऐसा मुँह बनाया, गोया वह बात सुनना भी नहीं चाहतीं। मेरे मुँह से पूरी बात कभी न निकलने पायी। एक बात है, कहो तो मैं कहूँ?

रमा ने मानो ऊपरी मन से कहा—क्या बात है?

जोहरा—डिप्टी साहब से कह दूँ, जालपा को इलाहाबाद पहुँचा दे। उन्हे कोई तकलीफ न होगी। बस, औरते उन्हे स्टेशन तक बातों मे लगा ले जायँगी। यहाँ गाडी तैयार मिलेगी; वह उसमे बैठा दी जायँगी। या कोई और तदबीर सोचो।

रमा ने जोहरा की आँखों से आँख मिलाकर कहा—क्या यह मुनासिब होगा?

जोहरा ने शरमाकर कहा—मुनासिब तो न होगा।

रमा ने चटपट जूते पहन लिए और जोहरा से पूछा—देवीदीन के ही घर पर रहती है न?

जोहरा उठ खड़ी हुई और उसके सामने आकर बोली—तो क्या इस वक्त जाओगे!

रमा०—हाँ, जोहरा इसी वक्त चला जाऊँगा। बस, उनसे दो बाते करके उस तरफ चला जाऊँगा जहाँ मुझे अब से बहुत पहले चला जाना चाहिए था।

जोहरा—मगर कुछ सोच तो लो, नतीजा क्या होगा।

रमा०—सब सोच चुका, ज्यादे-से-ज्यादे तीन-चार साल की कैद दरोग-बयानी के जुर्म मे। बस, अब रुखसत! भूल मत जाना जोहरा, शायद फिर कभी मुलाकात हो!

रमा बरामदे से उतरकर सहन मे आया और एक क्षण मे फाटक के बाहर था। दरबान ने कहा—हुजूर ने दारोगाजी को इत्तला कर दी है?

रमा—इसकी कोई जरूरत नहीं।

चौकीदार—मैं जरा उनसे पूछ लू। मेरा रोजी क्यों ले रहे है हुजूर?

रमा ने कोई जवाब नही दिया। तेजी से सडक पर चल खड़ा हुआ। जोहरा निस्पन्द खडी हसरत भरी आँखो से देख रही थी। रमा के प्रति प्यार, ऐसा विकल करनेवाला प्यार, उसे कभी न हुआ था, जैसे कोई वीर-बाला अपने प्रियतम को समर-भूमि की ओर जाते देखकर गर्व से फूली न समाती हो।

चौकीदार ने लपककर दारोगाजी से कहा। वह बेचारे खाना खाकर लेटे ही थे। घबराकर निकले, रमा के पीछे दौडे और पुकारा—बाबू

साहब, जरा सुनिए तो, एक मिनट रुक जाइए, इससे क्या फायदा—कुछ मालूम तो हो, आप कहाँ जा रहे हैं? आखिर बेचारे एक बार ठोकर खाकर गिर पड़े। रमा ने लौटकर उन्हें उठाया और पूछा—कहीं चोट तो नहीं आयी?

दारोगा—कोई बात न थी, जरा ठोकर खा गया था। आखिर आप इस वक्त कहाँ जा रहे हैं? सोचिए, तो इसका नतीजा क्या होगा?

रमा०—मैं एक घंटे में लौट आऊँगा। जालपा को शायद मुखालिफों ने बहकाया है, कि तू हाईकोर्ट में एक अर्जी दे दे। जरा उसे जाकर समझाऊँगा।

दारोगा—यह आपको कैसे मालूम हुआ!

रमा०—जोहरा कहीं सुन आयी है।

दारोगा—बड़ी बेवफा औरत है। ऐसी औरत का तो सिर काट लेना चाहिए।

रमा०—इसीलिए तो जा रहा हूँ। या तो इसी वक्त उसे स्टेशन पर भेजकर आऊँगा, या इस बुरी तरह पेश आऊँगा, कि वह भी याद करेगी। ज्यादा बातचीत का मौका नहीं है। रातभर के लिए मुझे इस कैद से आजाद कर दीजिए।

दारोगा—मैं भी चलता हूँ, जरा ठहर जाइए।

रमा०—जी नहीं, बिल्कुल मामला बिगड़ जायगा। मैं अभी आता हूँ।

दारोगा लाजवाब हो गये। एक मिनट तक खड़े सोचते रहे, फिर लौट पड़े और जोहरा से बातें करते हुए पुलिस स्टेशन की तरफ चले गये। उधर रमा ने आगे बढ़कर एक ताँगा किया और देवीदीन के घर जा पहुँचा।

जालपा दिनेश के घर से लौटी थी और बैठी जग्गो और देवीदीन से बातें कर रही थी। वह इन दिनों एक ही वक्त खाना खाया करती थी। इतने में रमा ने नीचे से आवाज दी। देवीदीन उसकी आवाज पहचान गया, बोला—भैया हैं शायद।

जालपा—कह दो, यहाँ क्या करने आये हैं। वहीं जायँ।

देवी०—नहीं बेटी, जरा पूछ तो लूं, क्या कहते हैं ? इस वखत कैसे उन्हें छुट्टी मिली ?

जालपा—मुझे समझाने आये होंगे और क्या। मगर मुँह धो रखें !

देवीदीन ने द्वार खोल दिया। रमा ने अन्दर आकर कहा—दादा, तुम मुझे यहाँ देखकर इस वक्त, ताज्जुब कर रहे होगे। एक घण्टे की छुट्टी लेकर आया हूँ। तुम लोगों से अपने बहुत-से अपराधों को क्षमा कराना था। जालपा ऊपर है ?

देवीदीन—हाँ, है तो, अभी आयी हैं। बैठो, कुछ खाने को लाऊँ।

रमा०—नहीं, मैं खाना खा चुका हूँ। बस, जालपा से दो बातें करना चाहता हूँ।

देवी०—वह मानेगी नहीं, नाहक शर्मिन्दा होना पड़ेगा। माननेवाली औरत नहीं है।

रमा०—मुझसे दो-दो बातें करेंगी या मेरी सूरत ही नहीं देखना चाहतीं ? जरा जाकर पूछ लो।

देवी०—इसमे पूछना क्या है, दोनों बैठी तो है, जाओ। तुम्हारा घर जैसे तब था, वैसे अब भी है।

रमा०—नहीं दादा, उनसे पूछ लो। मैं यों न जाऊँगा।

देवीदीन ने ऊपर जा करके कहा—तुमसे कुछ कहना चाहते हैं बहू !

जालपा मुँह लटकाकर बोली—तो कहते क्यों नहीं, मैंने कुछ जबान बन्द कर दी है ? जालपा ने यह बात इतने जोर से कही थी कि नीचे रमा ने भी सुन ली। कितनी निर्ममता थी ? उसकी सारी मिलन-लालसा मानो उड़ गई। नीचे ही से खडे-खडे बोला—वह अगर मुझसे नहीं बोलना चाहतीं, ता कोई जबरदस्ती नहीं। मैंने अब साहस से सारा कच्चा चिट्ठा कह सुनाने का निश्चय कर लिया है। इसी इरादे से इस वक्त चला हूँ। मेरी वजह से इनको इतने कष्ट हुए, इसका मुझे खेद है। मेरी अक्ल पर परदा पड़ा हुआ था। स्वार्थ ने मुझे अन्धा कर रखा था। प्राणों के मोह ने, कष्टों के भय ने बुद्धि हर ली थी। कोई ग्रह सिर पर सवार था। इनके अनुष्ठानों ने उस ग्रह को शान्त कर दिया। शायद दो-चार साल के लिए सरकार की मेहमानी खानी पड़े। इसका

भय नहीं। जीता रहा तो फिर भेंट होगी। नहीं, मेरी बुराइयों को माफ करना और मुझे भूल जाना। तुम भी देवी दादा और अम्मा, मेरे अपराध क्षमा करना। तुम लोगों ने मेरे ऊपर जो दया की है, वह मरते दम तक न भूलूंगा। अगर जीता लौटा, तो शायद तुम लोगों की कुछ सेवा कर सकूं। मेरी तो जिन्दगी सत्यानाश हो गयी। न दीन का हुआ न दुनिया का। यह भी कह देना, कि उनके गहने मैंने ही चुराये थे। सराफ़ को देने के लिए रुपये न थे। गहने लौटाना जरूरी था इसीलिए यह कुकर्म करना पड़ा। उसी का फल आज तक भोग रहा हूँ और शायद जब तक प्राण न निकल जायँगे, भोगता रहूँगा। अगर उसी वक्त सफाई से सारी कथा कह दी होती, तो चाहे उस वक्त इन्हे बुरा लगता, लेकिन यह विपत्ति सिर पर न आती। तुम्हे भी मैंने धोखा दिया था, दादा। मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, कायस्थ हूँ। तुम जैसे देवता से मैंने कपट किया। न जाने इसका क्या दंड मिलेगा। सब-कुछ क्षमा करना। बस, यही कहने आया था।

रमा बरामदे के नीचे उतर पड़ा और तेजी से कदम उठाता हुआ चल दिया। जालपा भी कोठे से उतरी; लेकिन नीचे आयी तो रमा का पता न था। बरामदे के नीचे उतरकर देवीदीन से बोली—किधर गये हैं दादा? देवीदीन ने कहा—मैंने कुछ नहीं देखा बहू। मेरी आँखे आँसू से भरी हुई थीं। वह अब न मिलेंगे। दौड़ते हुए गये थे।

जालपा कई मिनट तक सड़क पर निःस्पन्द-सी खड़ी रही। उन्हे कैसे रोक लूं? इस वक्त वह कितने दुःखी हैं, कितने निराश हैं! मेरे सिर पर न जाने क्या शैतान सवार था, कि उन्हे बुला न लिया। भविष्य का हाल कौन जानता है। न-जाने कब भेंट होगी। विवाहित जीवन के इन दो-ढाई सालों मे कभी उसका हृदय अनुराग से इतना प्रकम्पित न हुआ था। विलासिनी-रूप मे वह केवल प्रेम के आवरण के दर्शन कर सकी। आज त्यागिनी बनकर उसने उसका असली रूप देखा। कितना मनोहर, कितना विशुद्ध, कितना विशाल, कितना तेजोमय! विलासिनी ने प्रेमोद्यान की दीवारों को देखा था, वह उसी मे खुश थी, त्यागिनी बनकर वह उद्यान के भीतर पहुँच गयी थी—कितना रम्य दृश्य था, कितनी सुगन्ध, कितना

वैचित्र्य, कितना विकास। इसकी सुगन्ध में, इसकी रम्यता में देवत्व भरा हुआ था। प्रेम अपने उच्चतम स्थान पर पहुँचकर देवत्व से मिल जाता है। जालपा को अब कोई शंका नही है; इस प्रेम को पाकर वह जन्म-जन्मान्तरों तक सौभाग्यवती बनी रहेगी। इसी प्रेम ने उसे वियोग, परिस्थिति और मृत्यु के भय से मुक्त कर दिया—उसे अभय-दान कर दिया। इस प्रेम के सामने अब सारा ससार; और उसका अखंड विभव तुच्छ है।

इतने मे जोहरा आ गयी। जालपा को पटरी पर खड़ी देखकर बोली—यहाँ कैसी खडी हो बहन ? आज तो मैं न आ सकी। चलो, आज मुझे तुमसे बहुत-सी बात करनी है।

दोनों ऊपर चली गयीं।

(४८)

दारोगा को भला कहाँ चैन ? रमा के जाने के बाद एक घटे तक उसका इंतजार करते रहे, फिर घोड़े पर सवार हुए देवीदीन के घर पहुँचे। वहाँ मालूम हुआ, कि रमा को यहाँ से गये आध घटे के ऊपर हो गया। फिर थाने लौटे। यहाँ रमा का अब तक पता न था। समझे देवीदीन ने धोखा दिया। कहीं उन्हे छिपा रखा होगा। सरपट साइकिल दौड़ाते हुए देवीदीन के घर पहुँचे और धमकाना शुरू किया। देवीदीन ने कहा—विश्वास न हो, घर की खाना-तलासी ले लीजिए, और क्या कीजिएगा। कोई बहुत बडा भी तो नहीं है। एक कोठरी नीचे है, एक ऊपर।

दारोगा ने साइकिल से उतर कर कहा—तुम बतलाते क्यों नहीं, वह कहाँ गये ?

देवी०—मुझे कुछ मालूम हो तब तो बताऊँ साहब ! यहाँ आये, अपनी घरवाली से तकरार की और चले गये।

दारोगा—वह कब इलाहाबाद जा रही हैं।

देवी०—इलाहाबाद जाने की तो बाबू जी ने कोई बातचीत नहीं क जब तक हाईकोर्ट का फैसला न हो जायगा, वह यहाँ से न जायँगी।

दारोगा—मुझे तुम्हारी बातों का यकीन नहीं आता।

यह कहते हुए दारोगा नीचे की कोठरी मे घुस गये और हरएक चीज को गौर से देखा। फिर ऊपर चढ गये। वहाँ तीन औरतों को देखकर

चौंके। जोहरा को शरारत सूझी तो उसने लम्बा-सा घूँघट निकाल लिया और अपने हाथ साड़ी में छिपा लिए। दारोगाजी को शक हुआ, शायद हजरत यह भेस बदले तो नहीं बैठे हैं।

देवीदीन से पूछा—यह तीसरी औरत कौन है?

देवीदीन ने कहा—मैं नहीं जानता। कभी-कभी बहू से मिलने आ जाती है।

दारोगा—मुझसे उड़ते हो बच्चा। साड़ी पहनाकर मुलजिम को छिपाना चाहते हो! इनमें कौन जालपा देवी है। उनसे कह दो, नीचे चली जायँ। दूसरी औरत को वहीं रहने दो!

जालपा हट गयी, तो दारोगा ने जोहरा के पास जाकर कहा—क्यों हजरत मुझसे यह चालें। क्या कहकर वहाँ से आये थे यहाँ आकर मौज में आ गये? सारा गुस्सा हवा हो गया। अब वह भेस उतारिये और मेरे साथ चलिए। देर हो रही है।

यह कहकर उन्होंने जोहरा का घूंघट उठा दिया। जोहरा ने ठट्ठा मारा। दारोगाजी मानो फिसलकर विस्मय-सागर में गिर पड़े! बोले—अरे, तुम हो जोहरा? तुम यहाँ कहाँ?

जोहरा—अपनी ड्यूटी बजा रही हूँ।

'रमानाथ कहाँ गये? तुम्हें तो मालूम होगा?'

'वह तो मेरे यहाँ आने के पहले ही चले गये थे। फिर मैं यहीं बैठ गयी और जालपा देवी से बातें करने लगी।'

'अच्छा जरा मेरे साथ आओ। उसका पता लगाना है।'

जोहरा ने बनावटी कुतूहल से कहा—क्या अभी तक बँगले पर नहीं पहुँचे?

'ना! न-जाने कहाँ रह गये?'

जोहरा—मैंने खूब पट्टी पढ़ाई है। उसके पास जाने की अब जरूरत नहीं है। शायद रास्ते पर आ जाय। रमानाथ ने बुरी तरह डाँटा है। धमकियों से डर गयी है।

दारोगा—तुम्हें यकीन है, कि अब यह कोई शरारत न करेगी?

जोहरा—हाँ, मेरा तो यही ख्याल है।

दारोगा—तो फिर यह कहाँ गया ?

जोहरा—कह नहीं सकती।

दारोगा—मुझे इसकी रिपोर्ट करनी होगी। इंस्पेक्टर साहब और डिप्टी साहब को इत्तला देना जरूरी है। ज्यादा पी तो नहीं गया था ?

जोहरा—पिये हुए तो थे !

दारोगा तो कहीं गिर-गिरा पड़ा होगा। इसने बहुत दिक किया। तो मैं जरा उधर जाता हूँ। तुम्हे पहुँचा दूँ, तुम्हारे घर तक ?

जोहरा—बड़ी इनायत होगी।

दारोगा ने जोहरा को मोटर पर बिठा लिया और उसको जरा देर मे घर के दरवाजे पर उतार दिया; मगर इतनी देर मे मन चचल हो गया। बोले—अब तो जाने का जी नहीं चाहता जोहरा ! चलो, आज कुछ गप-शप हो। बहुत दिन हुए, तुम्हारी करम की निगाह नहीं हुई।

जोहरा ने जीने के ऊपर एक कदम रखकर कहा—जाकर पहले इस्पेक्टर साहब से इत्तला तो कीजिए। यह गप-शप का मौका नहीं है।

दारोगा ने मोटर साइकिल से उतरकर कहा—नहीं, अब न जाऊँगा, जोहरा। सुबह देखी जायगी। मैं भी आता हूँ।

जोहरा—आप मानते नही हैं। शायद डिप्टी साहब आते हों। आज उन्होंने कहला भेजा था।

दारोगा—मुझे चकमा दे रही हो, जोहरा ? देखो, इतनी बेवफाई अच्छी नहीं।

जोहरा ने ऊपर चढ़कर द्वार बन्द कर दिया और ऊपर जाकर खिड़की से सिर निकालकर बोली—आदाब अर्ज !

(४९)

दारोगा घर जाकर लेट रहे। ग्यारह बज रहे थे। नींद खुली तो आठ बज गये थे। उठकर बैठे ही थे, कि टेलीफोन पर पुकार हुई। जाकर सुनने लगे—डिप्टी साहब बोल रहे थे—इस रमानाथ ने बड़ा गोलमाल कर दिया है। उसे किसी दूसरी जगह ठहराया जायगा। उसका सब सामान कमिश्नर साहब के पास भेज देना होगा। रात को वह बँगले पर था या नहीं।

दारोगा ने कहा—जी नही, रात मुझसे बहाना करके अपनी बीवी के पास चला गया था।

टेलीफोन—तुम उसको क्यों जाने दिया? हमको ऐसा डर लगता है, कि उसने जज से सब हाल कह दिया है। मुकदमा का जाँच फिर से होगा। आपसे बड़ा भारी 'ब्लडर' हुआ है। सारा मिहनत पानी मे फिर गया। उसको जबर्दस्ती रोक लेना चाहिए था।

दारोगा—तो क्या वह जज साहब के पास गया था?

डिप्टी—हाँ साहब, वही गया था; और जज भी कायदा को तोड़ दिया। वह फिर से मुकदमा का पेशी करेगा। रमा अपना बयान बदलेगा। अब इसमे कोई 'डाउट' नही है। और यह सब आपका 'बगलिंग' है। हम सब इस बाढ़ मे बह जायगा—जोहरा भी दगा दिया।

दारोगा उसी वक्त रमानाथ का सब सामान लेकर पुलिस-कमिश्नर के बँगले की तरफ चले। रमा पर ऐसा गुस्सा आ रहा था, कि पायें तो समूचा ही निगल जायँ! कम्बख्त को कितना समझाया, कैसी-कैसी खातिर की; पर दगा कर ही गया। इसमे जोहरा की भी साँठ-गाँठ है। बीवी की डाँट-फटकार करने का महज बहाना था। जोहरा बेगम की तो आज ही खबर लेता हूँ। कहाँ जाती है। देवीदीन से भी समझूँगा।

एक हफ्ते तक पुलिस-कर्मचारियो मे जो हलचल रही उसका जिक्र करने की कोई जरुरत नही। रात-की-रात और दिन-के दिन इसी फिक्र में चक्कर खाते रहते थे। अब मुकदमे से ज्यादा कहीं अपनी फिक्र थी। सबसे ज्यादा घबराहट दारोगा को थी। बचने की कोई उम्मीद नही नजर आती थी। इस्पेक्टर और डिप्टी—दोनो ने सारी जिम्मेदारी उन्हीं के सिर डाल दी और खुद बिलकुल अलग हो गये।

इस मुकदमे की फिर पेशी होगी, इसकी सारे शहर मे चर्चा होने लगी। अँग्रेजी न्याय के इतिहास मे यह घटना सर्वथा अभूतपूर्व थी। कभी ऐसा नहीं हुआ। वकीलों मे इस पर कानूनी बहसे होतीं। जज साहब ऐसा कर भी सकते हैं? मगर जज दृढ़ था। पुलिसवालों ने बडे-बडे जोर लगाये। पुलिस कमिश्नर ने यहाँ तक कहा, कि इससे सारा पुलिस विभाग बदनाम हो जायगा; लेकिन जज ने किसी की न सुनी।

झूठे सबूतों पर पन्द्रह आदमियों की जिन्दगी बरबाद करने की जिम्मेदारी सिर पर लेना उसकी आत्मा के लिए असह्य था। उसने हाईकोर्ट को सूचना दी और गवर्नमेंट को भी।

इधर पुलिसवाले रात-दिन रमा की तलाश मे दौड-धूप करते रहते थे; लेकिन रमा न जाने कहाँ जा छिपा था, कि उसका कुछ पता ही न चलता था।

हफ्तों सरकारी कर्मचारियों मे लिखा-पढ़ी होती रही। मनो कागज स्याह कर दिये गये। उधर समाचार-पत्रों मे इस मामले पर नित्य आलोचना होती रहती थी। एक पत्रकार ने जालपा से मुलाकात की, और उसका बयान छाप दिया। दूसरे ने जोहरा का बयान छाप दिया। इन दोनो बयानो ने पुलिस की बखिया उधेड़ दी। जोहरा ने तो लिखा था कि मुझे पचास रुपये रोज इसलिए दिये जाते थे कि रमानाथ को बहलाती रहूँ और कुछ सोचने या विचार करने का अवसर न मिले। पुलिस ने इन बयानों को पढ़ा, तो दाँत पीस लिए; जोहरा और जालपा, दोनों कहीं और जा छिपीं, नहीं तो पुलिस ने जरूर उनकी शरारत का मजा चखाया होता।

आखिर दो महीने के बाद फैसला हुआ। इस मुकदमे पर विचार करने के लिए एक सिविलियन नियुक्त किया गया। शहर के बाहर एक बँगले मे विचार शुरू हुआ। जिसमे ज्यादा भीड़-भाड न हो। फिर भी रोज दस-बारह हजार आदमी जमा हो जाते थे। पुलिस ने एड़ी-चोटी का जोर लगाया कि मुलजिमों मे कोई मुखबिर बन जाय, पर उसका उद्योग सफल न हुआ। दारोगा जी चाहते तो नई शहादतें बना सकते, पर अपने अफसरों की स्वार्थपरता पर वह इतने खिन्न हुए कि दूर से तमाशा देखने के सिवा और कुछ न किया। जब सारा यश अफसरों को मिलता है और सारा अपयश मातहतों को तो दारोगाजी को क्या गरज पड़ी थी कि नई शहादतों की फिक्र मे सिर खपाते? इन मुआमले मे अफसरों ने सारा दोष दारोगा ही के सिर मढ़ा। उन्हीं के बेपरवाही से रमानाथ हाथ से निकला। अगर ज्यादा सख्ती से निगरानी की जाती, तो जालपा कैसे उसे खत लिख सकती, और वह कैसे रात को उससे मिल सकता।

ऐसी दशा में मुकदमा उठा लेने के सिवा और क्या किया जा सकता था ! तवेले की बला बन्दर के सिर गयी । दारोगा तनज्जुल हो गये और नायबदारोगा का तराई मे तबादला कर दिया गया ।

जिस दिन मुलजिमों को छोड़ा गया, आधा शहर उनका स्वागत करने को जमा था । पुलिस ने दस बजे रात को उन्हें छोडा, पर दर्शक जमा ही हो गये । लोग जालपा को खींच ले गये । पीछे-पीछे देवीदीन भी पहुँचा । जालपा पर फूलों की वर्षा हो रही थी और 'जालपा देवी की जय !' से आकाश गूँज रहा था ।

मगर रमानाथ की परीक्षा अभी समाप्त न हुई थी । उन पर दरोग-बयानी का अभियोग चलाने का निश्चय हो गया ।

(५०)

उसी बँगले में ठीक दस बजे मुकदमा पेश हुआ । सावन की झड़ी लगी हुई थी । कलकत्ता दलदल हो रहा था, लेकिन दर्शको का एक अपार समूह सामने मैदान मे खड़ा था । महिलाओं में दिनेश की पत्नी और माता भी आयी हुई थीं । पेशी से दस-पन्द्रह मिनट पहले जालपा और जोहरा भी बन्द गाड़ियों मे आ पहुँचीं । महिलाओं को अदालत के कमरे मे जाने की आज्ञा मिल गयी ।

पुलिस की शहादतें शुरू हुईं । डिप्टी सुपरिंटेंडेट, इन्सपेक्टर, दारोगा नायब दारोगा—सभी के बयान हुए । दोनो तरफ के वकीलों ने जिरहें भी की, पर इन कार्रवाइयों मे उल्लेखनीय कोई बात न थी । जाब्ते की पाबन्दी की जा रही थी । पर इनके बाद रमानाथ का बयान हुआ ; पर उसमें भी कोई नई बात न थी । उसने अपने जीवन के गत एक वर्ष का पूरा वृत्तान्त कह सुनाया । कोई बात न छिपाई । वकील के पूछने पर उसने कहा—जालपा के त्याग, निष्ठा और सत्य-प्रेम ने मेरी आँखे खोलीं; और उससे भी ज्यादा जोहरा के सौजन्य और निष्कपट व्यवहार ने । मैं इसे अपना सौभाग्य समझता हूँ, कि मुझे उस तरफ से प्रकाश मिला, जिधर से औरों को अंधकार मिलता है । विष मे मुझे सुधा प्राप्त हो गयी ।

इसके बाद सफाई की तरफ से देवीदीन, जालपा और जोहरा के

बयान हुए। वकीलों ने इनसे भी सवाल किया; पर सच्चे गवाह क्या उखड़ते। जोहरा का बयान बहुत ही प्रभावोत्पादक था। उसने देखा, जिस प्राणी को जंजीरों से जकड़ने के लिए वह भेजी गयी है, वह खुद दर्द से तड़प रहा है; उसे मरहम की जरूरत है, जंजीरों की नहीं। वह सहारे का हाथ चाहता है, धक्के का झोंका नहीं। जालपा देवी के प्रति उसकी श्रद्धा, उसका अटल विश्वास देखकर मैं अपने को भूल गयी। मुझे अपनी नीचता, अपनी स्वार्थपरता पर लज्जा आयी! मेरा जीवन कितना अधम, कितना पतित है, यह मुझ पर उस वक्त खुला; और जब मैं जालपा से मिली तो उसकी निष्काम सेवा, उसका उज्ज्वल तप देखकर मेरे मन के रहे-सहे संस्कार भी मिट गये। विलासयुक्त जीवन से मुझे घृणा हो गयी। मैंने निश्चय कर लिया, इसी अंचल में मैं आश्रय लूँगी।

मगर इससे भी ज्यादा मार्के का बयान जालपा का था। उसे सुनकर दर्शकों की आँखों मे आँसू आ गये। उसके अन्तिम शब्द ये थे—मेरे पति निर्दोष है। ईश्वर की दृष्टि मे ही नहीं, नीति की दृष्टि मे भी वह निर्दोष हैं। उनके भाग्य मे मेरी विलासासक्ति का प्रायश्चित करना लिखा था, वह उन्होंने किया। वह बाजार से मुँह छिपाकर भागे। उन्होंने मुझपर अगर कोई अत्याचार किया, तो वह यही कि मेरी इच्छाओं को पूरा करने मे उन्होंने सदैव कल्पना से काम लिया। मुझे प्रसन्न करने के लिए, मुझे सुखी रखने के लिए उन्होंने अपने ऊपर बड़े-से-बड़े भार लेने मे कभी संकोच नहीं किया। वह यह भूल गये कि विलास-वृत्ति संतोष करना नहीं जानती। जहाँ मुझे रोकना उचित था वहाँ उन्होंने मुझे प्रोत्साहन दिया, और इस अवसर पर भी मुझे पूरा विश्वास है, मुझ पर अत्याचार करने की धमकी देकर ही उनकी जबान बन्द की गयी। अगर अपराधिनी हूँ, तो मैं, जिसके कारण उन्हे इतने कष्ट झेलने पड़े। मैं मानती हूँ कि मैंने उन्हे अपना बयान बदलने के लिये मजबूर किया। अगर मुझे विश्वास होता कि वह डाकों मे शरीक हुए, तो सबसे पहले मैं उनका तिरस्कार करती। मैं यह नहीं सह सकती थी, कि वह निरपराधियों की लाश पर अपना भवन खड़ा करे। जिन दिनों यहाँ डाके पड़े, उन तारीखों में मेरे स्वामी प्रयाग मे थे। अदालत चाहे तो टेलीफोन द्वारा

इसकी जाँच कर सकती है। अगर जरूरत हो, तो म्युनिसिपिल बोर्ड के अधिकारियों का बयान लिया जा सकता है। ऐसी दशा मे मेरा कर्तव्य इसके सिवा कुछ और हो ही नहीं सकता था जो मैंने किया।

अदालत ने सरकारी वकील से पूछा—क्या प्रयाग के इस मुआमले की कोई रिपोर्ट माँगी गयी थी?

वकील ने कहा—जी हाँ; मगर हमारा उस विषय पर कोई विवाद नहीं है।

सफाई के वकील ने कहा—इससे यह तो सिद्ध हो जाता है, कि मुलजिम डाके मे शरीक नहीं था। अब केवल यह बात रह जाती है, कि वह मुखबिर क्यों बना?

वादी वकील—स्वार्थ-सिद्धि के सिवा और क्या हो सकता है।

सफाई का वकील—मेरा कथन है, उसे धोखा दिया गया और जब उसे मालूम हो गया कि जिस भय से उसने पुलिस के हाथों की कठपुतली बनना स्वीकार किया था, वह उसका भ्रम था, तो उसे धमकियाँ दी गयीं।

अब सफाई का कोई गवाह न था। सरकारी वकील ने बहस शुरू की—योर ऑनर, आज आपके सम्मुख एक ऐसा अभियोग उपस्थित हुआ है, जैसा सौभाग्य से बहुत कम हुआ करता है। आपको जनकपुर की डकैती का हाल मालूम है। जनकपुर के आस-पास कई गाँवों मे लगातार डाके पडे और पुलिस डकैतों की खोज करने लगी। महीनों पुलिस-कर्मचारी अपनी जान हथेली पर लिये, डकैतों को ढूंढ़ निकालने की कोशिश करते रहे। आखिर उनकी मेहनत सफल हुई डाकुओं की खबर मिली। यह लोग एक घर के अन्दर बैठे पाये गये। पुलिस ने एकबारगी सबों को पकड़ लिया; लेकिन आप जानते है, ऐसे मामलों मे अदालतों के लिए सबूत पहुँचाना कितना मुश्किल होता है। जनता इन लोगों से कितना डरती है, प्राणों के भय से शहादत देने को तैयार नहीं होती। यहाँ तक कि जिनके घरों मे डाके पड़े थे, वे शहादत देने का अवसर आया तो साफ निकल गये।

महानुभावों, पुलिस उसी उलझन मे पड़ी थी कि एक युवक आता है

और इन डाकुओं का सरगना होने का दावा करता है। वह उन डकैतियों का ऐसा सजीव, ऐसा प्रमाणपूर्ण वर्णन करता है, कि पुलिस धोखे में आ जाती है। पुलिस ऐसे अवसर पर ऐसा आदमी पाकर इसको दैवी मदद समझती है। यह युवक इलाहाबाद से भाग आया था और यहाँ भूखों मरता था। अपने भाग्य निर्माण का सुअवसर पाकर उसने उससे अपना स्वार्थ सिद्ध करने का निश्चय कर लिया। मुखबिर बन कर सजा का तो उसे कोई भय था ही नहीं, पुलिस की सिफारिश से कोई अच्छी नौकरी पा जाने का विश्वास था। पुलिस ने उसका खूब आदर-सत्कार किया और उसे अपना मुखविर बना लिया। बहुत संभव था, कि कोई शहादत न पाकर पुलिस इन मुलजिमों को छोड़ देती, उन पर कोई मुकदमा नहीं चलाती; पर इस युवक के चकमे में आकर उसने अभियोग चलाने का निश्चय कर लिया। इसमें चाहे और कोई गुण हो या न हो, उसकी रचना शक्ति की प्रखरता से इनकार नहीं किया जा सकता। उसने डकै-तियों का ऐसा यथार्थ वर्णन किया, कि जंजीर की कड़ी भी कहीं से गायब न थी। अंकुर से फल निकलने तक की सारी बातों की उसने कल्पना कर ली थी। पुलिस ने मुकदमा चला दिया।

पर ऐसा मालूम होता है, कि बीच में उसे स्वभाग्य-निर्माण का इससे भी अच्छा अवसर मिल गया। बहुत संभव है, सरकार की विरोधिनी संस्थाओं ने उसे प्रलोभन दिये हों और उन प्रलोभनों ने स्वार्थ-सिद्धि का यह नया रास्ता सुझा दिया हो, जहाँ धन के साथ यश भी था, वाह-वाही भी थी; देश भक्ति का गौरव भी था। वह अपने स्वार्थ के लिये सब कुछ कर सकता है! वह स्वार्थ के लिए किसी के गले पर छुरी चला सकता है और साधु-वेष भी धारण कर सकता है। यही उसके जीवन का लक्ष्य है। हम खुश हैं कि उसकी सद्बुद्धि ने अन्त में उसपर विजय पायी, चाहे उसका हेतु कुछ भी क्यों न हो। निरपराधियों को दंड देना पुलिस के लिए उतना ही आपत्तिजनक है, जितना अपराधियों को छोड़ देना। वह अपनी कारगुजारी दिखाने के लिए ही ऐसे मुकदमे नहीं चलाती। न गवर्नमेंट इतनी न्याय-शून्य है कि वह पुलिस के कहने में आकर सारहीन मुकदमे चलाती फिरे; लेकिन इस युवक के चकमे

बाजियों से पुलिस की जो बदनामी हुई और सरकार के हजारों रुपये खर्च हो गये, इसका जिम्मेदार कौन है? ऐसे आदमी को आदर्श दंड मिलना चाहिए ताकि फिर किसी को ऐसी चकमेबाजी का साहस न हो। ऐसे मिथ्या का संसार रचनेवाले प्राणी को मुक्त रहकर समाज को ठगने का मार्ग बन्द कर देना चाहिए। उसके लिए इस समय सबसे उपयुक्त स्थान वह है, जहाँ उसे कुछ दिन आत्म-चिन्तन का अवसर मिले। शायद वहाँ के एकान्तवास से उसको आन्तरिक जागृति प्राप्त हो जाय। आपको केवल यह विचार करना है, कि उसने पुलिस को धोखा दिया या नहीं। इस विषय में अब कोई संदेह नहीं रह जाता, उसने धोखा दिया। अगर धमकियाँ दी गयी थीं तो पहली अदालत मे अपना बयान वापस ले सकता था; पर उस वक्त भी उसने ऐसा नहीं किया। इससे यह स्पष्ट है, कि धमकियों के आक्षेप मिथ्या हैं। उसने जो कुछ किया, स्वेच्छा से किया। ऐसे आदमी का यदि दंड न दिया गया, तो उसे अपनी कुटिल नीति से काम लेने का फिर साहस होगा और उसकी हिंसक मनोवृत्तियाँ और भी बलवान हो जायँगी।

फिर सफाई के वकील ने जवाब दिया—यह मुकदमा अंगरेजी इतिहास ही मे नहीं, शायद सार्वदेशीय न्याय के इतिहास मे एक अद्भुत घटना है। रमानाथ एक साधारण युवक है। उसकी शिक्षा भी बहुत मामूली हुई है। वह ऊँचे विचारो का आदमी नहीं है। वह इलाहाबाद के म्युनिसिपल आफिस मे नौकर है। वहाँ उसका काम चुंगी के रुपये वसूल करना है। वह व्यापारियों से प्रथानुसार रिश्वत लेता है। और अपनी आमदनी की परवाह न करता हुआ अनाप-सनाप खर्च करता है। आखिर एक दिन मीजान मे गलती हो जाने से उसे शंका होती है, कि उससे कुछ रुपये उठ गये। वह इतना घबरा जाता है, कि किसी से कुछ नहीं कहता, बस घर से भाग खड़ा होता है। वहाँ दफ्तर मे उस पर शुबहा होता है और उसके हिसाब की जाँच होती है। तब मालूम होता है, कि उसने कुछ ग़बन नहीं किया, सिर्फ हिसाब की भूल थी।

फिर रमानाथ के पुलिस के पंजे मे फंसने, फरजी मुखबिर बनने और शहादत देने का जिक्र करके उसने कहा—

अब रमानाथ के जीवन में एक नया परिवर्तन होता है, ऐसा परिवर्तन जो एक विलास-प्रिय, पद-लोलुप युवक को धर्मनिष्ठ और कर्तव्यशील बना देता है। उसकी पत्नी जालपा, जिसे देवी कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी, उसकी तलाश मे प्रयाग से यहाँ आती है और यहाँ जब उसे मालूम होता है, कि रमा मुकदमे मे पुलिस का मुखबिर हो गया है; तो वह उससे छिपकर मिलने आती है। रमा अपने बँगले में आराम से पड़ा हुआ है। फाटक पर सन्तरी पहरा दे रहा है। जालपा को पति से मिलने मे सफलता नहीं होती। तब वह एक पत्र लिखकर उसके सामने फेंक देती है। और देवीदीन के घर चली जाती है। रमा यह पत्र पढ़ता है और उसकी आँखों के सामने से परदा हट जाता है। वह छिपकर जालपा के पास आता है। जालपा उससे सारा वृत्तान्त कह सुनाती है और उससे अपना बयान वापस लेने पर जोर देती है। रमा पहले शकाएँ करता है; पर बाद को राजी हो जाता है और बँगले पर लौट जाता है। वहाँ वह पुलिस-अफसरों से साफ कह देता है, कि मैं अपना बयान बदल दूंगा। अधिकारी उसे तरह-तरह के प्रलोभन देते हैं, पर जब इसका रमा पर कोई असर नहीं होता और उन्हे मालूम हो गया कि उस पर ग़बन का मुकदमा नहीं है, तो वे उसे जालपा को गिरफ्तार करने की धमकी देते है। रमा की हिम्मत टूट जाती है, वह जानता है, पुलिस जो चाहे कर सकती है। इसलिए वह अपना इरादा तबदील कर देता है। और जज के इजलास मे अपने पहले बयान का समर्थन कर देता है। अदालत मातहत मे रमा से सफाई ने जिरह नहीं किया था। यहाँ उससे जिरह की गयी; लेकिन इस मुकदमे से कोई सरोकार न रखने पर भी उसने जिरहों के ऐसे जवाब दिये, कि जज को भी शक न हो सका और मुलजिमों को सजा हो गयी। रमानाथ की और भी खातिरदारियाँ होने लगीं। उसे एक सिफारिशी खत दिया गया और शायद उसकी यू० पी० गवर्नमेंट से सिफारिश भी की गयी।

फिर जालपा देवी ने फाँसी की सजा पाने वाले मुलजिम दिनेश के बाल-बच्चो का पालन-पोषण करने का निश्चय किया। इधर-उधर से चन्दे माँग-माँग कर वह उनके लिए जिन्दगी की जरूरतें पूरी करती थी,

उनके घर का काम-काज अपने हाथों करती थी, उसके बच्चों को खेलाने को ले जाती थी।

एक दिन रमानाथ मोटर पर सैर करता हुआ जालपा को सिर पर एक पानी का मटका रखे देख लेता है। उसकी आत्म-मर्यादा जाग उठती है। जोहरा को पुलिस-कर्मचारियों ने रमानाथ के मनोरंजन के लिए नियुक्त कर दिया है। जोहरा युवक की मानसिक वेदना देखकर द्रवित हो जाती है और वह जालपा का पूरा समाचार लाने के इरादे से चली जाती है। दिनेश के घर उसकी जालपा से भेंट होती है। जालपा का त्याग, सेवा और साधना देखकर इस वेश्या का हृदय इतना प्रभावित हो जाता है, कि वह अपने जीवन पर लज्जित हो जाती है और दोनों में बहनापा हो जाता है। वह एक सप्ताह के बाद जाकर रमा से सारा वृत्तान्त कह सुनाती है। वह उसी वक्त वहाँ से चल पड़ता है और जालपा से दो-चार बातें करके जज के बँगले पर चला जाता है। उसके बाद जो कुछ हुआ, वह हमारे सामने है।

मैं यह नहीं कहता, कि उसने झूठी गवाही नहीं दी; लेकिन उस परिस्थिति और उन प्रलोभनों पर ध्यान दीजिए, तो इस अपराध की गहनता बहुत कुछ घट जाती है। उस झूठी गवाही का परिणाम अगर यह होता, कि किसी निरपराध को सजा मिल जाती तो दूसरी बात थी। इस अवसर पर तो पन्द्रह युवकों की जान बच गई। क्या अब भी वह झूठी गवाही का अपराधी है? उसने खुद ही तो अपनी झूठी गवाही का एकबाल किया है। क्या इसका उसको दंड मिलना चाहिए? उसकी सरलता और सज्जनता ने एक वेश्या तक को मुग्ध कर दिया और वह उसे बहकाने और बहलाने के बदले उसके मार्ग का दीपक बन गयी। जालपा देवी की कर्तव्यपरायणता क्या दंड के योग्य है? जालपा ही इस ड्रामा की नायिका है। उसी के सदनुराग, उसके सरल प्रेम, उसकी धर्मपरायणता, उसकी पतिभक्ति, उसके स्वार्थ त्याग, उसकी सेवा-निष्ठा, किस-किस गुण की प्रशंसा की जाय! आज वह रंग-मंच पर न आती, तो पन्द्रह परिवारों के चिराग गुल हो जाते। उसने पन्द्रह परिवारों को अभय-दान दिया है। उसे मालूम था कि पुलिस का साथ देने से सांसारिक

भविष्य कितना उज्ज्वल हो जायगा, वह जीवन की कितनी ही चिन्ताओं से मुक्त हो जायगी। संभव है, उसके पास भी मोटरकार हो जायगी, नौकर-चाकर हो जायेंगे। अच्छा-सा घर हो जायगा, बहुमूल्य आभूषण होंगे। क्या एक युवती रमणी के हृदय में इन सुखों का कुछ भी मूल्य नहीं है। लेकिन वह यातना सहने के लिए तैयार हो जाती है। क्या यही उसके धर्मानुराग का उपहार होगा कि वह पति वञ्चित होकर जीवन-पथ पर भटकती फिरे? एक साधारण स्त्री में, जिसने उच्चकोटि की शिक्षा नही पाई, क्या इतनी निष्ठा, इतना त्याग इतना विमर्ष किसी दैवी प्रेरणा का परिचायक नहीं है। क्या एक पतिता का ऐसें कार्य मे सहायक हो जाना कोई महत्व नहीं रखता? मैं तो समझता हूँ, रखता है। ऐसे अभि-योग रोज नहीं पेश होते। शायद आप लोगों को अपने जीवन में फिर ऐसा अभियोग सुनने का मौका न मिले। यहाँ आप एक अभियोग का फैसला करने बैठे हुए है; मगर इस कोर्ट के बाहर एक और बहुत बड़ा न्यायालय है, जहाँ आप लोगों के न्याय पर विचार होगा। जालपा का वही फैसला न्यायानुकूल होगा जिसे बाहर का विशाल न्यायालय स्वीकार करे। न्यायालय कानून की बारीकियों मे नहीं पड़ता, जिनमे उलझकर, जिनकी पेचीदगियों मे फँसकर, हम अक्सर पथ-भ्रष्ट हो जाया करते हैं, अक्सर दूध का पानी और पानी का दूध कर बैठते है। अगर आप झूठ पर पश्चात्ताप करके सच्ची बात कह देने के लिए, भोग-विलास-मुक्त जीवन व्यतीत करने के लिए, किसी को अपराधी ठहराते हैं, तो आप संसार के सामने न्याय का कोई ऊँचा आदर्श नहीं उपस्थित कर रहे हैं।

सरकारी वकील ने इसका प्रत्युत्तर देते हुए कहा—धर्म और आदर्श अपने स्थान पर बहुत ही आदर की चीज है, लेकिन जिस आदमी ने जान-बूझकर झूठी गवाही दी, उसने अपराध अवश्य किया। और इसका उसे दंड मिलना चाहिये। यह सत्य है, कि उसने प्रयाग में कोई गबन नहीं किया था और उसे इसका भ्रम-मात्र था; लेकिन ऐसी दशा में एक सच्चे आदमी का यह कर्तव्य था, कि वह गिरफ्तार हो जाने पर अपनी देता। उसने सजा के भय से झूठी गवाही देकर पुलिस को क्यों धोखा दिया। यह विचार करने की बात है।

अगर आप समझते हैं, कि उसने अनुचित काम किया, तो आप उसे अवश्य दंड देंगे।

अब अदालत के फैसला सुनाने की बारी आयी। सभी को रमा से सहानुभूति हो गयी थी, पर इसके साथ ही यह भी मानी हुई बात थी कि उसे सजा होगी। क्या सजा होगी, यही देखना था। लोग बड़ी उत्सुकता से फैसला सुनने के लिए और सिमट गये, कुर्सियाँ और आगे खींच ली गयीं और कनबतियाँ भी बन्द हो गयीं।

'मुआमला केवल यह है कि एक युवक ने अपनी प्राण-रक्षा के लिए पुलिस का आश्रय लिया और जब उसे मालूम हो गया कि जिस भय से वह पुलिस का आश्रय ले रहा है वह सर्वथा निर्मूल है, तो उसने अपना बयान वापस ले लिया। रमानाथ मे अगर सत्यनिष्ठा होती, तो वह पुलिस का आश्रय ही क्यों लेता; लेकिन इसमे कोई सदेह नहीं कि पुलिस ने उसे रक्षा का यह उपाय सुझाया और इस तरह से झूठी गवाही देने का प्रलोभन दिया। मैं यह नहीं मान सकता कि इस मुआमले मे गवाही देने का प्रस्ताव स्वतः उसके मन मे पैदा हो गया। उसे प्रलोभन दिया गया, जिसे उसने दड-भय से स्वीकार कर लिया। उसे यह विश्वास दिलाया गया होगा, कि जिन लोगों के विरुद्ध उसे गवाही देने के लिए तैयार किया जा रहा था, वे वास्तव मे अपराधी थे, क्योंकि रमानाथ मे जहाँ दण्ड का भय है, वहाँ न्याय-भक्ति भी है। वह उन पेशेवर गवाहों मे नहीं है, जो स्वार्थ के लिए निरपराधियों को फंसाने से भी नहीं हिच-कते। अगर ऐसी बात न होती, तो वह अपनी पत्नी के आग्रह से बयान बदलने पर कभी राजी न होता। यह ठीक है कि पहली अदालत के बाद ही उसे मालूम हो गया था, कि उस पर ग़बन का कोई मुकदमा नहीं है और जज की अदालत मे वह अपने बयान को वापस ले सकता था। उस वक्त उसने यह इच्छा प्रकट भी अवश्य की; पर पुलिस की धमकियों ने फिर उस पर विजय पाई। पुलिस का बदनामी से बचने के लिए इस अवसर पर उसे धमकियाँ देना स्वाभाविक है, क्योंकि पुलिस को मुल-जिमों के अपराधी होने के विषय मे कोई सदेह न था। रमानाथ धमकियों मे आ गया, यह उसकी दुर्बलता अवश्य है; पर परिस्थिति को देखते

हुए क्षम्य है। इसलिए मैं रमानाथ को बरी करता हूँ।'

(५१)

चैत्र की शीतल, सुहावनी, स्फूर्तिमयी संध्या, गंगा का तट, टेसुओं से लहलहाता हुआ ढाक का मैदान, बरगद का छायादार वृक्ष, उसके नीचे बँधी हुई गाय-भैंसे, कद्दू और लौकी की बेलो से लहराती हुई झोपड़ियाँ, कही गर्द न गुबार, न शोर न गुल, सुख और शान्ति के लिए क्या इससे भी अच्छी जगह हो सकती है? नीचे स्वर्णमयी गगा लाल, काले, नीले आवरण से चमकती हुई, मन्द स्वरो मे गाती, कहीं लपकती, कहीं झिझकती, कहीं चपल, कहीं गभीर अनन्त अंधकार की ओर चली जा रही है, जैसे बहुरजित बालस्मृति क्रीडा और विनोद की गोद मे खेलती हुई, चिन्तामय, संघर्षमय, अधकारमय भविष्य की ओर चली जा रही हो। देवी और रमा ने यहीं प्रयाग के समीप आकर आश्रय लिया है।

तीन साल गुजर गये हैं, देवीदीन ने जमीन ली, बाग लगाया, खेती जमाई गाय-भैंसे खरीदीं और कर्मयोग मे, अविरत उद्योग मे, सुख संतोष और शान्ति का अनुभव कर रहा है। उसके मुँह पर अब वह जर्दी वह झुर्रियाँ नहीं है, बल्कि एक नई स्फूर्ति, एक नई कान्ति झलक रही है।

शाम हो गयी है, गाये, भैसे हार से लौटीं। जग्गो ने उन्हे खूटे से बाँधा और थोड़ा-थोडा भूसा लाकर उनके सामने डाल दिया। इतने मे देवी और गोपी भी बैलगाडी पर डाँठ लादे हुए आ पहुँचे। दयानाथ ने बरगद के नीचे जमीन साफ कर रखी है। वहीं डाठे उतारी गयीं। यही इस छोटी-सी बस्ती का खलिहान है। दयानाथ नौकरी से बरखास्त हो गये थे और अब देवी के असिस्टेंट है। उनको समाचार-पत्रों से अब भी वही प्रेम है, रोज कई पत्र आते हैं, और शाम को फुर्सत पाने के बाद मुशीजी पत्रों को पढ़कर सुनाते और समझाते है। श्रोताओं मे बहुधा आस-पास के गाँवों के दस-पाँच आदमी भी आ जाते है और रोज एक छोटी-मोटी सभा हो जाती है।

रमा को इस जीवन से इतना अनुराग हो गया है कि अब शायद उसे थानेदारी ही नहीं, चुगी की इस्पेक्टरी भी मिल जाय, तो शहर का नाम न ले। प्रातःकाल उठकर गगा-स्नान करता है, फिर कुछ कसरत

करके दूध पीता है और दिन निकलते-निकलते अपनी दवाओं का सन्दूक लेकर आ बैठता है। उसने वैद्यक की कई किताबें पढ़ ली है और छोटी-मोटी बीमारियों की दवा दे देता है। दस-पाँच मरीज रोज आ जाते हैं, और उसकी कीर्ति दिन-दिन बढ़ती जाती है। इस काम से छुट्टी पाते ही वह अपने बगीचे मे चला जाता है, वहाँ कुछ साग-भाजी भी लगी है, कुछ-फूलों के वृक्ष हैं और कुछ जड़ी-बूटियाँ है। अभी तो बाग से केवल तरकारी मिलती है ; पर आशा है कि तीन चार साल मे नीबू, अमरूद, बेर, नारंगी, आम, केले, आँवले, कटहल, बेल आदि फलों की अच्छी आमदनी होने लगेगी।

देवी ने बैलों को गाड़ी से खोलकर खूंटे से बाँध दिया और दयानाथ से बोला—अभी भैया नहीं लौटे ?

दयानाथ ने डाँठों को समेटते हुए कहा—अभी तो नहीं लौटे। मुझे तो अब इनके अच्छे होने की आशा नहीं है, जमाने का फेर है। कितने सुख से रहती थीं। गाड़ी थी, मोटर थी, बँगला था दरजनों नौकर थे। अब यह हाल है। सामान सब मौजूद है, वकील साहब ने अच्छी संपत्ति छोड़ी थी ; मगर भाई-भतीजों ने हड़प ली।

देवी०—भैया कहते थे, अदालत करतीं तो सब मिल जाता , पर कहती है, मैं झूठ अदालत मे न बोलूंगी। औरत बडे ऊँचे विचार की है।

सहसा रामेश्वरी एक छोटे-से शिशु को गोदी मे देती हुई देवीदीन से बोली—भैया, जरा चलकर रतन को देखो, जाने कैसा हुई जाती है। जोहरा और बहू दोनों रो रही है। बच्चा जाने कहाँ रह गये ?

देवीदीन ने दयानाथ से कहा—चलो लाला देखें।

रामेश्वरी बोली—यह जाकर क्या करेंगे, बीमार को देखकर इनकी नानी पहले ही मर जाती है।

देवीदीन ने रतन की कोठरी मे जाकर देखा—रतन बाँस की एक खाट पर पड़ी थी। देह सूख गयी थी। वह सूर्यमुखी का-सा खिला हुआ चेहरा मुरझाकर पीला हो गया था। वह रंग जिन्होंने चित्र को जीवन और स्पन्दन प्रदान कर रखा था उड़ गये थे ; केवल आकार शेष रह गया था। वह श्रवण प्रिय, प्राण-प्रद, विकास और आह्लाद मे डूबा

हुआ संगीत मानो आकाश में विलीन हो गया था, केवल उसकी क्षीण उदास प्रतिध्वनि रह गयी थी। जोहरा उसके ऊपर झुकी उसे करुण, विवश, कातर, निराश तथा तृष्णामय नेत्रों से देख रही थी। आज साल-भर से उसने रतन की सेवा-शुश्रूषा में दिन को दिन और रात को रात न समझा था। रतन ने उसके साथ जो स्नेह किया था, उस अविश्वास और बहिष्कार के वातावरण में जिस खुले निःसंकोच भाव से उसके साथ बहनापा निभाया था, उसका एहसान वह किस तरह मानती। जो सहानुभूति उसे जालपा से भी न मिली, वह रतन ने प्रदान की। दुःख और परिश्रम ने दोनों को मिला दिया, दोनों की आत्माएँ संयुक्त हो गयीं। यह घनिष्ट स्नेह उसके लिए एक नया ही अनुभव था, जिसकी उसने कभी कल्पना भी न की थी। इस मैत्री में उसके वंचित हृदय ने पति-प्रेम और पुत्र-स्नेह दोनों ही पा लिया।

देवीदीन ने रतन के चेहरे की ओर सचिन्त नेत्रों से देखा, तब उसकी नाडी हाथ में लेकर पूछा—कितनी देर से नहीं बोलीं ?

जालपा ने आँखें पोछकर कहा—अभी तो बोलती थीं। एकाएक आँखें ऊपर चढ़ गयीं और बेहोश हो गयीं। वैद्य जी को लेकर अभी तक नहीं आये ?

देवीदीन ने कहा—इनकी दवा वैद्य के पास नहीं है।

यह कहकर उसने थोडी-सी राख ली, रतन के सिर पर हाथ फेरा, कुछ मुँह में बुदबुदाया और एक चुटकी राख उसके माथे पर लगा दी। तब पुकारा—रतन बेटी, आँखें खोलो !

रतन ने आँखें खोल दीं और इधर-उधर सकपकाई हुई आँखों से देखकर बोली—मेरी मोटर आई थी न ? कहाँ गया वह आदमी ? उससे कह दो, थोडी देर के बाद लाये। जोहरा, आज मैं तुम्हें अपने बगीचे की सैर कराऊँगी। हम दोनों झूले पर बैठेंगी।

जोहरा फिर रोने लगी। जालपा भी अपने आँसुओं के वेग को न रोक सकी। रतन एक क्षण तक छत की ओर ताकती रही। फिर एकाएक जैसे उसकी स्मृति जाग उठी हो, वह लज्जित होकर एक उदास मुस्क-राहट के साथ बोली—मैं सपना देख रही थी, दादा ?

लोहित आकाश पर कालिमा का पर्दा पड़ गया था। उसी वक्त रतन के जीवन पर मृत्यु ने परदा डाल दिया।

रमानाथ वैद्यजी को लेकर पहर-रात को लौटा, तो यहाँ मौत का सन्नाटा छाया हुआ था। रतन की मृत्यु का शोक वह शोक न था, जिसमे आदमी हाय-हाय करता है, बल्कि वह शोक जिसमे हम मूक-रुदन करते हैं, जिसकी याद कभी नहीं भूलती, जिसका बोझ दिल से कभी नहीं उतरता।

रतन के बाद जोहरा अकेली हो गयी। दोनों साथ-साथ सोती थीं, बैठती थीं, साथ काम करती थीं। अब अकेली जोहरा का जी किसी काम में न लगता था। कभी नदी-तट पर जाकर रतन की याद करती और रोती, कभी उन आम के पौधों के पास जाकर घंटों खड़ी रहती जिसे उन दोनों ने लगाया था, मानो उसका सुहाग लुट गया हो। जालपा को बच्चे के पालन और भोजन बनाने से इतना अवकाश न मिलता था, कि उसके साथ बहुत उठती-बैठती; और बैठती भी तो रतन की चर्चा होने लगती और रोने लगती।

भादों का महीना था। पृथ्वी और जल मे रण छिड़ा हुआ था। जल की सेनाएँ वायुयान पर चढ़कर आकाश से जल-शरों की वर्षा कर रही थीं। उसकी थल सेनाओं ने पृथ्वी पर उत्पात मचा रखा था। गंगा गाँवों और कस्बों को निगल रही थीं। गाँव-के-गाँव बहते चले जाते थे। जोहरा नदी के तट पर बाढ़ का तमाशा देखने लगी। वह कृशांगी गंगा इतनी विशाल हो सकती है, इसका वह अनुभव भी न कर सकती थी। लहरे उन्मत्त होकर गरजतीं, मुँह से फेन निकालतीं, हाथों उछल रही थीं, चतुर फिकैतों की तरह पैतरे बदल रही थीं। कभी एक-एक कदम आगे आतीं, फिर पीछे लौट पड़तीं और चक्कर खा फिर आगे को लपकतीं। कहीं कोई झोपड़ा डगमगाता तेजी से बहा जा रहा था, मानो कोई शराबी दौड़ा जाता है, कहीं कोई वृक्ष डाल-पत्तों समेत डूबता उतराता किसी पाषाण-युग के जन्तु की भाँति तैरता चला जाता था। गाये, भैंसे और खाट-तख्ते मानो तिलस्मी चित्रों की भाँति आँखों के सामने से निकल जाते थे।

सहसा एक किश्ती नजर आई। उस पर कई स्त्री-पुरुष बैठे थे। बैठे क्या थे, चिमटे हुए थे। किश्ती कभी ऊपर जाती, कभी नीचे आती। उससे यही मालूम होता था, कि अब उलटी तब उलटी; पर वाह रे साहस! सब अभी भी गंगा माता की जय! पुकारते जाते थे। स्त्रियाँ अब भी गंगा के यश के गीत गाती थीं। जीवन और मृत्यु का ऐसा संघर्ष किसने देखा होगा। दोनों तरफ के आदमी किनारे खड़े एक तनाव की दशा मे हृदय को दबाये खड़े थे। जब किश्ती करवट लेती, तो लोगों के दिल उछलकर ओठों तक आ जाते। रस्सियाँ फेंकने की कोशिश की जाती; पर रस्सी बीच ही मे गिर पड़ती थी। एक बार किश्ती उलट ही गयी। सभी प्राणी लहरों मे समा गये। एक क्षण कई स्त्री-पुरुष डूबते-उतराते दिखायी दिये फिर निगाहो से ओझल हो गये। केवल एक उजली-सी चीज किनारे की ओर चली आ रही थी। वह एक रेले मे तट से कोई बीस गज तक आ गयी। समीप से मालूम हुआ, स्त्री है। जोहरा, जालपा और रमा—तीनों खड़े थे। स्त्री की गोद मे एक बच्ची भी नजर आती थी। दोनों को निकाल लाने के लिये तीनों विकल हो उठे; पर बीस गज तैरकर उस तरफ जाना आसान न था। फिर रमा तैरने मे बहुत कुशल न था। कहीं लहरों के जोर मे पाँव उखड़ जायँ, तो फिर बंगाल की खाड़ी के सिवा और कहीं ठिकाना न लगे।

जोहरा ने कहा—मैं जाती हूँ।

रमा ने लजाते हुआ कहा—जाने को तैयार हूँ; लेकिन वहाँ तक पहुँच भी सकूँगा, इसमे सन्देह है। कितना तोड है!

जोहरा ने एक कदम पानी मे रखकर कहा—नहीं, मैं अभी निकाले लाती हूँ।

वह कमर तक पानी मे चली गयी। रमा ने सशंक होकर कहा—क्यों नाहक जान देने जाती हो? वहाँ शायद एक गड्ढा है। मैं तो जा ही रहा था।

जोहरा ने हाथों से मना करते हुए कहा—नहीं-नहीं, तुम्हें मेरी कसम तुम न आना। मैं अभी लिये आती हूँ। मुझे तैरना आता है।

जालपा ने कहा—लाश होगी और क्या?

रमा०—शायद अभी जान हो।

जालपा—अच्छा! जोहरा तो तैर भी लेती है। जभी हिम्मत हुई।

रमा ने जोहरा की ओर चिन्तित आँखों से देखते हुए कहा—हाँ, कुछ जानती तो है। ईश्वर करे लौट आये। मुझे अपनी कायरता पर लज्जा आ रही है।

जालपा ने बेहयाई से कहा—इसमे लज्जा की कौन बात है? मरी लाश के लिए जान को जोखिम मे डालने से फायदा? जीती होती तो मैं खुद तुमसे कहती जाकर निकाल लाओ।

रमा ने आत्म-धिक्कार के भाव से कहा—यहाँ से कौन जान सकता है जान है या नहीं? सचमुच, बाल-बच्चो वाला आदमी नामर्द हो जाता है। मैं खड़ा रहा और जोहरा चली गयी।

सहसा एक जोर की लहर आयी और लाश को फिर धारा मे बहा ले गयी। जोहरा लाश के पास पहुँच चुकी थी। उसे पकड़ कर खींचना ही चाहती थी कि इस लहर ने उसे दूर कर दिया। जोहरा खुद उसके जोर मे आ गयी। और प्रवाह की ओर कई हाथ बह गयी। वह फिर सँभली; पर एक दूसरी लहर ने उसे ढकेल दिया।

रमा व्यग्र होकर पानी मे कूद पड़ा और जोर-जोर से पुकारने लगा—जोहरा, जोहरा! मैं आता हूँ।

मगर जोहरा मे अब लहरों से लड़ने की शक्ति न थी। वह वेग से लाश के साथ ही धारा मे बही जा रही थी। उसके हाथ-पाँव हिलना बन्द हो गये थे।

एकाएक ऐसा रेला आया कि दोनों ही उसमे समा गयीं। एक मिनट के बाद जोहरा के काले बाल नजर आये। केवल एक क्षण तक! यही अन्तिम झलक थी। फिर वह नजर न आयी।

रमा कोई सौ गज तक जोरों के साथ हाथ-पाँव मारता हुआ गया लेकिन इतनी ही दूर मे लहरों के वेग के कारण उसका दम फूल गया। अब आगे जाय कहाँ? जोहरा का तो कही पता भी न था। वही आखिरी झलक आँखों के सामने थी।

किनारे पर जालपा खड़ी हाय-हाय कर रह थी। यहाँ तक कि वह

भी पानी मे कूद पड़ी। रमा अब आगे न बढ़ सका एक शक्ति आगे खींचती थी, एक पीछे। आगे की शक्ति मे अनुराग था, निराशा थी, बलिदान था; पीछे की शक्ति मे कर्त्तव्य था, स्नेह था, बन्धन था! बन्धन ने रोक लिया। वह लौट पड़ा।

कई मिनट तक जालपा और रमा घुटनों तक पानी मे खड़े उसी तरफ ताकते रहे। रमा की जबान आत्म-धिक्कार ने बन्द कर रखी थी, जालपा की शोक और लज्जा ने।

आखिर रमा ने कहा—पानी मे क्यों खड़ी हो? सर्दी हो जायगी।

जालपा पानी से निकलकर तट पर खड़ी हो गयी; पर मुँह से कुछ न बोली—मृत्यु के इस आघात ने उसे पराभूत कर दिया था। जीवन कितना अस्थिर है, यह घटना आज दूसरी बार उसकी आँखों के सामने चरितार्थ हुई। रतन के मरने की पहले से आशका थी। मालूम था कि वह थोड़े दिनो की मेहमान है, मगर जोहरा की मौत वज्रपात के समान थी। अभी आध घडी पहले तीनों आदमी प्रसन्नचित्त, जलक्रीड़ा देखने चले थे। किसे शंका थी, मृत्यु की ऐसी भीषण क्रीडा उनको देखनी पडेगी?

इन चार सालों मे जोहरा ने अपनी सेवा, आत्मत्याग और सरल स्वभाव से सभी को मुग्ध कर लिया था। अपने अतीत को मिटाने के लिए, अपने पिछले दागों को धो डालने के लिये, उसके पास इसके सिवा और क्या साधन था। उसकी सारी कामनाएँ, सारी वासनाएँ सेवा मे लीन हो गयी। कलकत्ते मे वह विलास और मनोरजन की वस्तु थी। शायद कोई भला आदमी उसे अपने घर मे न घुसने देता। यहाँ सभी उसके साथ अपने प्राणी का-सा व्यवहार करते थे। दयानाथ और रामे-श्वरी को यह कहकर शान्त कर दिया गया था, कि वह देवीदीन की विधवा बहू है। जोहरा न कलकत्ते मे जालपा से केवल उसके साथ रहने की भिक्षा माँगी थी। उसे अपने जीवन से घृणा हो गयी थी। जालपा की विश्वासमय उदारता ने उसे आत्मशुद्धि के पथ पर डाल दिया। रतन का पवित्र निष्काम जीवन उसे प्रोत्साहित किया करता था।

थोडी देर बाद रमा भी पानी से निकले और शोक में डूबे हुए घर

की ओर चले। मगर अक्सर वह और जालपा नदी के किनारे आ बैठते और जहाँ जोहरा डूबी थी उस तरफ घण्टों देखा करते। कई दिनों तक उन्हे यह आशा बनी रही कि शायद जोहरा बच गयी हो और किसी तरफ से चली आये; लेकिन धीरे-धीरे यह क्षीण आशा शोक के रूप मे खो गयी। मगर अभी तक जोहरा की सूरत उनकी आँखों के सामने फिरा करती है। उसके लगाये हुए पौधे, उसकी पाली हुई बिल्ली, उसके हाथों के सिले हुए कपडे, उसका कमरा—यह सब उसकी स्मृति के चिह्न है और उनके पास जाकर रमा की आँखो के सामने की तस्वीर खडी हो जाती है।